संस्कृत व्याकरण–I

एम. ए. संस्कृत (प्रथम सामिसत्र)

Paper Code – 20SKT21C2

संपादक

डॉ. रवि प्रभात

सहायक प्रोफेसर

संस्कृत, पालि एवं प्राकृत–विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. 25 of 1975)

(NAAC Accredited 'A+' Grade)

www.mdudde.net www.mdu.ac.in

विषय–सूची

	पृष्ठ संख्या
विषय–सूची	**2–4**
भूमिका	**5–17**
इकाई – 1	**18–65**

संज्ञा, सन्धि एवं स्त्री प्रत्यय

इकाई की रूपरेखा

1.1 परिचय

1.2 उद्‌देश्य

1.3 संज्ञाप्रकरण (अर्थ एवं व्याख्या)

1.4 सन्धि–प्रकरण (अर्थ एवं व्याख्या)

1.4.1 अच्–सन्धि

1.4.2 हल्–सन्धि

1.4.3 विसर्ग–सन्धि

1.5 स्त्री प्रत्यय (अर्थ व्याख्या एवं रूपसिद्धि)

1.6 अपनी प्रगति जांचिए

1.7 निष्कर्ष

1.8 निष्कर्ष

1.9 पद–विश्लेषण

1.10 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इकाई – 2 **66–114**

अजन्त सुबन्त प्रकरण

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 अजन्त सुबन्त

2.3.1 पुल्लिङ्ग शब्द

2.3.2 स्त्रीलिङ्ग शब्द

2.3.2 नपुंसकलिङ्ग शब्द

2.4 अपनी प्रगति जांचिये

2.5 निष्कर्ष

2.6 पदविश्लेषण

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

इकाई – 3 **115–154**

अजन्त हलन्त प्रकरण

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 हलन्त सुबन्त

3.3.1 पुल्लिङ्ग हलन्त शब्द

3.3.2 स्त्रीलिङ्ग हलन्त शब्द

3.3.3 नपुंसकलिङ्ग हलन्त शब्द

3.4 अपनी प्रगति जांचिये

3.5 निष्कर्ष

3.6 पदविश्लेषण
3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

इकाई – 4 **155–195**

समास प्रकरण

4.1 परिचय

4.2 उद्देश्य

4.3 समास
  4.3.1 केवल समास
  4.3.2 अव्ययीभाव समास
  4.3.3 तत्पुरुष समास
  4.3.4 बहुव्रीहि समास
  4.3.5 द्वन्द्व समास
4.4 अपनी प्रगति जांचिये
4.5 निष्कर्ष
4.6 पदविश्लेषण
4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

भूमिका

संस्कृत व्याकरण की परम्परा

संस्कृत व्याकरण की परम्परा अत्यन्त सुदीर्घ है। वैदिक काल में ही संस्कृत व्याकरण एक स्वतंत्र वेदाङ्ग के रूप में स्थापित हो चुका था। वेदों की रचना और भाषा सौष्ठव के आधार पर यह कहना सर्वथा युक्तिसंगत है कि वेदमन्त्रों के रचनाकाल में अवश्य ही व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ हो चुका था। ब्राह्मणग्रन्थों में स्पष्ट ही व्याकरण सम्बन्धी अनेक शब्दों का उल्लेख हुआ है। प्रातिशाख्य ग्रन्थ भी व्याकरण सम्बन्धी अध्ययन की ही देन हैं। अनेक सूत्र जो पाणिनि के व्याकरण में आज उपलब्ध हैं ज्यों कि त्यों प्रातिशाख्यों में उपलब्ध हैं। प्रातिशाख्यों के कुछ सूत्र पाणिनि के व्याकरण में कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं।

यास्क के निरुक्त में भी अनेक वैयाकरणों के नामों का उल्लेख है। अनेक स्थलों पर वैयाकरणों के मत को उद्धृत किया गया है जिससे स्पष्ट है कि यास्क के काल से पहले ही व्याकरणशास्त्र का प्रारम्भ हो चुका था।

पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरण

पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरणों में प्रारम्भिक नाम देवताओं के हैं। ऋक्तन्त्र के अनुसार व्याकरणशास्त्र के प्रथम प्रवक्ता ब्रह्मा थे। ब्रह्मा ने बृहस्पति को व्याकरण का ज्ञान दिया। बृहस्पति ने इन्द्र को तथा इन्द्र ने भारद्वाज को व्याकरण शास्त्र का उपदेश किया। भारद्वाज ने अन्य ऋषियों को और ऋषियों ने अन्य ब्राह्मणों को व्याकरण का ज्ञान दिया। महाभाष्यकार पतंजलि ने भी उल्लेख किया है कि बृहस्पति ने इन्द्र को एक एक पद का उपदेश करके शब्दपारायण नामक ग्रन्थ को पढ़ाया था परन्तु वह उसे पूरा नहीं पढ़ा सके थे। इन्द्र के विषय में भी तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख आता है कि उसने शब्दों को पृथक्–पृथक् खण्डों में विभाजित करके देवताओं को समझाया था–

> **वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्, ते देवा इन्द्रमब्रुवन्–इमां नो वाचं व्याकुर्विति। सोब्रऽवीत्–वरं वृणै मह्यं चैवैष वायवे च सह गृह्यातां इति तस्मादैन्द्रवायवः सह गृह्याते। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वागुच्यते। (तै. सं. 6.4.7.3)।**
>
> पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' नामक ग्रंथ में ऐन्द्र व्याकरण के निम्नलिखित तीन सूत्रों का संकलन किया है–

1- अथ वर्णसमूहः

2- अर्थः पदम्

3- अन्त्यवर्ण समुद्भूता धातवः परिकीर्तिताः।

इन्द्र का व्याकरण बहुत बड़ा था इसकी सूचना हमें महाभारत के टीकाकार देवबोध के इस श्लोक से मिलती है–

> **यान्युज्जहार माहेन्द्रात् व्यासो व्याकरणार्णवात्।**
>
> **पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे।।**

अर्थात् व्यासमुनि ने जिन पदों का प्रयोग किया है वे ऐन्द्र व्याकरण में हैं। वे पाणिनि के व्याकरण में नहीं है। इसमें ऐन्द्र व्याकरण को समुद्र कहा है तो उसकी तुलना में पाणिनि व्याकरण को एक गाय के खुर के समान छोटा बताया है। देवबोध की यह अत्युक्ति हो सकती है परन्तु इससे एक बात तो स्पष्ट है कि पाणिनि से पूर्व ऐन्द्र व्याकरण था जो विशालकाय था।

दिव्य वैयाकरणों में महेश्वर का नाम भी आता है। महेश्वर शिव का ही नाम है। महेश्वर द्वारा व्याकरण निर्माण का संकेत महाभारत में शान्तिवर्ष के 'शिवसहस्रनाम' स्तोत्र में मिलता है। पाणिनीय शिक्षा में महेश्वर का वैयाकरण के रूप में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पाणिनि को नमस्कार करते समय ग्रन्थकार ने सूचना दी है कि पाणिनि ने अक्षरसमाम्नाय (प्रत्याहार सूत्रों) को महेश्वर से प्राप्त किया–

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।

कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः।।

अर्थात् जिस पाणिनि ने महेश्वर से अक्षरसमाम्नाय को ग्रहण करके सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र लिखा उस पाणिनि को नमस्कार है। नन्दिकेश्वरकृत काशिका नामक ग्रन्थ में भी इसी बात को कहा गया है–

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

इस श्लोक के अनुसार सनकादि मुनियों के उद्धार के लिए नटराज शिव ने 14 बार डमरू बजाया जिससे ये 14 माहेश्वर सूत्र निकले। पाणिनि के 14 प्रत्याहार सूत्र माहेश्वर सूत्र नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मा, बहृस्पति, इन्द्र तथा महेश्वर से अतिरिक्त वायु, भारद्वाज, चन्द्र (ये वर्तमान चन्द्रगोमी से भिन्न हैं), यम, रुद्र, वरुण, सोम तथा विष्णु द्वारा भी व्याकरण शास्त्र के प्रणयन का संकेत मिलता है। आज के वैज्ञानिक युग के लोगों के लिए यह विश्वसनीय नहीं है कि उपर्युक्त देवलोकवासी आचार्यों द्वारा व्याकरणशास्त्र– ऐहलौकिक व्याकरण शास्त्र– का प्रणयन किया गया था। किन्तु प्राचीन ग्रंथों के प्रमाण तो उक्त आचार्यों की पारलौकिकता का ही समर्थन करते हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में जब उक्त आचार्यों के व्यक्तित्व का भी निर्धारण कठिन है तो फिर उनके काल आदि का निर्णय करना कैसे सम्भव हो सकेगा? इस सन्देह के समर्थन में पाणिनि जैसे सर्वतोभद्र वैयाकरण का ब्रह्मा, बृहस्पति आदि के विषय में मौनावलम्बन का भी योगदान उपेक्षणीय नहीं है। इतना होने पर भी इन्द्र के ऐतिहासिकत्व का खण्डन नहीं किया जा सकता।

जो आचार्य निस्सन्दिग्ध रूप में ऐतिहासिक हैं उन्हें हम प्रथमतः दो वर्गों में विभक्त कर सकतेहैंः–

1. पाणिनि से पूर्ववर्ती,
2. पाणिनि से उत्तरवर्त्ती

प्रथम वर्ग के आचार्यों को भी पाणिनि के संकेत के आधार पर दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. पाणिनि द्वारा अनुल्लिखित।
2. पाणिनि द्वारा उल्लिखित।

प्रथम वर्ग के प्रथम उपवर्ग में निम्नलिखित आचार्यों का समावेश हैः

(1) इन्द्र, (2) भागुरि, (3) पौष्करसादि, (4) चारायण, (5) काशकृत्स्न, (6) वैयाघ्रपद, (7) माध्यन्दिनि, (8) रौढि, (9) शौनक,

(10) गौतम तथा, (11) व्याडि। इस वर्ग के द्वितीय उपवर्ग में निम्न–निर्दिष्ट आचार्यों की गणना है–

(1) आपिशलि, (2) काश्यप, (3) गार्ग्य, (4) गालव, (5) चाक्रवर्मण, (6) भारद्वाज, (7) शाकटायन, (8) शाकल्य, (9) सेनक तथा(10) स्फोटायन।

इन सब वैयाकरणों का तथा द्वितीय वर्ग के वैयाकरणों का विशद विवरण पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी के 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' भाग–1, के तृतीय, चतुर्थ तथा सप्तदश अध्यायों से प्राप्त करना चाहिए।

'अष्टाध्यायी' में कुछ सर्वनामों– उदीचाम्, आचार्याणाम्, एकेषाम्, प्राचाम्– का भी प्रयोग मिलता है। किन्तु यह निर्णय करना कठिन है कि पाणिनि ने इन सर्वनाम शब्दों द्वारा उन्हीं उल्लिखित आचार्यों के मत को रखा है या अन्य आचार्यों के मत को।

महर्षि पाणिनि

(क) **पाणिनि के नामः** 'अष्टाध्यायी' के निर्माता महर्षि पाणिनि के निम्नलिखित नाम उपलब्ध होते हैं– (1) पाणिन, (2) पाणिनि, (3) दाक्षीपुत्र, (4) शालङ्कि, (5) शालातुरीय अथवा सालातुरीय तथा (6) आहिक। इनसे अतिरिक्त पं. शिवदत्त शर्मा जी द्वारा 'महाभाष्य; के प्रथम भाग की प्रस्तावना में उद्धृत केशवीय 'नानार्थार्णवसंक्षेप के वाक्य से मातुरीय तथा दाक्षेय नाम भी पाणिनि के प्रतीत होते हैं। 'पाणिनीय शिक्षा' के याजुष पाठ में पाणिनेय तथा सोमेश्वर तथा सोमेश्वर के 'यशस्तिलकचम्पू' में पणिपुत्र शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

(ख) **पाणिनि का वंशः** पाणिनि के वंश के विषय में बहुत वाद–विवाद चिरकाल से प्रचलित हैं। किन्तु उपर्युक्त प्रमाण के आधार पर निम्नलिखित वंशावली का संकेत मिलता है।

यह वंशावली म. म. शिवदत्त, शर्मा जी की है। परन्तु मीमांसक जी निम्नलिखित वंशावली के पक्ष में हैं–

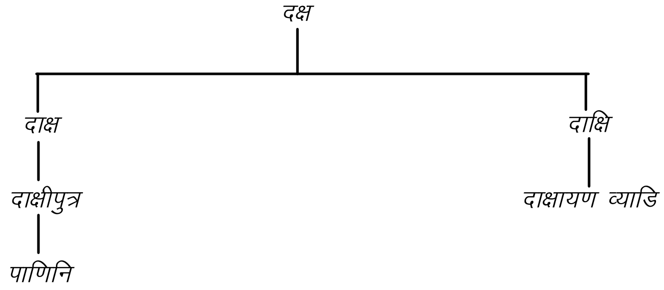

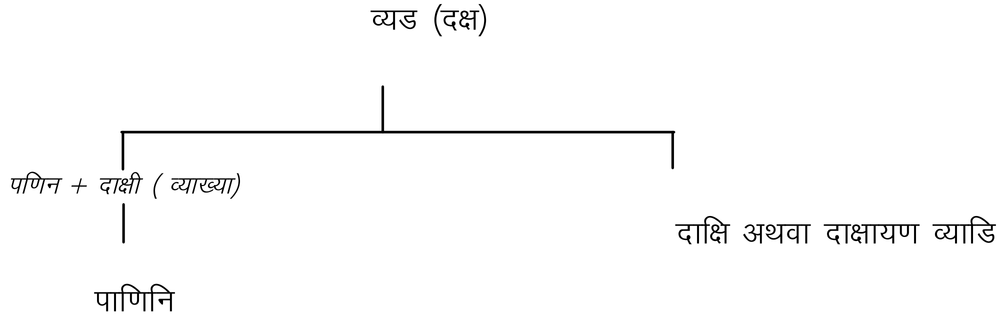

मीमांसक जी की दृष्टि में दाक्षि तथा दाक्षायण एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं। उपर्युक्त वंशावली तो मातृपक्ष की है। आचार्य पाणिनि के पिता के विषय में म. म. पं. शिवदत्त शर्मा जी का मत है कि पाणिनि शलङ्क के पुत्र थे। इसका आधार पाणिनि के नामान्तर 'शालङ्कि' शब्द की व्युत्पत्ति है– 'शलङ्कोरपत्यं शालङ्किः'। कैयट,

हरदत्त तथा गणरत्नमहोदधिकार वर्धमान भी शालङ्कि शब्द को शलङ्क शब्द से ही निष्पन्न मानते हैं। मीमांसक जी ने अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' के प्रथम भाग में शलङ्क को माना है, परन्तु प्रायः इसका कारण दृष्टिदोष है, क्योंकि 'महाभाष्य' की प्रस्तावना में शलङ्क शब्द का ही उल्लेख मिलता है। अन्यत्र पिङ्गल को पाणिनि का अनुज बतलाया गया है।

(ग) **पाणिनि का निवासस्थानः** अष्टाधायी के 'उदक् च विपाशः तथा 'वाहीकग्रामेभ्यश्च' सूत्रों के 'महाभाष्य' के प्रामाण्य पर ऐसा सिद्ध होता है कि पाणिनि वाहीक देश से विशेष परिचित थे। इस जाति का देश वर्तमान बलख है। ऐसा कहा जाता है कि 'वाहीक' लोक पंजाब के उस प्रदेश में रहते थे जिसे सिन्धु नदी तथा पंजाब (पंचनद) की अन्य पाँच नदियाँ सींचती थी। परन्तु यह क्षेत्र भारत के पुण्यक्षेत्र से बाहर था। घोड़ों तथा हींग के लिए इसकी प्रसिद्धि थी। अतः 'वाहीकग्राम' शब्दों में षष्ठीतत्पुरुष समास माना चाहिए।

'वाहीक' देश से विशेष परिचित होने के कारण पाणिनि के देश के विषय में यह सम्भावना है कि 'वाहीक' देश या तत्समीपस्थ कोई प्रदेश पाणिनि का जन्मस्थान रहा होगा।

यद्यपि पाणिनि का नाम 'शालातुरीय' अथवा 'सालातुरीय' भी होने के कारण यह प्रतीत होता है कि पाणिनि का देश शलातुर या सलातुर था। यह 'शलातुर' या 'सलातुर' अटक के समीपस्थ वर्तमान लाहौर ही है– ऐसा पुरातत्ववेत्ताओं का मत है। किन्तु पाणिनि ने 'तूदीशलातुरवर्मती.' सूत्र में शलातुर शब्द का पाठ किया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि 'शालातुरीय' उसे ही कहा जा सकता है जिसका अभिजन, अर्थात् पूर्वजों का निवासस्थान, 'शलातुर' हो। अतः पाणिनि का जन्मस्थान 'शलातुर' को मानना उचित नहीं है।

(घ) **पाणिनि के आचार्यः** पाणिनि के आचार्य के विषय में परम्परागत मत तो यही है कि पाणिनि ने गोपर्वत पर तपस्या करके साक्षात् महेश्वर शिव से ही अक्षरसमाम्नाय का उपदेश प्राप्त किया था। इसी अक्षरसमाम्नाय को आधार बनाकर पाणिनि ने 'अष्टाधयायी' का निर्माण किया था। 'कथासरित्सागर' में उपवर्ष के अग्रज वर्ष उपाध्याय को पाणिनि का गुरु माना गया है। जयरथ के 'हरचरितचिन्तामणि' के अवलोकन से भी यही ज्ञात होता है। कि प्रारम्भ में वर्षोपाध्याय के शिष्य होने पर भी जब पाणिनि अपनी जड़ता के कारण उनसे कुछ सीख न सके तब उन्होंने अपनी जड़ता को दूर करने के लिए हिमालय पर्वत पर जाकर भगवान शंकर की तपस्या की और वहीं भगवान् शंकर ने उन्हें व्याकरणशास्त्र का उपदेश दिया। परन्तु इसमें भी पूर्वोक्त 'स्कन्दपुराण' के कथन – गोपवर्त पर पाणिनि ने शङ्कर की आराधना की थी– से कुछ भिन्नता अवश्य है। गोपवर्त तथा हिमालय की एकता में कोई प्रमाण नहीं मिल रहा है।

(ङ) **पाणिनि की शिष्यपरम्परा :** पाणिनि के शिष्यों में सर्वप्रथम कात्यायन वररुचि का नाम आता है। यह तथ्य 'संख्या वंश्येन' सूत्र के ऊपर लघुशब्देन्दुशेखरकार नागेश की व्याख्या से ध्वनित होता है– ऐसा मीमांसक जी भी मानते हैं। 'हरचरितचिन्तामणि' का मत कुछ भिन्न ही है वहाँ कहा गया है कि जब पाणिनि शंकर की कृपा से व्याकरणशास्त्र का पाण्डित्य पाकर लौटे तो उन्होंने वररुचि आदि अपने सतीर्थ्यों का उपहास करना शुरू कर दिया उस पर क्रुद्ध वररुचि का सात दिनों तक पाणिनि से शास्त्रार्थ चलता रहा और अन्त मे आठवें दिन पाणिनि परास्तप्रायः हो गए थे। वैसा देख कर भगवान् शङ्र ने हुंक की आकाशवाणी की और उसके बल से पाणिनि ने पुनः वररुचि के ऊपर विजय प्राप्त कर ली। तत्पश्चात् खिन्न होकर वररुचि हिमालय की गुफा में शङ्कर की आराधना के लिए चले गए और वहाँ शङ्कर को प्रसन्न कर उनसे पुनः पाणिनि के लिए प्राप्त व्याकरण शास्त्र का अधिगम किया।

'महाभाष्य' में एक एदाहरण मिलता है– 'उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् 'काशिका' में भी अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्' आदि उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि पाणिनि के शिष्यों में कौत्स भी अन्यतम थे। भारतीय वाङ्मय में अनेक ग्रन्थों में उल्लिखित कौत्स से भेद या अभेद का निर्णय

करना कुछ कठिन है। किन्तु 'निरुक्त' तथा 'रघुवंश' में उल्लेखित कौत्स को पाणिनिशिष्य कौत्स से भिन्न मानना ही उचित प्रतीत होता है।

यद्यपि 'महाभाष्य' 1.4.41 के उल्लेख से तथा 'काशिका' 6.2.104 के उदाहरण से पाणिनि के अनेक शिष्यों का निश्चय करना ही पड़ता है तथापि कौत्स से अतिरिक्त किसी शिष्य का नाम अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

(च) **पाणिनि का कालः** पाणिनि के काल के विषय में चिरकाल से प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानों में वैमत्य बना हुआ है। गैरोला महाशय ने कुछ प्रसिद्ध प्राच्य एवम् पाश्चात्य विद्वानों के मतों का संकलन निम्नलिखित रूप में किया है।

पं. सत्यव्रत सामाश्रमी	2400 ई. पूर्व
राजवाडे तथा वैद्य	900–800ई. पूर्व
वेलवेलकर	700–900ई. पूर्व
भाण्डारकर	700 ई. पूर्व
उपाध्याय	500 ई. पूर्व
मकेडानॅल	500 ई. पूर्व
मक्सैमलूर	350 ई. पूर्व
कीथ	300 ई. पूर्व

पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने अनेक अन्तरङ्ग बहिरङ्ग प्रमाणों के आधार पर यह निर्णय किया है कि पाणिनि का समय स्थूलतया विक्रम से 2100 वर्ष प्राचीन है।

पाणिनि का काल 700 ई. पूर्व से 600 ई. पू. के मध्य में अधिकांश विद्वान मानते हैं। डा. वासुदेवशरण अंग्रवाल पाँचवीं शताब्दी ई. पू. का मध्य भाग मानते हैं।

अष्टाध्यायी

पाणिनिप्रणीत व्याकरण शास्त्र के आठ अध्यायों में विभक्त होने के कारण इसका विशेष अभिधान 'अष्टाध्यायी' शब्द से होता है। अष्टाध्यायी के समान 'अष्टक' शब्द का प्रयोग भी पाणिनि व्याकरण के लिए उपलब्ध होता है। पाणिनीय व्याकरण शास्त्र का एक नाम 'शब्दानुशासन' भी है। किन्तु 'शब्दानुशासन' शब्द का अर्थ भी व्याकरण–सामान्य मानना ही युक्तियुक्त है।

'महाभाष्य' तथा चीनी यात्री इत्सिंङ्ग के यात्राविवरण में पाणिनि सूत्र को 'वृत्तिसूत्र' कहा गया है। नागेश भट्ट का कहना है कि ऋषिप्रणीत होने तथा अनेक अर्थों की सूचक होने के कारण योग– 'अष्टाध्यायी' का एक–एक सार्थक अंश–तथा प्रत्येक वार्तिक के भी अथवा समस्त अष्टाध्यायी एवं वार्तिकों की समष्टि के भी 'सूत्र' कहलाने योग्य होने से पाणिनीय सूत्र तथा वार्तिकारीय वार्तिकापरपर्याय सूत्र में भिन्नता के प्रतिपादन के लिए ही भाष्यकार ने पाणिनि–वचन को 'वृत्तिसूत्र' कहा है। यतः पाणिनिसूत्र पर वृत्तियों का निर्माण हुआ है, वार्तिकात्मक सूत्र पर नहीं, अतः विशेषण की सार्थकता स्पष्ट है। वार्तिकात्मक सूत्र भाष्यविशिष्ट हैं जब कि पाणिनीयसूत्र वृत्तिविशिष्ट हैं–यही

तात्पर्य है। 'वृत्तिसूत्र' शब्द की अन्यान्य व्याख्याएँ भी मीमांसक जी ने प्रस्तुत की हैं, परन्तु उनका औचित्य इस प्रसङ्ग में बहुत स्पष्ट नहीं प्रतीत होता है।

'अष्टाध्यायी' का स्वरूप

'अष्टाध्यायी' इस नाम से ही स्पष्ट है कि पाणिनीय व्याकरण आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में चार–चार पाद हैं समस्त 'अष्टाध्यायी' की सूत्रसंख्या या पादगत सूत्रसंख्या में एकमत्य नहीं है, क्योंकि 'काशिका' आदि ग्रन्थों में कुछ ऐसे भी सूत्र मान लिए गए हैं जो अन्य वैयाकरणों की दृष्टि में वार्त्तिक या वार्त्तिकात्मक सूत्र हैं, पाणिनीय सूत्र नहीं। प्रत्यक्ष निदर्शन तो प्रथमाध्याय के प्रथम पाद की सूत्रसंख्या ही है जो 'अथ शब्दानुशासनम्' तथा प्रत्याहार सूत्रों में अन्यतर या उभय के पाणिनिसूत्रत्व एवम् तदभाव के वैमत्य के अनुसार परस्पर–भिन्न हो जाती है। इससे अतिरिक्त भी कुछ ऐसे सूत्र हैं जिनके 'वृत्तिसूत्र' या 'भाष्यसूत्र' होने में सन्देह है। 'महाभाष्य' सभी सूत्रों (के वार्त्तिकों) पर तो है ही नहीं, अतः इसके आधार पर सूत्रसंख्या का निर्धारण भी कुछ कठिन कार्य है। काशिका के अनुसार अष्टाध्यायी के सूत्रों की संख्या 3983 है और सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार 3976 है।

'अष्टाध्यायी' का महत्व

सभी प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वान् 'अष्टाध्यायी' के महत्व को एक–स्वर से स्वीकार करते हैं। सभी ग्रन्थों में पाणिनीय व्याकरण को सर्वाधिक उत्कृष्ट माना गया है। अत एव इसके महत्व के विषय में अधिक कहने की अपेक्षा नहीं है। निम्नलिखित तर्क ही संक्षेप में पर्याप्त होगाःकिसी भी शास्त्र के विलोप का कारण है जनप्रियता का अभाव। आक्रमण आदि से ग्रन्थों का विनाश हो सकता है, सम्प्रदाय का नहीं– इसका साक्ष्य इतिहास में उपलब्ध है। जनप्रियता के अभाव के दो कारण होते हैंः– अनुपयोगिता तथा अनावश्यक क्लिष्टता। द्वितीय कारण का तात्पर्य यह है कि यदि एक क्लिष्ट तथा अन्य सरल उपाय एक ही लक्ष्य पर पहुंचाने में समर्थ होते हैं जनमानस सरल उपाय को ही पसन्द करता है। अतः पाणिनीय व्याकरण से पूर्व तथा उत्तरकाल में विनिर्मित अनेकानेक व्याकरणशास्त्र का विनाश या विरल प्रचार ही चिरकाल से विकासमान पाणिनीय व्याकरणशास्त्र के महत्व का प्रख्यापन करता है। दूसरी बात यह है कि शास्त्र का प्रयोजन लोक–व्युत्पादन है। अतः लोक–स्थिति का उल्लंघन कर कोई भी शास्त्र लोक में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। आचार्य पाणिनि की दृष्टि में यह बात अवश्य थी। तभी तो उन्होंने 'तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्', 'लुब्योगाऽप्रख्यानात्', 'योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात्', प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात्' तथा 'कालोपसर्जने च तुल्यम्' आदि सूत्र लिखे हैं। इस दृष्टि से भी पाणिनीय शास्त्र की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रही है।

पाणिनीय परम्परा के तीन युग

1- प्रथम युग – मुनित्रय

2- आचार्य पाणिनि

आचार्य पाणिनि के विषय में पहले ही बताया जा चुका है। पाणिनि की रचनाओं में अष्टाध्यायी या पाणिनीयाष्टक का प्रमुख स्थान है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा का अनुपम रत्न है। भाषा में इसके जोड़ का व्याकरण नहीं बना। पाणिनि ने इस लघुकाय ग्रन्थ में संस्कृत जैसी विस्तृत भाषा का पूर्णतया विश्लेषण करने का प्रयास किया है। उनकी विवेचना वैज्ञानिक है, शैली संक्षिप्त, सांकेतिक तथा संयत है। इस ग्रन्थ का क्रम भी अनूठा है। प्रथम अध्याय में विशेष रूप से संज्ञा और परिभाषा प्रकरण हैं। द्वितीय अध्याय में समास तथा विभक्तिप्रकरण, तृतीय में कृदन्तप्रकरण, चतुर्थ तथा पचंम में स्त्रीप्रत्यय और तद्धितप्रकरण है। षष्ठ, सप्तम और अष्टम अध्यायों में सन्धि, आदेश तथा स्वरप्रक्रिया आदि के विविध प्रकरण हैं। अष्टाध्यायी के अतिरिक्त धातुपाठ तथा गणपाठ भी आचार्य पाणिनि की कृतियाँ हैं।

उणादिसूत्र को भी पाणिनिकृत बतलाया जाता है। वस्तुतः यह पाणिनि की रचना नहीं है। हाँ, पाणिनि ने उणादयो बहुलम् 3/3/1' सूत्र द्वारा उणादि सूत्रों की प्रामाणिकता अवश्य स्वीकार की है। इसी प्रकार पाणिनीय शिक्षा तथा लिङ्गानुशासन नामक लघुग्रन्थों को भी पाणिनि की रचना मानना विवादास्पद ही है। इनके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि पाणिनि ने पाताल–विजय या जाम्बवती–विजय नामक एक महाकाव्य की रचना की थी, जो आज उपलब्ध नहीं है।

कात्यायन (500 ई0 पू0 से 300 ई0 पू0 के मध्य)

कात्यायन मुनि व्याकरण शास्त्र में वार्त्तिककार के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हें वररुचि नाम से भी जाना जाता है। उनके समय का निर्धारण भी विद्वानों की चर्चा का विषय रहा है। प्रायः आधुनिक विद्वानों ने उनका समय 500 ई0 पू0 तथा 300 ई0 पू0 के मध्य माना है। पं0 युधिष्ठिर मीमांसक का मत है कि उनका समय विक्रम पूर्व 2700 वर्ष है। एक वार्तिक की व्याख्या करते हुए महाभाष्यकार कहते हैं। 'प्रियतद्धिताः दाक्षिणात्याः'। इस कथन से यह अनुमान किया जाता है कि वार्तिककार कात्यायन दाक्षिणात्य थे। कात्यायन का भाषाविषयक ज्ञान अगाध था। उनकी दृष्टि एक समीक्षक की दृष्टि थी। उन्होंने पाणिनि के सूत्रों की सूक्ष्म दृष्टि से आलोचना करके उनकी कमियों को दूर करने का प्रयास किया है तथा अष्टाध्यायी के लगभग 1500सूत्रों पर लगभग 4000 वार्तिक लिखे हैं। पाणिनि–व्याकरण के विकास और परिष्कार में कात्यायन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने पाणिनीय व्याकरण को अधिक तथ्यानुकूल एवं समयानुकूल बनाने का प्रयास किया है तथा इसकी अपूर्णता को दूर किया है। वार्त्तिककार के वचनों में भाषा के विकास की झलक देखी जा सकती है। उनकी आलोचना में अनुसंधान की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। वार्त्तिककार की इस प्रवृत्ति में किसी दुर्भावना की खोज करना उचित नहीं प्रतीत होता। डॉ0 वेलवल्कर का यह मन्तव्य नितान्त सत्य है कि 'कात्यायन के वार्त्तिकों का लक्ष्य पाणिनि के सूत्रों में संशोधन और परिवर्धन है।'

पतंजलि(200 ई0 पू0 तथा प्रथम ई0 शती के मध्य)

पतजंलि ने महाभाष्य नामक ग्रन्थ की रचना की है अतः वे महाभाष्यकार के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका समय भी विद्वानों के विवाद का विषय रहा है। कुछ विद्वानों के अनुसार उनका समय ईसा की प्रथम शती है। डॉ0 वेलवल्कर ने उनका समय 150 ई0 पू0 माना है। इस मत का आधार यह है–महाभाष्यकार ने एक सूत्र की व्याख्या में लिखा है 'इह पुष्यमित्रं याजयामः' (यहाँ पुष्यमित्र को यज्ञ कराते हैं)। इस प्रयोग से विदित होता है कि पतजंलि ने पुष्यमित्र को यज्ञ कराया था। फलतः वे पुष्यमित्र के समकालीन थे। इतिहासकारों ने पुष्यमित्र का समय 150 ई0 पू0 माना है। अतः पतंजलि का समय भी यही है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से भी इस मत की पष्टि की गई है। किन्तु युधिष्ठिर मीमांसक इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनका विचार है कि भारतीय गणना के अनुसार पुष्यमित्र का समय 1200 ई0 पू0 के लगभग होना चाहिए। इसलिए पतंजलि का समय भी वही होगा।

पतजंलि को शेषनाग का अवतार माना जाता है। अतः कहीं–कहीं उनके लिए फणिभृत्, अहिपति इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उन्होंने अपने मत प्रकट करते हुए 'गोनर्दीय' शब्द का प्रयोग किया है–'गोनर्दीयस्त्वाह'। इससे विदित होता है वे गोनर्द प्रदेश के रहने वाले थे। व्याख्याकारों का अनुमान है कि जहाँ गाय–बैल अधिक हृष्ट–पुष्ट होते हैं अतः विशेष रूप से नाद करते हैं (आधुनिक पंजाब और हरयाणा आदि) सम्भवतः यही प्रदेश पतंजलि का निवास स्थान रहा होगा। पतजंलि ने पाणिनि के मुख्य–मुख्य सूत्रों तथा कात्यायन के वार्त्तिकों की सोदाहरण व्याख्या की है। पाणिनि के प्रति उनकी अत्यधिक श्रद्धा प्रकट होती है। उन्होंने पाणिनि के कतिपय सूत्रों का प्रत्याख्यान भी किया है, किन्तु वहाँ लाघव एवं तथ्य–निरूपण की दृष्टि ही रही है। पतजंलि के मतानुसार जिस भगवान् पाणिनि का एक वर्ण भी निरर्थक नहीं हो सकता, भला उसके दोष–दर्शन का दुस्साहस कैसे किया जा सकता है? वार्त्तिककार के वार्त्तिकों की भी महाभाष्यकार ने व्याख्या की है उनकी उपयोगिता पर विचार भी किया है। साथ ही सूत्रकार एवं वार्त्तिककार के वचनों की समीक्षा करते हुए अपना निर्णय भी दिया है। पाणिनीय व्याकरण में

महाभाष्य के मन्तव्य सबसे अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' इस न्याय के अनुसार पाणिनि के वचनों से भी अधिक पतजंलि के वचन प्रामाणिक हैं। वस्तुतः पाणिनीय व्याकरण के परिनिष्ठित रूप का निर्धारण करना पतंजलि का ही कार्य है।

द्वितीय युग

महाभाष्य के साथ–साथ पाणिनि व्याकरण का प्रथम युग समाप्त हो गया। ईसा की सातवीं शताब्दी में फिर अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य पर कुछ सरल टीका–ग्रंथ लिखे जाने लगे। यही से द्वितीय युग का प्रारम्भ हुआ समझना चाहिए। इस युग में पाणिनि व्याकरण पर अनेक टीका–ग्रन्थ लिखे गये। भर्तृहरि ने महाभाष्य पर टीका लिखी। 'काशिका' पर जिनेन्द्रबुद्धि ने 'न्यास' नामक ग्रन्थ लिखा तथा हरदत्त ने 'पदमजंरी' नामक व्याख्या की। इस युग में ही पाणिनि व्याकरण का दार्शनिक विवेचन का प्रारम्भ होगया। भर्तृहरि(650 ई0) ने 'वाक्यपदीय' नाम का ग्रन्थ लिखकर इस विवेचना का श्रीगणेश किया। इस युग की अन्तिम रचना कैयट की प्रदीप नामक टीका कही जा सकती है जो महाभाष्य पर लिखी गई सुन्दर टीका है।

भर्तृहरि–(सप्तम शताब्दी)

भतृहरि का संस्कृत–व्याकरण में अत्यन्त उच्च स्थान है। व्याकरण के मुनित्रय के पश्चात् उनकी ओर ही दृष्टि जाती है। फिर भी उनके विषय में हमारी जानकारी बहुत ही कम है।

भर्तृहरि का समय भी अनिश्चित सा ही है। अनेक विद्वान् इत्सिंग नामक चीनी–यात्री के लेख का अनुसरण करके भर्तृहरि का समय सप्तमी शती ई0 का उत्तरार्ध मानते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार भर्तृहरि महाराज विक्रमादित्य के भाई थे। युधिष्ठिर मीमांसक ने इत्सिंग के लेख की भूल की ओर संकेत करते हुए युक्ति एवं प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भर्तृहरि का समय ईसा से कई शताब्दी पूर्व होना चाहिए।

भर्तृहरि के जीवनवृत्त के विषय में कुछ किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ प्रामाणिक विवरण भी मिलता है। वाक्यपदीय पर लिखी हुई पुण्यराज की टीका से विदित होता है कि भर्तृहरि के गुरु वसुराज थे। 'प्रणीतो गुरुणाऽस्माकमयमागम–संग्रहः' इस श्लोक की अवतरणिका में पुण्यराज ने लिखा है–'तत्र भगवता वसुरातगुरुणा ममायमागमः संज्ञाय वात्सल्यात् प्रणीतः।' इत्सिंग के विवरण के अनुसार वाक्यपदीय का रचयिता भर्तृहरि बौद्ध था उसने सात बार प्रव्रज्या ग्रहण की थी। किन्तु वाक्यपदीय के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि भर्तृहरि वैदिक मत के अनुयायी थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है–वेदशास्त्राविरोधी च तर्कश्चक्षुरपश्यताम्' इसी प्रकार अन्य सन्दर्भों में भी उनकी वेद के प्रति आस्था दिखलायी देती है।

भर्तृहरि की रचनाएँ

संस्कृत वाङ्मय में भर्तृहरि के नाम से अनेक ग्रन्थ मिलते हैं जैसे महाभीष्यदीपिका, वाक्यपदीय, नीतिशतक आदि शतकत्रय, भट्टिकाव्य और भागवृत्ति नामक अष्टाध्यायी की एक प्राचीन वृत्ति। इनके अतिरिक्त 'वेदान्तसूत्रवृत्ति' आदि कतिपय अन्य ग्रन्थों का भी भर्तृहरि से सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

युधिष्ठिर मीमांसक ने यह सिद्ध किया है कि वाक्यपदीय तथा महाभाष्यदीपिका के रचयिता एक ही भर्तृहरि हैं, भट्टिकाव्य तथा भागवृत्ति के कर्त्ता उससे भिन्न हैं, किंच भट्टिकाव्य एवं भागवृत्ति के रचयिता भी परस्पर भिन्न ही हैं। इस प्रकार तीन भर्तृहरि हुए हैं, यह परिणाम निकलता है। जहाँ तक शतकत्रय का प्रश्न है, उसके विषय में यह निश्चित नहीं किया जा सका है कि यह किस भर्तृहरि की रचना है।

महाभाष्यदीपिका

महाभाष्य पर लिखी गई एक विस्तृत व्याख्या थी। इत्सिंग के अनुसार इसका परिमाण 25000 श्लोक के बराबर था। यह व्याख्या अभी तक पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हो सकी है। इसके उद्धरण अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड की स्वोपज्ञ टीका में भी इसकी ओर संकेत किया है–'संहितासूत्र–भाष्यविवरणे बहुधा विचारितम्'। आधुनिक युग में डॉ0 कीलहार्न ने महाभाष्यदीपिका का प्रथमतः परिचय दिया है। जर्मनी में बर्लिन के पुस्तकालय में महाभाष्यदीपिका के एक अंश की हस्तलिपि विद्यमान है। इसकी फोटो कापी लाहौर तथा मद्रास के पुस्तकालयों में भी है। पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने इसका सम्पादन प्रारम्भ किया था।

वाक्यपदीय

यह व्याकरण दर्शन का ग्रन्थ है इसके तीन काण्ड हैं–ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड, प्रकीर्णकाण्ड। इसमें समस्त विश्व को शब्दब्रह्म का विवर्त्त माना गया है, स्फोट रूप शब्द का विशद वर्णन किया गया है तथा व्याकरण के विविध विषयों का प्रक्रिया एवं अर्थ की दृष्टि से विवेचन किया गया है {वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं शेष वाक्यपदीय भी प्रकाशित हुआ है अभी कुछ समय पूर्व वाक्यपदीय का टिप्पणी सहित अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।} इस प्रकार भर्तृहरि केवल महाभाष्य के व्याख्याकार ही नहीं है। उनका विशिष्ट महत्व तो इसमें है कि उन्होंने व्याकरण–दर्शन के स्वरूप को व्यवस्थित किया है। महाभाष्य में जो व्याकरण–दर्शन के मन्तव्य यत्र–तत्र कहीं संकेत रूप में तथा कहीं स्पष्ट रूप में विद्यमान थे, उनका क्रमबद्ध वज्ञैानिक विश्लेषण प्रथमतः भर्तृहरि ने ही किया है। अपने इस मौलिक कार्य के कारण भर्तृहरि का सदा आदरपूर्वक स्मरण किया जाता रहेगा।

तृतीययुग

तृतीय युग में पाणिनि के अध्ययन की दृष्टि बदल गई। विषय–विभाग के अनुसार अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्यवस्था की जाने लगी। वास्तव में इस युग में शब्द–सिद्धि की प्रक्रिया पर अधिक बल दिया जाने लगा और सूत्रों के विवेचन पर कम। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास विमल सरस्वती (1350 ई0) का था जिन्होंने 'रूपमाला' लिखी। इसी दृष्टि से रामचन्द्र (15 वीं शती) ने प्रक्रिया–कौमुदी लिखी। प्रक्रिया–युग में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान भट्टोजिदीक्षित का है। इस समय के व्याकरण के दार्शनिक विवेचन सम्बन्धी ग्रन्थों में 'वैयाकरण–भूषण' उल्लेखनीय है जिसे भट्टोजिदीक्षित के भतीजे कौण्डभट्ट ने लिखा था।

भट्टोजिदीक्षित–(16 वीं शताब्दी ई0 के लगभग)

भट्टोजिदीक्षित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था। वैयाकरण–भूषण के लेखक कौण्डभट्ट इनके छोटे भाई रङ्गोजिभट्ट के पुत्र थे। प्रौढ़–मनोरमा की टीका 'शब्दरत्न' के लेखक हरिदीक्षित इनके पौत्र थे। पण्डितराज जगन्नाथ कृत 'प्रौढ़मनोरमा–खण्डन' नामक ग्रन्थ से विदित होता है कि भट्टोजिदीक्षित ने नृसिंह के पुत्रशेषकृष्ण से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था। भट्टोजिदीक्षित ने 'शब्दकौस्तुभ' में शेषकृष्ण के लिए गुरुशब्द का प्रयोग भी किया है। एक अन्य स्थान पर इन्होंने अप्पय दीक्षित को भी नमस्कार किया है। (व्या0 शा0 का इतिहास पृ0 447)। वेलवल्कर ने भट्टोजिदीक्षित का समय 1600–1650 ई0 माना है। कुछ विद्वान् इनका समय 1580 ई0 (1637 वि सं0) के लगभग मानते हैं। पं0 युधिष्ठिर मीमांसक ने कतिपय प्रमाणों के आधार पर यह निर्धारित किया है कि इनका जन्म–काल वि0 सं0 की सोलहवीं शताब्दी का प्रथम दशक मानना चाहिए।

भट्टोजिदीक्षित की कृतियाँ

भट्टोजिदीक्षित ने अनेक ग्रन्थ लिखे थे। इन्होंने अष्टाध्यायी पर '**शब्दकौस्तुभ**' नामक एक वृत्ति लिखी थी। आज इस

वृत्ति के प्रारम्भ के ढाई अध्याय तथा चतुर्थ अध्याय ही उपलब्ध हैं। यह ग्रन्थ किसी समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता रहा होगा। इसलिए इस पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गई थी। सम्भवतः पण्डितराज जगन्नाथ ने 'कौस्तुभ–खण्डन' नामक ग्रन्थ भी लिखा था।

सिद्धान्तकौमुदी या वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी

भट्टोजिदीक्षित की कीर्ति का प्रसार करने वाला मुख्य ग्रन्थ है। यह 'शब्द कौस्तुभ' के पश्चात् लिखा गया था। भट्टोजिदीक्षित ने स्वयं ही इस पर **प्रौढ़मनोरमा नाम** की टीका लिखी है। सिद्धान्त–कौमुदी को प्रक्रिया–पद्धति का सर्वोत्तम ग्रन्थ समझा जाता है। इससे पूर्व जो प्रक्रिया गन्थ लिखे गये थे उनमें अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों का समावेश नहीं था। भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी में अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों को विविध प्रकरणों में व्यवस्थित किया है, इसी के अन्तर्गत समस्त धातुओं के रूपों का विवरण दे दिया है तथा लौकिक संस्कृत के व्याकरण का विश्लेषण करके वैदिक–प्रक्रिया एवं स्वर–प्रक्रिया को अन्त में रख दिया है। भट्टोजिदीक्षित ने काशिका, न्यास एवं पदमजंरी आदि सूत्रक्रमानुसारिणी व्याख्याओं तथा प्रक्रियाकौमुदी और उसकी टीकाओं के मतों की समीक्षा करते हुए प्रक्रिया–पद्धति के अनुसार पाणिनीय व्याकरण का सर्वाङ्गीण रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उन्होंने आवश्यकतानुसार परिभाषाओं, वार्त्तिकों तथा भाष्येष्टियों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने मुनित्रय के मन्तव्यों का सामजंस्य दिखाया है तथा महाभाष्य का आधार लेकर कुछ स्वकीय मत भी स्थापित किये हैं। साथ ही प्रसिद्ध कवियों द्वारा प्रयुक्त किन्हीं विवादास्पद प्रयोगों की साधुता पर भी विचार किया है। मध्ययुग में सिद्धान्तकौमुदी का इतना प्रचार एवं प्रसार हुआ कि पाणिनि व्याकरण की प्राचीन पद्धति एवं मुग्धबोध आदि व्याकरण पद्धतियाँ विलीन होती चली गई। कालान्तर में प्रक्रिया–पद्धति तथा सिद्धान्तकौमुदी के दोषों की ओर भी विद्वानों की दृष्टि गई किन्तु वे इसे न छोड़ सके। इनके अतिरिक्त भट्टोजिदीक्षित का 'वेदभाष्यसार' नामक ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है (भारतीय विद्याभवन, बम्बई)। यह ऋग्वेद सायणभाष्य का सार है। इसकी भूमिका में भट्टोजिदीक्षित की 34कृतियों का उल्लेख किया गया है। इनमें '**धातुपाठ–निर्णय**' नामक ग्रन्थ भी है। हस्तलिपियों में इनकी '**अमरटीका**' नामक कृति उपलब्ध हुई है। पाणिनीय व्याकरण में भट्टोजिदीक्षित का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाणिनि–व्याकरण पर उनका ऐसा अनूठा प्रभाव पड़ा है कि महाभाष्य का महत्त्व भी भुला दिया गया है। यह समझा जाने लगा है कि सिद्धान्तकौमुदी महाभाष्य का द्वार ही नहीं है अपितु महाभाष्य का संक्षिप्त किन्तु विशद सार है। इसी हेतु यह उक्ति प्रचलित हैः–

कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।

कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।।

प्रक्रिया के युग को शास्त्रार्थ के क्षेत्र में प्रविष्ट कराने वालों में नागेश भट्ट का नाम अग्रगण्य है। इनकी प्रतिभा अनूठी थी। इनका विविध शास्त्रों पर समान अधिकार था। उन्होंने व्याकरण के क्षेत्र में नव्य–न्याय की शैली का प्रवेश किया तथा अनेक मौलिकएवं व्याख्या–ग्रन्थों की रचना की।

नागेश भट्ट–(17 वीं तथा 18 वीं शती ई0)

नागेश भट्ट या नागोजि भट्ट के जीवन–वृत्त के विषय में बहुत कम ज्ञात हो सका है। जनश्रुति के अनुसार वे महाराष्ट्र के एक ऋग्वेदी ब्राह्मण थे। नागेश भट्ट का समय 17 वीं शताब्दी ई0 के अन्त तथा 18 वीं शताब्दी ई0 के आरम्भ में है। (विशेष द्रष्टव्य सं0 व्या0 का इतिहास)।

नागेश भट्ट की व्याकरण–सम्बन्धी रचनाएँ हैं–महाभाष्यप्रदीपोद्योत, लघु शब्देन्दुशेखर, बृहच्छब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, लघुमंजूषा, परमलघुमंजूषा और स्फोटवाद।

सिद्धान्तकौमुदी पर अन्य भी अनेक टीकायें लिखी गई। उनमें परिव्राजकाचार्य ज्ञानेन्द्र सरस्वतीकृत 'तत्त्वबोधिनी'

विशेष महत्त्वपूर्ण है। किन्तु छात्रों की दृष्टि से 'बालमनोरमा' नामक टीका अधिक उपयोगी है।

वरदराज–लघुसिद्धान्त कौमुदी

पाणिनि–व्याकरण में बालकों का प्रवेश कराने के लिए भट्टोजी के शिष्य वरदाजाचार्य ने लघुकौमुदी तथा मध्यकौमुदी का निर्माण किया है। लघुकौमुदी मे व्याकरण–प्रक्रिया का सभी अपेक्षणीय विवरण वरदराज ने दिया है, यह सिद्धान्तकौमुदी का संक्षिप्त संस्करण होते हुए भी एक विलक्षण कृति है।

यहाँ पर लघुकौमुदी का ही अधिकांश भाग दिया जा रहा है। जहाँ सिद्धान्तकौमुदी में पाणिनि के लगभग सभी सूत्रों को लिया गया है, वहाँ लघुकौमुदी में केवल उन्हीं सूत्रों को लिया गया है जो व्यावहारिक ज्ञान के लिए उपयोगी हैं। वैदिकी प्रक्रिया और स्वर प्रक्रिया को सर्वथा छोड़ दिया गया है।

पाणिनि व्याकरण के अध्ययनार्थ ज्ञातव्य बातें

डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री ने पाणिनि व्याकरण के अध्ययनार्थ निम्नलिखित बातों को महत्त्वपूर्ण माना है।

1- **प्रत्याहार**–जब आदि के अक्षर का अन्त के इत्संज्ञक के साथ ग्रहण किया जाता है उसके द्वारा आदि तथा मध्य के समस्त अक्षरों का बोध होता है तो उसे प्रत्याहार कहते हैं। ये प्रत्याहार विशेषकर वर्णमाला के वर्णों का बोध कराने के लिए माहेश्वरसूत्रों के आधार पर बनाए गए हैं, जैसे–**अइउण्** ।1। ऋलृक्।2। एओङ्।[1]। ऐऔच्।[2]। हयवरट्।[3]। लण्।[4]। ञमङणनम्।7। झभञ्।8। घढधष्।9। जबगडदश्।10। खफछठथचटतव्।11। कपय्।12। शषसर्।13। हल्।14।।

ये 14 माहेश्वरसूत्र माने जाते हैं। इन सूत्रों के आधार पर अण् आदि–42 प्रत्याहार बनते हैं। इन सूत्रों में अन्तिम हल् (व्यंजन) की इत्संज्ञा होती है। आदि अक्षर को इत्संज्ञक के साथ मिलाकर प्रत्याहार बनता है; जैसे 'अइउण्' में अण् प्रत्याहार बनता है जो अ, इ, उ, का बोध कराता है। इसी प्रकार अन्य प्रत्याहारों के विषय में जानना चाहिए; जैसे तिङ् प्रत्याहार है, यहाँ आदि 'ति' का अन्तिम इत् संज्ञक ङ् के साथ मिलाकर 'तिङ्' बनता है और इससे क्रिया में लगने वाले 18 (9 परस्मैपद + 9 आत्मनेपद) प्रत्ययों का बोध होता है। वर्णमाला के 42 प्रत्याहार ये हैं–(अकारादि क्रम से)।

---

[1]. ***अधिकार***–*कुछ सूत्र ऐसे बनाये गये हैं जो यह बतलाते हैं कि अमुक सूत्र से अमुक सूत्र तक यह प्रत्यय होगा या यह कार्य होगा। ये अधिकार सूत्र कहे जाते हैं। जैसे–'कारके' अथवा 'प्राग्दिशो विभक्तिः' इत्यादि।*

[2]. ***अनुवृत्ति***–*लाघव के लिये पाणिनि ने ऐसा किया है कि एक (पूर्व) सूत्र में कोई एक पद रख दिया, अग्रिम सूत्रों में जहाँ उस पद की आवश्यकता हुई पूर्वसूत्र से लेकर अन्वय कर लिया गया। पूर्व सूत्रों से अग्रिम सूत्रों में पद के इस अनुवर्तन को ही अनुवृत्ति कहते हैं। सामान्यतः यह अनुवृत्ति एक सूत्र से निकट वाले अग्रिम सूत्र में जाती है और फिर क्रमशः आगे के सूत्रों में की जाती है किन्तु कभी–कभी बीच के सूत्रों में किसी पद की अनुवृत्ति नहीं होती तथा एकदम आगे के (व्यवहित) सूत्र में हो जाती है। उसे मण्डूकप्लुति या मण्डूकप्लुतगत्या अनुवृत्ति कहते हैं।*

[3]. ***अपकर्ष***–*जहाँ आगे के सूत्र से पूर्व सूत्र में किसी पद को खींच लिया जाता है अर्थात् अन्वित किया जाता है, वहाँ अपकर्ष कहा जाता है।*

[4]. ***सन्धिविषयक शब्द***– *1एकादेश–जहाँ दो वर्णों को मिलाकर एक रूप हो जाता है वह एकादेश कहलाता है जैसे अ + इ = ए एकादेश होता है। 2)पररूप–जहाँ पूर्व तथा पर अक्षर को मिलाकर परवर्ण हो जाता है वहाँ पररूप कहलाता है, जैसे–प्र + एजते = प्रेजते, यहाँ अ ए = ए होता है। 3 पूर्वरूप–जहाँ पूर्व तथा पर वर्ण के मिलने पर पूर्ववर्ण हो जाता है वह पूर्वरूप कहलाता है; जैसे–हरे + अव = हरेऽव, यहाँ ए + अ = ए होता है। (iv)प्रकृतिभाव–जहाँ वर्णों को प्राप्त होने वाला कोई विकार नहीं होता, वह प्रकृतिभाव (जैसा का तैसा रहना) कहलाता है; जैसे–गो + अग्रम् = गो अग्रम्; यहाँ विकल्प से ओ + अ = ओ + अ ही रहता है; पूर्वरूप आदि नहीं होता।*

1 अक्	8 अश्	15 ऐच्	22 जश्	29 भष्	36 रल्
2 अच्	9 इक्	16 खय्	23झय्	30 मय्	37 वल्
3 अट्	10 इच्	17 खर्	24झर्	31 यञ्	38 वश्
4 अण्	11 इण्	18 ङम्	25झल्	32 यण्	39 शर्
5 अण्	12 उक्	19 चय्	26झश्	33 यम्	40 शल्
6 अम्	13 एङ्	20 चर्	27झष्	34 यय्	41 हल्
7 अल्	14 एच्	21 छव्	28 बश्	35 यर्	42 हश्

2- **इत्संज्ञक**–अष्टाध्यायी में निम्न वर्णों की इत्संज्ञा की गई है–(I) अन्त का हल्, (II) उपदेश में अनुनासिक अच् (स्वर), (III) प्रत्यय के आदि में आने वाले चवर्ग, टवर्ग, तथा षकार (IV) तद्धितभिन्न प्रत्ययों के आदि में आने वाला लकार, शकार तथा कवर्ग।(V) धातु के आदि ञि, टु, डु। इत्संज्ञक का लोप हो जाता है। किन्तु लोप हो जाने पर भी उसके उपलक्षण मानकर कुछ कार्य हो जाया करता है। जैसे 'गर्गादिभ्यो यञ् 4.1.105' से यञ् प्रत्यय होता है जिसमें ञ् इत् संज्ञक है अतः यञ् प्रत्यय ञित् है, इसके ञित् होने से आदि को वृद्धि होती है और 'गार्ग्यः' रूप बनता है। ये इत्संज्ञक 'अनुबन्ध' कहलाते हैं और इनके कारण व्याकरण में बड़ा लाघव हो गया है।

7- **कुछ ज्ञातव्य संज्ञाएँ**–

(i) अङ्गः जिस धातु या प्रातिपदिक से प्रत्यय का विधान किया जाता है उसे अङ्ग कहते हैं। जैसे–कर्ता, यहाँ कृ (प्रकृति) से तृच् प्रत्यय कहा गया है। कृ अङ्ग है।

(ii) प्रातिपदिकः धातु और प्रत्यय (प्रत्ययान्तों) को छोड़कर सभी अर्थयुक्त शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रत्ययान्तों में भी कृदन्त, तद्धितान्त तथा समस्त पदों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञक शब्द से सु आदि (सुप्) प्रत्यय लगते हैं।

(iii) पदः(क) सुबन्त तथा तिङन्त की पद संज्ञा होती है; जैसे–राम + सु = रामः यह सुबन्त है और पठ् + अ + ति = पठति यह तिङन्त पद है। सु से लेकर सुप् तक के सातों विभक्तियों के 21 प्रत्यय सुप् कहलाते हैं तथा ति से लेकर महिङ् तक धातु से लगने वाले 18 प्रत्यय तिङ् कहे जाते हैं। ये सुप् और तिङ् प्रत्याहार हैं। (ख) सित् (जिसमें स् की इत्संज्ञा हो) प्रत्यय परे होने पर पूर्व की पद संज्ञा होती है। (ग) सर्वनाम स्थान को छोड़कर सु से लेकर कप् तक के प्रत्यय परे होने पर पूर्व की पद संज्ञा होती है। पद संज्ञा हो जाने से राजत्वम् = (राजन् + त्व) में न लोप होता है।

(iv) भ संज्ञाः(क) जिस प्रत्यय के आरंभ में यकार या अच् (स्वर) होता है उसके परे होने पर पूर्व की भसंज्ञा होती है, पद संज्ञा नहीं। (ख) तकारान्त और सकारान्त शब्द की मत्वर्थ प्रत्यय परे होने पर भ संज्ञा होती है।

(v) विभाषाः प्रतिषेध तथा विकल्प की विभाषा संज्ञा होती है (न वेति विभाषा 1.1.44) विभाषा का अर्थ है किसी कार्य का विकल्प से होना। 'वा' तथा 'अन्यतरस्याम्' शब्दों का भी विभाषा शब्द के अर्थ मे प्रयोग किया जाता है। वह विभाषा कई प्रकार की होती है, जैसे 1. प्राप्तविभाषा–किसी नियम से प्राप्त हुए कार्य का विकल्प, 2. अप्राप्तविभाषा–किसी नियम से अप्राप्त कार्य का विकल्प से विधान, 3. उभयत्र विभाषा

(प्राप्ताप्राप्त विभाषा)—कहीं प्राप्त तथा कहीं अप्राप्त विधि का विकल्प, 4. व्यवस्थित विभाषा—व्यवस्था से विकल्प अर्थात् कहीं कार्य होना कहीं न होना।

(vi) उपधाः अन्तिम वर्ण से पहले वाले वर्ण की उपधा संज्ञा होती है। (अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा 1.1.65)। जैसे—पठ् में पकार से अंगले अकार की उपधा संज्ञा है।

(vii) **टिः** किसी शब्द का अन्तिम स्वर—सहित आगे वाला अंश टि कहलाता है (अचोऽन्त्यादि टि 1.1.4) जैसे पठ् में अठ् टि संज्ञक है।

1.संयोगः जब व्यजंनों (हल्) के बीच मे स्वर नहीं होते तो यह व्यजंनों का संयोग कहलाता है (हलोऽनन्तराः संयोगः 1.1.7)। जैसे अल्प में ल् और प् का संयोग है।

2.सम्प्रसारणः य् व् र् ल्, के स्थान पर होने वाले इ, उ, ऋ तथा लृ की सम्प्रसारण संज्ञा होती है (इग्यणः सम्प्रसारणम् 1.1.45)।

(viii) गुणः अ, ए तथा ओ की गुण संज्ञा होती है (अदेङ् गुणः 1.1.2)।

(ix) वृद्धिः आ, ऐ तथा औ की वृद्धि संज्ञा होती है (वृद्धिरादैच् 1.1.1)।

(x) लोपः प्राप्त हुए प्रत्ययादि का अपने स्थान पर दृष्टिगोचर न होना लोप कहलाता है (अदर्शनं लोपः 1.1.60)। प्रत्यय के लोप की विविध स्थलों पर लुक् श्लु तथा लुप् संज्ञा होती है। (प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः 1.1.61) अर्थात् जिस संज्ञा से प्रत्यय को लोप कहा जाता है उसकी वही संज्ञा होती है।

(xi) आदेशः किसी वर्ण आदि के स्थान पर दूसरा वर्ण आदि होना आदेश कहलाता है, जैसे समास में क्त्वा के स्थान पर ल्यप् हो जाता है।

(xii) आगमः किसी वर्ण आदि का प्रकृति या प्रत्यय के साथ आ मिलना आगम कहलाता है। ये आगम प्रायः तीन प्रकार के होते हैं—टित्, कित् तथा मित्। जो टित् आगम होता है, वह जिसे कहा जाता है उसके आदि में होता है, कित् अन्त में होता है। मित् अन्त्य के अच् से परे होता है।

टिप्पणीः आदेश तथा आगम प्राचीन संज्ञाएँ हैं, पाणिनि ने इनके लिए कोई सूत्र नहीं बनाया।

8- **शब्द—सिद्धि में सहायक कुछ अन्य उपायः**(i) योग—विभाग—कभी—कभी कुछ प्रयोगों में किसी प्रत्यय आदि का विधान यथोपलब्ध नियमों से नहीं होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय में

प्रस्तुत ग्रन्थ न तो कोई शोध का ग्रन्थ है और न ही पाण्डित्य प्रदर्शन का। इसका मुख्य उद्देश्य है छात्रों के लिए पाठ्य सामग्री प्रस्तुत करना। सूत्रों की व्याख्याओं में पूर्व विद्वानों की व्याख्याओं का आश्रय लिया गया है। जो भी व्याख्या विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी है उसे यथावत् ग्रहण किया गया है ताकि विद्यार्थियों को अधिकाधिक लाभ हो सके। सूत्रों के अन्त में जो संख्या दी गई है वह अष्टाध्यायी के क्रम को सूचित करती है। जैसे 2.3.45 संख्या अष्टाध्यायी के दूसरे अध्याय के तीसरे पाद के पैंतालीसवें सूत्र की ओर संकेत करती है।

ओ३म्

इकाई – 1

संज्ञा, सन्धि एवं स्त्री प्रत्यय

इकाई की रूपरेखा

1.1 परिचय

1.2 उद्‌देश्य

1.3 संज्ञाप्रकरण (अर्थ एवं व्याख्या)

1.4 सन्धि प्रकरण (अर्थ एवं व्याख्या)

1.4.1 अच् सन्धि

1.4.2 हल् सन्धि

1.4.3 विसर्ग सन्धि

1.5 स्त्री प्रत्यय (अर्थ व्याख्या एवं रूपसिद्धि)

1.6 अपनी प्रगति जांचिए

1.7 निष्कर्ष

1.8 पदविश्लेषण

1.9 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई में वरदराज प्रणीत लघुसिद्धान्त कौमुदी के तीन महत्त्वपूर्ण प्रकरणों को रखा गया है। संज्ञा प्रकरण, सन्धि प्रकरण एवं स्त्री प्रत्यय।

संज्ञायते इति, संज्ञायतेऽनया इति इन दो व्युत्पत्तियों से क्रमशः कर्म या करण में आतश्चोपसर्गे (अष्टा. 3.3.106) सूत्र से 'अङ्' प्रत्यय होकर संज्ञा शब्द व्युत्पन्न होता है। प्रथम व्युत्पत्ति से पदार्थ–विशेष के बोधक के रूप में जिस शब्द का ज्ञान कराया जाये अर्थात् परिभाषित किया जाये उसे संज्ञा कहा जायेगा तथा द्वितीय व्युत्पत्ति के अनुसार जो शब्द व्यवहारिक ज्ञान के आधार पर किसी पदार्थ विशेष के बोधक के रूप में स्वीकृत है, भले ही शास्त्रकार ने उसकी परिभाषा न की हो वह संज्ञा कहलाता है। इन दोनों व्यत्पत्तियों का ध्यान में रखते हुए शास्त्रकार द्वारा परिभाषित अथवा अपरिभाषित पदार्थ–विशेष का बोध कराने शब्द संज्ञा कहे जाते हैं। संज्ञा का एक

अन्य प्रयोजन लाघव भी है– लघ्वर्थमिदं संज्ञाकरणम्। संज्ञाप्रकरण के द्वारा पाणिनि वर्णों के माध्यम से एक पूरे समुदाय का बोध कराने में समर्थ हो जाते हैं, यहां पर वरदराज ने सर्वप्रथम चौदह प्रत्याहार सूत्रों को रखा है, जिससे की अच्, अक् आदि प्रत्याहार बनाने की प्रक्रिया का बोध हो सके क्योंकि पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश–हेतु प्रत्याहार बोध अत्यन्त आवश्यक है।

तदन्तर इत् लोप, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अनुनासिक, सवर्ण संहिता, संयोग एवं पद जैसी चयनित विशिष्ट संज्ञा विधायक सूत्रों का रखा है। जिससे कि इन संज्ञाओं के स्वरूप एवं प्रयोग का विधिवत् बोध हो सके। इन संज्ञाओं से परिचय के उपरान्त विद्यार्थी पाणिनीय व्याकरण में संज्ञा प्रकरण के महत्त्व एवं उसके अनुप्रयोग के नियम में गहन ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस इकाई का द्वितीय विवेच्य विषय है, सन्धि प्रकरण। यद्यपि आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'सन्धि' शब्द कर प्रयोग नहीं किया है इसकी अपेक्षा वे 'परः सनिकर्षः संहिता'(अष्टा.1.4.108) इस सूत्र से वर्णों की अत्यधिक समीपता की संहिता संज्ञा करते हैं एवं संहिता (वर्णों की अत्यधिक समीपता) होने पर ही सन्धि कार्य होते हैं। वरदराज ने सन्धि प्रकरण को तीन भागों में विभाजित किया है– अच् सन्धि, हल् सन्धि एवं विसर्ग सन्धि। यहां पर अच् सन्धि का अभिप्राय स्वरसन्धि से है एवं हल् सन्धि का व्यंजन सन्धि से। अच् सन्धि के अन्तर्गत स्वरों की अत्यधिक समीपता होने पर जो पूर्ववर्ती एवं परवर्ती स्वर का परस्पर एकादेश होना है उसके विधायक सूत्र एवं उदाहरणों को दर्शाया गया है।

अच् सन्धि में यण्, अयादि, गुण, वृद्धि, पररूप, दीर्घ एवं प्रगृह्य सन्धियों की सूत्र एवं उदाहरण पुरस्सर विस्तृत एवं सुबोध चर्चा की गयी है, जिसके आधार पर भाषागत सन्धि युक्त पदों को भी सरलता से पहचाना जा सकेगा।

हल् सन्धि प्रकरण में व्यंजनों के बीच होने वाले सन्धिकार्यों एवं सूत्रों का वर्णन किया गया है। हल् सन्धि में मुख्यतः श्चुत्व सन्धि, ष्टुत्व, जश्त्व, परसवर्ण, चर्त्व, अनुस्वार आदि सन्धियों का सुगम प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार विसर्ग सन्धि में वरदराज ने विसर्ग आधारित सन्धि विधायक सूत्रों का रखा है तथा उनके शास्त्रीय उदाहरणों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है जिनमें सत्व, रुत्व, उत्व आदि प्रमुख हैं।

स्त्री प्रत्यय प्रकरण में स्त्रीत्व की विवक्षा में किये जाने वाले प्रत्यय एवं तत्विधायक सूत्रों का रखा गया है। इनमें अदन्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय, ङीप् प्रत्यय, ङीष् प्रत्यय, ङीन् प्रत्यय एवं ति प्रत्ययों का विधान करने वाले सूत्रों एवं उनके लौकिक उदाहरणों को सुगमतया से प्रस्तुत किया गया है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप संस्कृत व्याकरण के कतिपय आरम्भिक तथ्यों का समझ सकेंगे।

प्रत्याहार सूत्रों से परिचय होगा।

प्रत्याहार निर्माण की वैज्ञानिक प्रक्रिया से परिचय होगा।

इत्, लोप, संयोग एवं पर आदि महत्त्पूर्ण संज्ञाओं से परिचय होगा, जिनका पदे पदे प्रयोग किया जाता है।

सन्धि की व्याकरणिक अवधारणा को जान पायेंगे।

अच्, हल्, एवं विसर्ग सन्धि विधायक सूत्रों एवं उनके उदाहरणों को समझकर उनका भाषा में अनुप्रयोग कर पायेंगे।

स्त्री प्रत्ययों से परिचय होगा।

स्त्रीलिङ्ग शब्दों की प्रक्रिया समझ सकेंगे।

1.3 संज्ञाप्रकरण (अर्थ एवं व्याख्या)

अइउण् ।1। ऋलृक् ।2। एओङ् ।3। ऐऔच् ।4 ।हयवरट् ।5। लण् ।6। ञमङणनम् ।7 ।झभञ् ।8। घढधष् ।9 ।जबगडदश् ।10। खफछठथचटतव् ।11। कपय् ।12। शषसर्। 13। हल् ।14।

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः।

व्याख्याः ये 14सूत्र माहेश्वर सूत्र कहलाते हैं। इनसे अण् आदि प्रत्याहार संज्ञाएं बनती हैं। ये संज्ञाएं पाणिनि के व्याकरण में सर्वत्र प्रयुक्त हैं। इन सूत्रों में अन्तिम वर्ण अनुबन्ध कहलाता है जिसकी इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा का प्रयोजन उसका लोप करना है। हकारादि व्यंजन अ स्वरयुक्त पढ़े गए हैं क्योंकि व्यंजनों का प्रयोग स्वर की सहायता के बिना नहीं हो सकता। परन्तु लण् सूत्र में ल् के साथ आने वाला अकार इत्संज्ञक है।

हलन्त्यम् 1.1.3

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात्। उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।

व्याख्याः उपदेश अवस्था में जो अन्तिम हल होता है, उसकी इत्संज्ञा होती है। हल् से तात्पर्य व्यंजन है क्योंकि हल् प्रत्याहार में सभी व्यंजन आ जाते हैं। पाणिनि ने जिस रूप मे सूत्र का उच्चारण किया है उसे उपदेश कहते हैं। सूत्र के अतिरिक्त प्रत्यय आदि में भी पाणिनि द्वारा जिस रूप में पठित हैं उसे भी उपदेश कहते हैं। पाणिनि द्वारा उपदिष्ट अवस्था में अन्त में जो हल् आता है उसकी इत्संज्ञा होती है। इत् संज्ञा का प्रयोजन उस वर्ण का लोप करना है,

यह अग्रिम सूत्रों से स्पष्ट होगा ।

अदर्शनं लोपः 1.1.60

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः विद्यमान होने पर भी जो दिखाई न दे, उसकी लोप संज्ञा होती है। जैसे व्यवहार में अइउण् आदि सूत्रों में ण् आदि अनुबन्धों को नहीं गिना जाता, अतः इनकी लोप संज्ञा कहलाती है। किसी वर्ण को किसी नियम द्वारा अदृष्ट कर दिया जाए अर्थात् उसका श्रवण या उच्चारण न हो उसकी लोप संज्ञा होती है।

तस्य लोपः 1.3.9

तस्येतो लोपः स्यात्। णादयोऽणाद्यर्थाः।

व्याख्याः जिसकी इत् संज्ञा हो उसका लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त माहेश्वर सूत्रों में आने वाले अन्तिम हल् की हलन्त्यम् से इत् संज्ञा हो जाती है। अतः अण् आदि प्रत्याहारों मे इनकी गणना नहीं होगी।

आदिरन्त्येन सहेता 1.1.71

अन्त्येनेता सहेता आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथा अण् इति अइउ वर्णानां संज्ञा। एवम् अच्, अल्, हलित्यादयः।

व्याख्याः आदि वर्ण के साथ जब अन्तिम इत् वर्ण उच्चरित हो तो वह संज्ञा आदि वर्ण के साथ इत्संज्ञक वर्ण तक आने वाले वर्णो की भी होती है। जैस अइउण् सूत्र में आदि वर्ण अ है और अन्तिम इत् वर्ण ण् है। इसलिए अण् संज्ञा अ तथा मध्य में आने वाले वर्णों इ तथा उ के लिए प्रयुक्त होगी। इसी प्रकार हल् में आदि वर्ण ह है और ल् अन्तिम सूत्र हल् में इत्संज्ञक है। इसलिए हल् संज्ञा ह् से लेकर ल् तक सभी वर्णों के लिए प्रयुक्त होगी। इस नियम के आधार पर प्रत्याहार बनाए जाते हैं। प्रत्याहार बनाने की विधिः उपर्युक्त माहेश्वर सूत्रों मे आए हुए किसी भी वर्ण से प्रत्याहार बनाए जा सकते हैं। वर्ण चाहे सूत्र के आदि में हो या मध्य में उसी से प्रारम्भ करके किसी भी इत्संज्ञक वर्ण तक गणना की जा सकती है। जहाँ से गणना प्रारम्भ की गई है उस वर्ण से लेकर इत्संज्ञक वर्ण तक जितने भी वर्ण आए हैं सभी उस प्रत्याहार में सम्मिलित होंगे। अच् प्रत्याहार में अइउण् सूत्र में आए हुए अ से गणना प्रारम्भ होगी और ऐऔच् सूत्र में आए हुए इत्संज्ञक वर्ण च् तक गणना होगी। अ से लेकर च् तक आए हुए सभी वर्ण अच् प्रत्याहार में सम्मिलित होंगे। परन्तु अच् प्रत्याहार में इत्संज्ञक वर्ण च् तथा बीच में आए हुए अन्य सूत्रों के अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण सम्मिलित नहीं होंगे क्योंकि इत्संज्ञक वर्ण का लोप हो जाता है। अतः अच् प्रत्याहार में वर्ण होंगे – अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ । इसमें इत्संज्ञक वर्ण ण्, क्, ङ् तथा च् सम्मिलित नहीं होंगे। इसी प्रकार सभी प्रत्याहार बनाए जा सकते हैं।

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः 1.2.27

उश्च ऊश्च उ३श्च वः। वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा।

व्याख्याः उ स्वर के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे एक मात्रा काल कहते हैं। एक मात्रा काल की ह्रस्व संज्ञा होती है। दीर्घ ऊ के उच्चारण में दो मात्रा का काल होता है। दो मात्रा काल वाले स्वर की दीर्घ संज्ञा होती है। तीन मात्रा काल वाले स्वर की प्लुत संज्ञा होती है। प्रत्येक स्वर के उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित ये तीन भेद होते हैं।

उच्चैरुदात्तः 1.2.29

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः ताल्वादि स्थानों से वर्णों का उच्चारण होता है। जो स्वर ताल्वादि के ऊपर के भाग से उत्पन्न होता है उसकी उदात्त संज्ञा होती है।

नीचैरनुदात्तः 1.2.30

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानष्वधोभागे निष्पन्नोऽच् अनुदात्तसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः जो स्वर ताल्वादि के नीचे के भाग से उत्पन्न होता है उसकी अनुदात्त संज्ञा होती है।

समाहारः स्वरितः 1.2.31

उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यत्र सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात्। स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकभेदेन द्विधा।

व्याख्याः जिस अच् मे उदात्त तथा अनुदात्त दोनों का धर्म मिश्रित हो उसे स्वरित कहते हैं। अर्थात् जो वर्ण ताल्वादि के मध्य भाग से बोला जाए उसे स्वरित कहते हैं। इस प्रकार स्वर 9 प्रकार का होता है। अनुनासिक और अननुनासिक ये दो भेद भी प्रत्येक स्वर के होते है।

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः 1.1.8

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्। तदित्थम् – अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादशभेदाः। लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात्। एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्।

व्याख्याः मुख और नासिका दोनों से उच्चरित होने वाला वर्ण अनुनासिकसंज्ञक होता है। वर्ण का उच्चारण तीन द्वारों से होता है – मुख से, नासिका से तथा मुख और नासिका दोनों से। केवल मुख से उच्चरित होने वाला वर्ण सामान्य होता है। अ, इ, क ,ख आदि वर्ण केवल मुखद्वार से उच्चरित होते हैं। केवल नासिका से उत्पन्न होने वाले वर्ण नासिक्य कहलाते हैं। अनुस्वार (.) नासिक्य ध्वनि है। मुख और नासिका एक साथ दोनों से उच्चरित होने वाले वर्ण अनुनासिक कहलाते हैं। ङ्, ञ्, ण्, न् तथा म् अनुनासिक ध्वनियाँ हैं। जो स्वर केवल मुख से उच्चरित होता है वह अननुनासिक होता है। जो मुख और नासिक दोनों की सहायता से उच्चरित हो वह अनुनासिक होता है। प्रत्येक स्वर अनुनासिक या अननुासिक हो सकता है।

स्वरों के भेदः अ, इ, उ, ऋ में प्रत्येक के 18 भेद हैं। लृ का दीर्घ नहीं होता, अतः इसके 12 भेद हैं। ए, ओ, ऐ और औ में प्रत्येक के 12 भेद हैं क्योंकि इनका ह्रस्व नहीं होता।

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् 1.1.9

ताल्वादिस्थानमाभ्यान्तरप्रयत्नं चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः जिन वर्णों के तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यान्तर प्रयत्न समान हों उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है। किसी वर्ण के उच्चारण में किए गए प्रयास को प्रयत्न कहते हैं। प्रयत्न दो प्रकार का होता हे –1. आभ्यान्तर प्रयत्न तथा 2. बाह्य प्रयत्न । वर्ण के उच्चारण में मुख के भीतर होने वाले प्रयत्न को आभ्यान्तर प्रयत्न कहते हैं यह प्रयत्न जिह्वा का तालु आदि स्थान से सम्पर्क करते समय होता है। वर्ण को बाहर प्रकट करने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है उसे बाह्य प्रयत्न कहते हैं। इस प्रयत्न के द्वारा वर्ण बाहर प्रकट होता है, इसलिए इसे बाह्य प्रयत्न कहते हैं।

वा. ऋलृवर्णयोः मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्

ऋ और लृवर्ण परस्पर सवर्ण होते हैं।

वर्णों के उच्चारण स्थानः

1. अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। 2. इचुयशानां तालु। 3. ऋटुरषाणां मूर्धा। 4. लृतुलसानां दन्ताः। 5. उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। 6. ञमङ्णनानां नासिका च। 7. एदैतोः कण्ठतालू। 8. आदौतोः कण्ठोष्ठम्। 9. वकारस्य दन्तोष्ठम्। 10. जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। 11. नासिकाऽनुस्वारस्य।

1. अकार, कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ), हकार और विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है।

2. इकार, चवर्ग (च, छ, ज , झ, ञ) यकार और शकार का उच्चारण स्थान तालु है।

3. ऋकार, टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण), र और ष का उच्चारण स्थान मूर्धा है।

4. लृ तवर्ग (त, थ,, द, ध, न), ल और स का उच्चारण स्थान दन्त है।

5. उकार, पवर्ग (प, फ , ब, भ, म) उपध्मानीय का उच्चारण स्थान ओष्ठ हैं।

6. ञ, म, ङ, ण, न का उच्चारण मुख और नासिका है।

7. एकार और ऐकार का उच्चारण स्थान कण्ठ–तालु है।

8. ओकार और औकार का उच्चारण स्थान कण्ठोष्ठ है।

9. वकार का उच्चारण स्थान दन्तोष्ठ है।

10. जिह्वामूलीय का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है।

11. अनुस्वार का उच्चारण स्थान अनुस्वार है।

प्रयत्नः

यत्नो द्विधा – आभ्यान्तरो बाहय्श्च। आद्या पंचधा–स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्माणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम् , प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव। बाह्यस्त्वेकादशधा – विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च। वर्गाणां प्रथम–तृतीय–पंचम यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः। कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तस्थाः। शल ऊष्माणः। अच् स्वराः। क ख इति प्रागार्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। प फ पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

आभ्यान्तर प्रयत्न पाचँ प्रकार का होताहै–स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत तथा संवृत। स्पर्शों का प्रयत्न स्पर्श है। क से लेकर म तक स्पर्श कहलाते हैं। अन्तस्थों का प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट होता है। यण् अर्थात् य र ल व अन्तस्थ कहलाते हैं। ऊष्मों का प्रयत्न ईषद्विवृत कहलाता है। शल् अर्थात् श ष स ह ऊष्म कहलाते हैं। स्वरों का प्रयत्न विवृत होता है। अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले सभी वर्ण स्वर कहलाते हैं।ह्रस्व अकार प्रयोग में संवृत होता है परन्तु व्याकरण प्रक्रिया के निर्वाह के लिए इसे विवृत पढ़ा गया है। बाह्य प्रयत्न 11 प्रकार का होता है– विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित। खर् अर्थात् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स का प्रयत्न विवार, श्वास तथा अघोष होता है। हश् अर्थात् ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द का प्रयत्न संवार, नाद तथा घोष है। वर्ग के प्रथम, तृतीय तथा पंचम वर्ण तथा यण् का प्रयत्न अल्पप्राण होता हैं। वर्ग के द्वितीय, चतुर्थ तथा शल् का प्रयत्न महाप्राण होता है। क और ख से पूर्व विसर्ग आधे विसर्ग के समान बोले जाते हैं। उन्हें जिह्वामूलीय कहते है। इसी प्रकार प और फ से पूर्व विसर्ग आधे विसर्ग के समान बोले जाते हैं। उन्हें उपध्मानीय कहते हैं। ऊपर कहा जा चुका है जिह्वामूलीय का उच्चारण स्थान जिह्वामूल होता है तथा उपध्मानीय का उच्चारण स्थान ओष्ठ होता है।

अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः 1.1.69

प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः। अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। अत्रैव अण् परेण णकारेण। कु

चु टु तु पु एते उदितः। तदेवम् – अ इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः। एवं लृकारोऽपि। एचो द्वादशानां। अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा। तेनाननुनासिकास्ते द्वयो द्वयोः संज्ञा।

व्याख्याः अण् प्रत्याहार में आने वाले वर्ण तथा जिनमें ह्रस्व उकार की इत्संज्ञा है वे वर्ण अपने सवर्ण को भी ग्रहण करते हैं, परन्तु प्रत्यय के विषय में यह बात लागू नहीं होती। ण् अनुबन्ध दो सूत्रों में आया है – अइउण् तथा लण् में। यहाँ शंका होती है कि कौन से णकार से अण् प्रत्याहार बनाया जाए। इसका उत्तर यह है कि यहाँ अण् प्रत्याहार में बाद वाले णकार का ग्रहण है। यहाँ अण् प्रत्याहार से तात्पर्य है अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल वर्ण। उदित में कु चु टु तु पु आते हैं। पाणिनि यदि कु से सम्बन्धित नियम बताते हैं तो वह क के सवर्ण ख ग घ तथा ङ पर भी लागू होगा। इस प्रकार अ 18 प्रकार के अ का बोधक है। इसी प्रकार इकार तथा उकार। ऋ और लृ की सवर्ण संज्ञा है इसलिए 18 प्रकार का ऋकार और 12 प्रकार का लृकार, दोनों मिलकर ऋकार 30 प्रकार का हुआ। एच् अर्थात् ए ओ ऐ औ प्रत्येक 12 प्रकार के हुए। अनुनासिक और अननुनासिक भेद से य व ल प्रत्येक दो प्रकार के हुए।

परः सन्निकर्षः संहिता 1.4.109

वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः वर्णों के अत्यन्त सामीप्य को संहिता कहते हैं। जैसे विद्या + आलयः , यहाँ विद्या का आ तथा आलयः का आ दोनों अत्यन्त समीप हैं। इनके बीच में दूसरा कोई वर्ण नहीं है। दोनों को मिलकर आ हो जाता है। अतः आ की संहिता संज्ञा हुई। सरल शब्दों में हम दो अत्यन्त समीप वर्णों के मेल को संहिता कहते हैं।

हलोऽनन्तराः संयोगः 1.1.7

अज्भिरव्यवहिताः हलः संयोगसंज्ञाः स्युः।

व्याख्याः जिन दो व्यंजनों के बीच में किसी अच् का व्यवधान न हो उनकी संयोग संज्ञा होती है। अर्थात् संयुक्त व्यंजनों की संयोग संज्ञा होती है। जैसे अध्यात्म शब्द में ध् और य् की संयोग संज्ञा है।

सुप्तिङन्तं पदम् 1.1.14

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः सुप् और तिङ् प्रत्यय जिस के अन्त में हो उसकी पद संज्ञा होती है। जो शब्दरूप वाक्य में प्रयोग के योग्य हो उसकी पद संज्ञा होती है। पद के मूल रूप को प्रातिपदिक या धातु कहते हैं। प्रातिपदिक से सुप् प्रत्यय जोड़े जाते हैं और धातु से तिङ् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। सुप् प्रत्यय के योग से संज्ञा रूप, सर्वनाम रूप, विशेषण आदि रूप बनते हैं। तिङ् प्रत्यय के योग से क्रिया रूप बनते हैं। सुप् और तिङ् प्रत्ययों का विवरण आगे दिया जाएगा। यास्क आदि प्राचीन आचार्यों ने पद चार प्रकार के माने हैं – नाम(संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि), आख्यात (क्रियारूप), उपसर्ग तथा निपात। पाणिनि ने उपसर्गों का समावेश तिङन्तों में कर लिया है, और निपातों का सुबन्तों में। कृदन्त और तद्धितान्त रूप सुबन्तों के अन्तर्गत समाविष्ट हैं क्योंकि सुप् लगाकर ही ये पद बनते हैं।

(इति संज्ञाप्रकरणम्)

1.4 सन्धि प्रकरण (अर्थ एवं व्याख्या)

1.4.1 अच् सन्धि

इको यणचि 6.1.77

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। 'सुधी + उपास्य' इति स्थिते।

व्याख्याः इक् से परे अच् हो तो इक् को यण आदेश हो जाता है, संहिता के विषय में। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, संहिता का अर्थ है वर्णों का अत्यन्त सामीप्य। इस प्रकार संहिता का अर्थ है सन्धि। इक् में वर्ण हैं – इ, उ, ऋ, लृ। यण् में वर्ण हैं य्, व्, र्, ल्। इक् से परे यदि अच् हो तो स्थानेन्ऽतरतमः(1.1.50) तथा यथासंख्यमनुदेशः समानाम् (1.3.10) सूत्रों के बल पर इ को य्, उ को व्, ऋ को र् तथा लृ को ल् आदेश होता है। जैसे सुधी + उपास्यः में ई से परे उ अच् है, इसलिए ई को य् प्राप्त होता है। सूत्र में इकः में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग है। इसलिए षष्ठी स्थानेयोगा (1.1.49) परिभाषा सूत्र के बल पर इक् के स्थान पर यण् प्राप्त होता है। परन्तु सुधी + उपास्यः में कई इक् हैं। अब यह निर्णय किस प्रकार हो कि कौन से इक् के स्थान पर यण् हो । इसका निर्णय पाणिनि के अगले सूत्र से होगा।

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1.1.66

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणऽव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्।

व्याख्याः तस्मिन् से तात्पर्य है सप्तम्यन्त पद। सूत्र का अर्थ हुआ – सप्तम्यन्त पद के द्वारा जो कार्य विधीयमान हो वह सप्तम्यन्त पद से निर्दिष्ट पूर्व वर्ण पर होगा। जैसे इको यणचि सूत्र में अचि पद में सप्तमी विभक्ति है। इसलिए अच् से पूर्व वर्ण पर कार्य होगा। इसलिए धी के ईकार के स्थान पर यण् आदेश होगा। ध्यान रहे ह्रस्व वर्ण पर विधीयमान कार्य उसके सवर्ण दीर्घ या प्लुत पर भी अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र के बल पर होगा।

स्थानेऽन्तरतमः 1.1.50

प्रसंगे सति सदृशतमः आदेशः स्यात्। 'सुध्य् + उपास्यः' इति प्राप्ते।

व्याख्याः एक स्थानी के स्थान पर जब कई आदेश प्राप्त हो रहे हों तो जो स्थानी के सर्वाधिक निकट है वही आदेश होगा। उच्चारण स्थान का सामीप्य अत्यन्त सामीप्य माना जाता है। इसलिए जिस वर्ण का स्थानी के साथ उच्चारण स्थान का सामीप्य हो वही आदेश होगा। सुधी + उपास्यः में ई को चार वर्णो अर्थात् य् व् र् ल् में से कोई एक आदेश प्राप्त होता है। किस वर्ण का आदेश हो इसका निर्णय उच्चारण स्थान के सामीप्य से होगा। ई का उच्चारण स्थान तालु है। य् का कण्ठतालू , व् का कण्ठोष्ठ , र् का मूर्धा और ल् का दन्त। इनमें य् ही ई के सर्वाधिक निकट है। अतः ई के स्थान पर य् आदेश होगा। इस प्रकार सुध्य् +उपास्यः यह स्थिति हई।

अनचि च 8.4.47

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

व्याख्याः अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व हो परन्तु यर् से परे अच् हो तो द्वित्व नहीं होता। द्वित्व से तात्पर्य है दो हो जाना। विकल्प से तात्पर्य है एक पक्ष में होना तथा दूसरे पक्ष में न होना। इस प्रकार धकार को

द्वित्व होने पर स्थिति होगी – सुध्ध्य् + उपास्यः।

झलां जश् झशि 8.4.53

स्पष्टम्। इति पूर्व धकारस्य दकारः।

व्याख्याः झलों से परे यदि झश् हो तो झलों को जश् आदेश हो जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में ध् से परे ध् है। ध् झल् प्रत्याहार में भी आता है और झश् में भी ,इसलिए पूर्व धकार को दकार आदेश् होगा। इस प्रकार स्थिति होगी – सुद्ध्य् + उपास्यः।

संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23

संयोगान्तं यत्पदं तदन्त्यस्य लोपः स्यात्।

व्याख्याः संयोग जिस पद के अन्त में हो उस के अन्तिम वर्ण का लोप हो जाता है। यहाँ सूत्र में अन्तिम वर्ण के लोप का सीधा निर्देश नहीं है। सूत्र के अर्थ के अनुसार पूरे पद का लोप प्राप्त होता है। अन्तिम वर्ण का लोप अग्रिम सूत्र के बल पर प्राप्त होता है।

अलोऽन्त्यस्य 1.1.52

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यादेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते –

व्याख्याः षष्ठी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट आदेश अन्तिम वर्ण के स्थान पर होता है। जिस शब्द या वर्ण के स्थान पर कोई अन्य शब्द या वर्ण लाया जाए उसे स्थानी कहते हैं और जो शब्द या वर्ण लाया जाए उसे आदेश कहते हैं। यदि स्थानी बोधक पद में सूत्र में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया गया है तो उसके स्थान पर होने वाला आदेश षष्ठीनिर्दिष्ट आदेश कहलाता है। उपर्युक्त उदाहरण सुद्ध्य् + उपास्यः में संयोगान्तस्य लोपः सूत्र से पूरे शब्दरूप सुद्ध्य् के स्थान पर लोप आदेश प्राप्त होता है। परन्तु सूत्र में संयोगान्तस्य पद में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है, अतः संयोगान्त पद के स्थान पर होने वाला आदेश षष्ठीनिर्दिष्ट है। इसलिए पूरे संयोगान्त पद का लोप न होकर केवल अन्तिम वर्ण का लोप होगा। इसलिए सुद्ध्य् + उपास्यः में सुद्ध्य् के अन्तिम य् का लोप प्राप्त होता है। परन्तु यकार के लोप का अग्रिम वार्तिक द्वारा निषेध हो जाता है। **वा. यणः प्रतिषेधो वाच्यः।**

अर्थात् संयोगान्त यण् का लोप नहीं होता है। इस प्रकार व्यंजन और स्वरों के मेल से रूप हुआ सुद्ध्युपास्यः। क्योंकि अनचि च सूत्र से धकार का द्वित्व विकल्प से हुआ था, इसलिए दूसरा वैकल्पिक रूप होगा – सुध्युपास्यः। इसी प्रकार मधु+ अरिः = मद्ध्वरिः तथा मध्वरिः, धातृ+ अंशः = धात्त्रंशः तथा धात्रांशः, लृ+आकृतिः = लाकृतिः। इन उदाहरणों में उ के स्थान पर व् , ऋ के स्थान पर र् तथा लृ के स्थान पर ल् आदेश हुए हैं।

एचोऽयवायावः 6.1.78

एचः क्रमाद् अय् , अव् , आय् , आव् एते स्युरचि।

व्याख्याः एच् से परे यदि अच् हो तो एच् के स्थान पर क्रम से अय् , अव् , आय् तथा आव् आदेश होते हैं।

यथासंख्यमनुदेशः समानाम् 1.3.10

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

व्याख्याः यदि स्थानी और आदेश दोनों की संख्या समान हो तो आदेशः क्रम से होते हैं , अर्थात् प्रथम स्थानी के स्थान पर प्रथम आदेश , द्वितीय के स्थान पर द्वितीय आदि। एच् में चार वर्ण हैं – ए , ओ , ऐ और औ। इनके स्थान पर आदेश भी चार बताए गए हैं – अय् , अव् , आय् , आव्। इसलिए ए के स्थान पर अय्, ओ के स्थान पर अव् , ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् आदेश होंगे। इनके उदाहरण हैं – हरे + ए = हरये , विष्णो + ए = विष्णवे , नै + अकः = नायकः तथा पौ + अकः = पावकः। इन उदाहरणों में ए के स्थान पर अय् , ओ के स्थान पर अव् , ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् आदेश होकर व्यंजन और स्वर के मेल से ये रूप बने हैं।

वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79

वकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः। गव्यम्। नव्यम्।

व्याख्याः यदि ओ और औ से परे कोई यकारादि प्रत्यय हो तो ओ को अव् और औ को आव् आदेश हो जाता है। एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा ओ को अव् और औ को आव् आदेश तभी प्राप्त होते हैं जब इनसे परे कोई अच् हो। इस सूत्र के द्वारा यकारादि प्रत्यय परे होने पर भी अव् और आव् का विधान किया गया है। वान्त का अर्थ है वकारान्त अर्थात् अव् और आव्। यि प्रत्यये का अर्थ है यकारादि प्रत्यय परे होने पर। जब किसी अल् को निमित्त मान कर किसी कार्य का विधान किया जाता है तो वह कार्य अल् से प्रारम्भ होने वाले समस्त शब्दरूप के परे होने पर किया जाता है – यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे इस परिभाषा के बल पर। उदाहरण – गो + यम् = गव्यम् । यहाँ गोपयसोर्यत् संज्ञा सूत्र से गो शब्द से विकार अर्थ में यत् प्रत्यय का विधान किया गया है जो यकारादि है। इसलिए गो के ओ को अव् आदेश हुआ। इसी प्रकार नौ + यम् = नव्यम्। यहाँ भी नौ शब्द से परे यत् प्रत्यय हुआ है, इसलिए नौ के औ के स्थान पर आव् आदेश हुआ है। गव्य और नव्य प्रातिपदिकों से प्रथमा के एकवचन मे गव्यम् और नव्यम् रूप बने

वा. अध्वपरिमाणे च। गव्यूतिः।

व्याख्याः मार्ग को मापने के परिमाण अर्थ में भी गो शब्द से यूतिः शब्द के परे रहने पर ओ को अव् आदेश हो जाता है। जैसे –गो+यूति–गव्यूतिः। गव्यूतिः का अर्थ है दो कोस।

अदेङ् गुणः 1.1.2

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः अत् और एङ् (ए और ओ) की गुण संज्ञा हो। अत् में अ से परे त् है इसलिए तपरस्तत्कालस्य इस परिभाषा सूत्र के बल पर केवल ह्रस्व अकार का ग्रहण होगा।

तपरस्तत्कालस्य 1.1.70

तः परो यस्मात् स च तात्परश्च उच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात्।

व्याख्याः जिस स्वर से परे तकार हो या तकार से परे जो स्वर हो वह केवल उसी काल वाले स्वर का ग्रहण करता है जो सूत्र में उच्चारित है। जैसे अत् में अ से परे तकार है , इसलिए केवल ह्रस्व अकार का ही ग्रहण होगा। यदि अ से परे त न होता तो अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र के बल पर दीर्घ और प्लुत अकार का भी ग्रहण होता।

आद्गुणः 6.1.87

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्।

व्याख्या: अवर्ण से परे यदि अच् हो तो पूर्व और पर दोनों स्वरों के स्थान पर गुण एकादेश हो जाता है। अवर्ण से ह्रस्व, दीर्घ आदि सभी अकारों का ग्रहण होगा। जैसे उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः। गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम्। इन उदाहरणों में अ से परे इ होने पर दोनों के स्थान पर ए एकादेश हुआ है और आ से परे उ होने पर ओ एकादेश हुआ है। सूत्र में यद्यपि अच् परे होने पर कहा गया है परन्तु वस्तुतः यह नियम केवल इ , उ , ऋ और लृ अर्थात् इक् परे होने पर ही लागू होता है क्योंकि अ और आ परे होने पर दीर्घ सन्धि होती है तथा एच् परे होने पर वृद्धि सन्धि होती

है जिसका विवरण आगे दिया जाएगा। अब प्रश्न उठता है कि अ और इ के मेल होने पर ए गुण एकादेश क्यों हुआ ? अ भी तो गुणसंज्ञक है। इसका कारण यह है कि अ का स्थान कण्ठ है और इ का स्थान तालु। दोनों का मिलकर हुआ कण्ठतालु । ए का उच्चारण स्थान कण्ठतालू है, इसलिए ए एकादेश हुआ। इसी प्रकार अ और उ के स्थान पर कण्ठोष्ठ ओ एकादेश हुआ।

उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2

उपदेशेऽनुनासिकोऽज् इत्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः।

व्याख्या: उपदेश अवस्था में जो अच् अनुनासिक पढ़े गए हैं उनकी इत् संज्ञा होती है। पाणिनि ने कुछ वर्ण सानुनासिक पढ़े थे जिसका उद्देश्य उन्हें इत्संज्ञक करना था। आजकल पुस्तकों में हमें सानुनासिक पाठ नहीं मिलता है। केवल रूप रचना की प्रक्रिया से ही अनुमान लगाया जाता है कि कौन सा वर्ण सानुनासिक पढ़ा गया है।

उरण् रपरः 1.1.51

लण्सूत्रास्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा। ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योऽण् सो रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः। तवल्कारः।

व्याख्या: माहेश्वर सूत्रों में हयवरट् के बाद लण् सूत्र पढ़ा गया है। ल के बाद जो अकार पढ़ा गया है वह इत्संज्ञक है। अतः र् एक प्रत्याहार है जिसमें र् और ल् का ग्रहण होता है। सूत्र का अर्थ है – ऋ के स्थान पर होने वाला अण् आदेश र् परक होता है। ऋ से तात्पर्य ऋ और लृ दोनों वर्णों से है। ऋ 18 प्रकार का होता है और लृ 12 प्रकार का होता है क्योंकि लृ का दीर्घ नहीं होता। इस प्रकार ऋ को 30 प्रकार का माना गया है यह बात पहले बताई जा चुकी है। आद्गुणः सूत्र से अवर्ण से परे इक् होने पर गुण एकादेश बताया गया है। इस प्रकार यदि अ से परे ऋ हो तो दोनों को स्थानेन्ऽतरतमः से अ गुण एकादेश होता ह क्योंकि अ और ऋ में अ ही गुणसंज्ञक है। यह अ र् परक होगा। इसी प्रकार अ से परे यदि लृ हो तो दोनों के स्थान पर अ गुण एकादेश होगा। यह अ ल् परक होगा। जैसे कृष्ण + ऋद्धिः इस स्थिति में अ और ऋ के स्थान पर अर् आदेश होकर कृष्णर्द्धिः (कृष्ण की समृद्धि) रूप बना। इसी प्रकार तव + लृकारः इस स्थिति में अ और लृ का अल् एकादेश होकर तवल्कार (तेरा लकार) रूप बना। वास्तव में तवल्कार कोई व्यवहार में प्रयोग होने वाला शब्द नहीं है। केवल शास्त्र की प्रक्रिया को समझाने के लिए यह उदाहरण दिया गया है। लृ का प्रयोग संस्कृत साहित्य में अत्यल्प है।

लोपः शाकल्यस्य 8.3.19

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे।

व्याख्याः यदि पदान्त यकार और वकार से पूर्व अवर्ण (अ या आ) हो और परे अश् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो यकार और वकार का विकल्प से लोप हो जाता है। यह लोप शाकल्य के मत से होता है पाणिनि के मत से नहीं। अतः यहाँ विकल्प है।

पूर्वऽत्राऽसिद्धम् 8.2.1

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा , त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परशास्त्रामसिद्धम् । हर इह , हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।

व्याख्याः सात अध्याय और आठवें अध्याय के प्रथम पाद के प्रति आठवें अध्याय के अगले तीन पाद असिद्ध हैं। त्रिपादी में भी पूर्व के प्रति पर शास्त्र असिद्ध है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं। पहले सात अध्याय और आठवें अध्याय के प्रथम पाद में आए हुए सूत्रों का प्रयोग होना हो तो आठवें अध्याय के अन्तिम तीन पादों में आए हुए सूत्रों के द्वारा जो कार्य हुआ है वह असिद्ध माना जाता है। असिद्ध का अर्थ है कि कार्य तो हो जाता है परन्तु वह पूर्व सूत्र के द्वारा होने वाले कार्य के प्रति न हुए के समान ही माना जाता है। आठवें अध्याय के पिछले तीन पाद अपने इस वैशिष्ट्य के कारण पृथक् महत्व रखते हैं इसलिए ये त्रिपादी के नाम से प्रसिद्ध हैं। त्रिपादी में भी पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध माना जाता है। हरे + इह में एचोऽयवायावः सूत्र से ए के स्थान पर अय् आदेश होकर स्थिति

हुई – हरय् + इह। यहाँ य् से पूर्व अ है और परे अश् प्रत्याहार का वर्ण इ। अतः लोपः शाकल्यस्य सूत्र से य् का विकल्प से लोप प्राप्त हुआ। तब स्थिति हुई – हर + इह। अब यहाँ आद्गुणः सूत्र से अ और इ को गुण एकादेश प्राप्त होता है। परन्तु आद्गुणः सूत्र की संख्या है 6.1.87 और लोपः शाकल्यस्य सूत्र की संख्या है 8.3.19 अर्थात् यह सूत्र त्रिपादी का है। इसलिए आद्गुणः के प्रति लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध हुआ अर्थात् इस सूत्र के द्वारा जो यकार का लोप हुआ है वह न हुए के समान माना जाएगा। इसलिए आद्गुणः सूत्र की प्राप्ति नहीं होगी और अ और इ के स्थान पर गुण सन्धि नहीं होगी। इसलिए हर इह यही रूप रहेगा। क्योंकि य् का लोप विकल्प से हुआ है इसलिए दूसरा रूप होगा हरयिह। इसीप्रकार विष्ण इह और विष्णविह।

वृद्धिरादैच् 1.1.1

आदैच् वृद्धिसंज्ञः स्यात।

व्याख्याः आकार और ऐच् प्रत्याहार के वर्ण अर्थात् ऐ और औ की वृद्धि संज्ञा होती है। आ को तपर किया गया है इसलिए तपरस्तत्कालस्य सूत्र के बल पर केवल आ का ही ग्रहण होगा उसके सवर्णों का नहीं।

वृद्धिरेचि 6.1.88

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

व्याख्याः अवर्ण से परे यदि एच् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो दोनों के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है। आद्गुणः सूत्र के द्वारा अवर्ण से परे अच् होने पर गुण सन्धि का विधान किया गया था। यह सूत्र उसका अपवाद है। अवर्ण से परे एच् होने पर वृद्धि होगी न कि गुण। जैसे क ृष्ण+ एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्। गङ्गा + ओघः = गङ्गौघः (गंगा का प्रवाह)। देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम् (देव का ऐश्वर्य)। कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

एत्येधत्यूठ्सु

अवर्णाद् एजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्।

पररूप–गुणापवादः। उपैति। उपैधते। प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्–
उपेतः–मा भवान् प्रेदिधत्।

व्याख्याः अवर्ण से परे इण् और एध् धातु का एजादि रूप तथा ऊठ् परे हो तो पूर्व–पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश हो जाता है जैसे उप+एति = उपैति, उप+एधते = उपैधते, प्रष्ठ + ऊहः = प्रष्ठौहः। उपैति तथा उपैधते में वृद्धिरेचि सूत्र में भी वृद्धि हो सकती थी परन्तु यहाँ आगे आने वाले एङि पररूपम् सूत्र से वृद्धि का बाध कर पररूप एकादेश प्राप्त था। इसलिए पररूप को बाध कर यहाँ प्रकृत सूत्र से वृद्धि का विधान किया गया है। प्रष्ठ + ऊहः में आदगुणः से गुण प्राप्त था जिसका बाध करके प्रकृत सूत्र से वृद्धि हुई है।

यदि इण् धातु और एध् धातु के रूप एजादि न हों तो वृद्धि एकदेश नहीं होगा। जैसे– उप + इतः = उपेतः। यहाँ इतः शब्द इण् धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है परन्तु एजादि नहीं है। अतः वृद्धि न होकर आद्गुणः सूत्र से गुण हुआ है। इसी प्रकार प्र + इदिधत् = प्रेदिधत्। यहाँ इदिधत् रूप एध् धातु का तो है परन्तु एजादि नहीं है। अतः आद्गुणः से गुण होकर प्रेदिधत् रूप बना है।

वा. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्। अक्षौहिणी सेना

व्याख्याः अक्ष से परे ऊहिनी शब्द हो तो पूर्व–पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जैसे अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी। यहाँ सामान्य सूत्र आद्गुणः से गुण प्राप्त था परन्तु इस वार्तिक के द्वारा गुण का बाध करके पूर्व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश हुआ है। अक्षौहिणी सेना का परिणाम है जिसमें 21870 हाथी, इतने ही रथ, 65610 घोड़े तथा 109350 पैदल सैनिक होते हैं। अक्षौहिणी में नकार को णकार पूर्वपदात् संज्ञायामगः सूत्र से हुआ है।

वा. प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु। प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः।

व्याख्याः प्र उपसर्ग से परे यदि ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य हों तो तो पूर्व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है। जैसे

प्र	+	ऊहः	=	प्रौहः (विशेष तर्क),
प्र	+	ऊढः	=	प्रौढः (बड़ी आयु वाला),
प्र	+	ऊढिः	=	प्रौढिः (प्रौढता),
प्र	+	एषः	=	प्रैषः (प्रेरणा),
प्र	+	एष्यः	=	प्रैष्यः (सेवक)।

इन स्थानों में गुण का बाध करके वृद्धि एकादेश हुआ है।

वा. ऋते च तृतीया समासे। सुखेन ऋतः सुखार्तः । तृतीयेति किम्– परमर्तः।

व्याख्याः तृतीया समास में अवर्ण से परे ऋत शब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जैसे सुख+ऋतः =सुखार्तः (सुखेन ऋतः अर्थात् सुख से प्राप्त किया गया)। यहाँ तृतीया तत्पुरूष समास है। अतः वृद्धि एकादेश हुआ। यदि तृतीया समास न हो तो गुण सन्धि होगी। जैसे– परम+ऋतः परमर्तः (परमं ऋतः अर्थात् परम स्थान को प्राप्त हुआ अर्थात् मुक्त) यहाँ तृतीया तत्पुरूष समास न होकर द्वितीया तत्पुरूष समास है। अतः वृद्धि

एकादेश न हाकर गुण एकादेश हुआ है।

वा. वत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामणे। प्रार्णम्। वत्सरार्णमित्यादि।

व्याख्याः प्र, वत्सतर, कम्बल, ऋण और दश शब्दों से परे ऋण शब्द हो तो वृद्धि, एकादेश होता है। जसै– प्र+ऋणम् = प्रार्णम् (कर्ज)। वत्सर + ऋणम् वत्सरार्णम् (बछड़े के लिए लिया हुआ ऋण)। वसन + ऋणम् = वसनार्णम् (कपड़े के लिए ऋण)। दश + ऋणम् = दशार्णम् (एक देश का नाम)

ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम् (ऋण के लिए ऋण)

प्रादयः उपसर्गाः क्रियायोगे। 1.4.59

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः । प्र. परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप–एते प्रादयः।

व्याख्याः प्र आदि शब्द जब क्रिया के साथ प्रयुक्त होते हैं तो उनकी उपसर्ग संज्ञा होती है।

भूवादयो धातवः 1.3.1

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

व्याख्याः क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले भू आदि शब्द धातुसंज्ञक होतें हैं। भू आदि शब्द धातुपाठ में पढ़े गए हैं। भू पहला शब्द है इसलिए धातुपाठ में पढ़े गए शब्द भ्वादि कहलाते हैं। इन शब्दों के साथ तिङ् आदि प्रत्यय लगाकर क्रियाएं बनती हैं। इन शब्दों की तभी धातुसंज्ञा होती है जब ये क्रियावाची हों। अन्य अर्थ में इनकी धातुसंज्ञा नहीं होती। जैसे भू शब्द होने अर्थ में धातुसंज्ञक है परन्तु पृथ्वी अर्थ में नहीं।

उपसर्गादृति धातौ 6.1.91

अवर्णन्तादुपर्साद् ऋकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। प्रार्च्छति।

व्याख्याः अवर्णान्त उपसर्ग से परे यदि ऋकारादि धातु हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जसै– प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति (जाता है)। यहाँ अ और ऋण को आर् वृद्धि एकादेश हुआ है। इसी प्रकार उप + ऋच्छति = उपार्च्छति (समीप जाता है)।

एङि पररूपम् 6.1.94

आदुपसर्गाद् एङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः, स्यात् । प्रेजते। उपोषति।

व्याख्याः अवर्णान्त उपसर्ग से परे यदि एङ् (ए,ओ) से प्रारम्भ होने वाली धातु हो तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकदेश होता है। अर्थात् पूर्व–पर के स्थान में वही रूप हो जाता है जो पर स्वर का है। जैसे, प्र + एजते = प्रेजते (काँपता है) यहाँ अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङ् से प्रारम्भ होने वाली धातु है। अतः अ और ए दोनों के स्थान में पररूप अर्थात ए हो गया है। यह वृद्धिसूत्र का अपवाद है। इसी प्रकार उप + ओषति = उपोषति (जलाता है) प्र + एषते = प्रेषते आदि।

अचोऽन्त्यादि टिः 1.1.64

अचां मध्ये योऽन्त्यः, स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः किसी शब्द के अन्तिम अच् से लेकर आगे आने वाले व्यजंनों सहित पूर्ण समुदाय की टि संज्ञा होती है। जैसे सरस् शब्द में अन्तिम अच् रेफ–उत्तरवर्ती अकार है। अकार से परे स् व्यंजन है। अतः अस् समुदाय की टि संज्ञा हुई। यदि अन्तिम अच् के बाद कोई व्यजंन न हो तो अन्तिम अच् की ही टि संज्ञा होती है। जैसे शक शब्द में अन्तिम अच् अकार की टि संज्ञा है।

वा. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। तच्च टेः। शकन्धुः । कर्कन्धुः । मनीषा। आकृतिगणोऽयम्। मार्तण्डः। व्याख्याः शकन्धु आदि शब्दों में टि को पररूप होकर रूप सिद्ध होते हैं। जैसे–शक + अन्धुः = शकन्धु : (शकों का कुआँ)

यहाँ पर सामान्यतः दीर्घसन्धि प्राप्त थी परन्तु उसको बाध कर शक के अन्तिम अच् अ, जो टि संज्ञक है तथा अन्धुः के अ दोनों को पररूप अकार एकादेश हुआ है। इसी प्रकार कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः। मनस् + ईषा = मनीषा। यहाँ मनस् के टि अस् तथा ई को पररूप ईकार आदेश हुआ है। यह आकृतिगण है। शकन्धु आदि गण में परिगणित शब्दों के अतिरिक्त इस प्रकार के अन्य शब्दों में भी यही नियम समझना चाहिए। जैसे मार्त+अण्ड = मार्तण्ड। पतत्+ अंजलिः =पतंजलिः। गणपाठ अष्टाध्यायी से पृथक् पाठ है। इसमें कुछ विशेष शब्दों के गण (समूह) पठित हैं।

ओमाङोश्च 6.1.95

ओमि आङि चात परे पररूपमेकादेशः स्यात्। शिवायों नमः। शिव + एहि–

व्याख्याः अवर्ण से परे ओम् और आङ हो तो पूर्व पर को परस्पर एकादेश होता है। जैसे शिवाय + ओम् = शिवायोम्।

अन्तादिवच्च 6.1.85

योऽयमेकादेशः स पूर्वास्यान्तवत् परस्यादिवता। शिवेहि।

व्याख्याः जो एकादेश होता है वह पूर्व समुदाय के अन्तिम के समान और पर समुदाय के आदि के समान होता है। जैसे शिव + आ + इहि, यहाँ आ आङ का ही अवशिष्ट रूप है क्योंकि ङ् की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा हुई है और तस्य लोपः से उसका लोप हुआ है। आ और इ की गुणसन्धि होकर रूप बना शिव + एहि । अब यहाँ ओमाङोश्च सूत्र की प्रसक्ति नहीं होती क्योंकि अवर्ण से परे आङ् न होकर ए है। परन्तु अन्तादिवच्च सूत्र से एहि में आङ् की संज्ञा भी मानी जाएगी। इसलिए ओमाङोश्च सूत्र की प्राप्ति होकर शिव के अकार और एहि के एकार का पररूप एकादेश प्राप्त होता है। अतः रूप बना शिवेहि। इसी प्रकार प्र + आ + इहि = प्र + एहि = प्रेहि। उप + आ + इहि = उप + एहि = उपेहि आदि रूप बनेंगे।

अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोदीर्घ एकादेशः स्यात्। दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः । होतॄकारः ।

व्याख्याः अक् प्रत्याहार के वर्ण से परे यदि सवर्ण अक् हो तो पूर्व–पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है। जैसे दैत्य + अरिः यहाँ अकार से परे सवर्ण अकार है। अतः दोनों के स्थान पर दीर्घ एकादेश होकर दैत्यारिः (दैत्यों का शत्रु अर्थात विष्णु) रूप बना। इसी प्रकार श्री + ईशः = श्रीशः (लक्ष्मी का स्वामी), विष्णु + उदयः = विष्णूदयः (विष्णु का उदय), होतृ + ऋकारः = होतॄ कारः रूप बने।

एङः पदान्तादति 6.1.109

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेऽव । विष्णोऽव

व्याख्याः पदान्त एङ् अर्थात ए, ओ से परे यदि ह्रस्व अकार हो तो पूर्व–पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश हो जाता है। पूर्वरूप एकादेश का अर्थ है कि जो रूप पूर्व वर्ण का है वही रूप दोनों के स्थान पर हो जाए। जैसे हरे + अव में हरे पद के अन्त में ए है और उससे परे ह्रस्व अकार है। अतः पूर्व–पर के स्थान पर पूर्वरूप एकार आदेश होगा और रूप बनेगा हरेऽव (हे हरे रक्षा करो)। ऽ चिन्ह अवग्रह कहलाता है। अकार के पूर्वरूप हो जाने पर भी स्पष्टता के लिए यह चिन्ह लगाया जाता है। इसी प्रकार विष्णो + अव = विष्णेवऽ (हे विष्णो, रक्षा करो)।

सर्वत्रा विभाषा गोः 6.1.122

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते। गो अग्रम्, गोऽअग्रम्। एङन्तस्य किम्–चित्राग्वग्रम्। पदान्ते किम्–गोः।

व्याख्याः एङन्त गो से परे यदि ह्रस्व अकार हो तो सर्वत्र अर्थात् लोक और वेद में विकल्प से प्रकृतिभाव होता है, यदि वह पद के अन्त में हो। प्रकृतिभाव का अर्थ है जैसा है वैसा ही रहना अर्थात् सन्धि न होना। जैसे गो + अग्रम् = गो अग्रम्। यहाँ गो पद में ओ पद के अन्त में है। पद की परिभाषा है– सुप्तिङन्तं पदम्। अर्थात् जिस के अन्त में सुप् या तिङ् प्रत्यय लगे हों उसकी पद संज्ञा होती है। गो + अग्रम् यह एक समस्त पद है जिसका विग्रह गोः+अग्रम् है। समास में सुपो धातुप्रातिपदिकयोः सूत्र से सुप् का लोप हो जाता है। परन्तु प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् इस सूत्र के बल पर सुप के लोप हो जाने पर भी सुप् का लक्षण विद्यमान रहता है। इसलिए सुप् के लोप हो जाने पर भी शब्द की पदसंज्ञा रहती है। अतः गो शब्द में ओ पद के अन्त में है, इसलिए प्रकृत सूत्र से विकल्प से प्रकृतिभाव रहेगा और गो अग्रम् रूप ही रहेगा। विकल्प पक्ष में एङः पदान्तादति सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होगा और गोऽग्रम् रूप भी बनेगा।

एङन्त न होने पर प्रकृतिभाव नहीं होगा। जैसे चित्रगु+अग्रम् = चित्रग्वग्रम्। यहाँ चित्रा गोः + अग्रम् का समास होकर सुप् का लोप होने पर चित्रगो+अग्रम् यह स्थिति बनी और गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य से ह्रस्व होकर चित्रगु+अग्रम् यह स्थिति बनी। यहाँ पद के अन्त में एङ् नहीं है इसलिए प्रकृतिभाव न होकर यण् सन्धि होगी और रूप बनेगा चित्रग्वग्रम्।

अनेकाल् शित सर्वस्य 6.1.122

इति प्राप्ते

व्याख्याः जिस आदेश में एक से अधिक अल् हों अथवा जिसमें शकार की इत्संज्ञा हो वह आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। यह सूत्र अलोऽन्त्यस्य का अपवाद है। अलोऽन्त्यस्य के अनुसार आदेश अन्तिम अल् के स्थान पर बताया गया है। परन्तु आदेश में एक से अधिक अल् हों अथवा वह शित् हो तो आदेश केवल अन्तिम अल् के स्थान पर न होकर सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। जैसे अस्तेर्भूः सूत्र के अनुसार अस् धातु के स्थान पर भू आदेश बताया गया है। भू में दो अल् हैं– भ् तथा ऊ। इसलिए यह अनेकाल् है। यह आदेश केवल स् के स्थान पर न होकर सम्पूर्ण स्थानी अस् के स्थान पर होता है। इसी प्रकार अष्टाभ्य औश् सूत्र से अष्टन् शब्द से परे जस् के स्थान पर औश् आदेश होता है। औश् क्योंकि शित है, इसलिए यह आदेश सम्पूर्ण जस् के स्थान पर होता है।

ङिच्च 1.1.53

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

व्याख्याः यदि आदेश ङित् हो तो अनेकाल् होने पर भी अन्तिम अल् के स्थान पर होता है।

अवङ् स्फोटायनस्य 6.1.123

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् स्यादचि। गवाग्रम्, गोऽग्रम्। पदान्ते किम् गवि।

व्याख्याः एङन्त गो पद के स्थान पर विकल्प से अवङ् आदेश होता है। अवङ् क्योंकि ङित् है इसलिए ङिच्च सूत्र से अन्तिम अल् गो के स्थान पर होता है अन्यथा अनेकाल् होने के कारण सम्पूर्ण गो के स्थान पर प्राप्त था जैसे गो+ अग्रम् = गव + अग्रम् = गवाग्रम्। अवङ् स्फोटायन के मत से हैं, पाणिनि के मत से नहीं, इसलिए यहाँ विकल्प है। विकल्प पक्ष में गो+अग्रम् = गो अग्रम् (प्रकृतिभाव), गोऽग्रम् (एङः पदान्तादति)।

इन्द्रे च 6.1.124

गोरवङ् स्यादिन्द्रे।

व्याख्याः इन्द्र शब्द परे होने पर गो को अवङ् आदेश होता है। इसलिए गो+इन्द्रः = गव+इन्द्र = गवेन्द्रः (आद्‌गुणः से गुण)।

दूराद् धूते च 8.2.84

दूरात् संबोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

व्याख्याः दूर से सम्बोधन करके बुलाने के अर्थ में प्रयुक्त वाक्य के टि को विकल्प से प्लुत हो जाता है। जब किसी को दूर से पुकारा जाता है तो वाक्य का टि अर्थात् अन्तिम अच् को प्लुत हो जाता है। जैसे आगच्छ राम3।

प्लतुप्रगृह्या अचि नित्यम् 6.1.125

एते अचि प्रकृत्या स्युः। आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति।

व्याख्याः प्लुत और प्रगृह्य संज्ञक से परे यदि अच् हो तो प्रकृतिभाव रहता है अर्थात् सन्धि नहीं होती। जैसे आगच्छ कृष्ण3 अत्र गौश्चरति। यहाँ दो वाक्य हैं। पूर्व वाक्य में दूर से बुलाया गया है, अतः कृष्ण के अन्तिम अकार को प्लुत हुआ हे। इसके पश्चात् दूसरे वाक्य का अकार आया है। अतः अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ सन्धि प्राप्त होती है। परन्तु क्योंकि प्लुत को प्रकृतिभाव रहता है, इसलिए कृष्ण3 और अत्र में सन्धि नहीं हई। प्रगृह्य संज्ञा अगले सूत्रों में बताई जाएगी।

ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् 1.1.11

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात्। हरी ऐतौ। विष्णू इमौ। गंगे अमू।

व्याख्याः द्विवचन शब्द यदि ईकारान्त हो, ऊकरान्त हो अथवा एकारान्त हो तो उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है। प्रगृह्य संज्ञा का फल प्रकृतिभाव रहना है। जैसे हरी+एतौ = हरी एतौ। यहाँ हरी शब्द द्विवचन है और ईकारान्त है, इसलिए प्रगृह्य एंज्ञा हुई और प्रकृतिभाव हुआ। इसी प्रकार विष्णु इमौ, गंगे अमू। यहाँ विष्णू शब्द द्विवचन है और उकारान्त है, गंगे शब्द द्विवचन है और एकारान्त है अतः इनकी प्रगृह्य संज्ञा हुई और फलस्वरूप प्रकृतिभाव हुआ।

अदसो मात् 1.1.12

अस्मात् परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः। अमी ईशाः रामकृष्णावमू आसाते। मात्किम्–अमुकेऽत्र।

व्याख्याः अदस् शब्द के मकार से परे ईकार, ऊकार और एकार की प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे अमी + ईशाः। यहाँ

अमी शब्द अदस् प्रतिपादिक का प्रथमा बहुवचन का रूप है। म से परे ई होने के कारण ई को प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा प्रकृतिभाव से रहती है। इसलिए अमी + ईशा में दीर्घ सन्धि नहीं हुई और अमी ईशाः रूप ही रहा। इसी प्रकार अमू+आसाते में अमू पद प्रथमा द्विवचन का रूप है। म् से परे ऊकार की प्रगृह्य संज्ञा हुई। इसलिए प्रकृतिभाव होकर अमू आसाते रूप रहा। अद् शब्द के म् से परे एकारान्त रूप नहीं बनता, अतः ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् से एकार की अनुवृत्ति होने पर भी कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। अदस् शब्द के म् से परे ई, ऊ और ए से पहले किसी अन्य वर्ण का व्यवधान होतो प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती जैसे अमुकेऽत्र। यहाँ अमुके रूप भी अदस् शब्द का ही है परन्तु म् और ए के मध्य उकार और ककार का व्यवधान है, इसलिए एकार की प्रगृह्य संज्ञा नहीं होगी और एङः पदान्तादति से पूर्वरूप सन्धि होकर अमुकेऽत्र रूप बनेगा।

चादयोऽसत्वे 1.1.53

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः।

व्याख्याः च आदि शब्द जब द्रव्य अर्थ में प्रयुक्त न हों तो उनकी निपात संज्ञा होती है। च आदि शब्द अव्यय होते हैं। जब ये द्रव्यवाची न हों तो इन्हें निपात कहते हैं।

प्रादयः 1.4.58

एतेऽपि तथा।

व्याख्याः प्र. आदि शब्द भी निपात संज्ञक होते हैं। प्र आदि शब्द उपसर्गाः क्रियायोगे सूत्र की व्याख्या में गिनाए जा चुके हें।

निपात एकाजनाङ् 1.1.14

एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात्। इ इन्द्रः। उ उमेशः । वाक्य स्मरणयोरङित् – आ एवं नु मन्यसे, आ एवं किल तत्। अन्यत्र ङित्– ईषदुष्णम् ओष्णम्।

व्याख्याः जो निपात केवल एक अच् मात्र हो उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है, आङ् को छोड़कर। जैसे इ इन्द्रः, उ उमेशः। यहाँ इ और उ निपात हैं और इनका स्वरूप केवल एक अच् मात्रा है, इसलिए इनकी प्रगृह्य संज्ञा हुई और दीर्घ सन्धि नहीं हुई। परन्तु आङ् निपात की प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती। आङ् का आ शेष होता है। जैसे आ+उष्णम् = ओष्णम् (थोड़ा सा गर्म)। आङ् का आ यद्यपि एक अच् मात्रा है तथापि प्रगृह्य संज्ञक न होने के कारण उसका प्रकृति भाव नहीं हुआ और गुण सन्धि हो गई। आ का अङित् रूप भी भाषा में प्रचलित रहा है। विशेष रूप से वाक्य में और स्मरण अर्थ में। उस अवस्था में आ की प्रगृह्य संज्ञा होती है, जैसे आ एवं नु मन्यसे (अरे क्या तुम ऐसा मानते हो); आ एवं किल तत् (हाँ निश्चित रूप से ऐसा ही है)।

ओत् 1.1.15

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः । अहो ईशाः!

व्याख्याः ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे अहो ईशाः यहाँ अहो निपात ओकारान्त है, इसलिए प्रगृह्य संज्ञा हुई और प्रकृतिभाव हुआ।

सम्बुद्धौ शाकल्येतावनार्षे 1.1.16

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे। विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

व्याख्याः जो ओकार प्रथमा एकवचन के सम्बोधन पद के अन्त में हो और उससे परे इति हो तो उसकी विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है, अवैदिक अर्थात् लौकिक सहित्य में। प्रथमा एक वचन के सम्बोधन रूप को सम्बुद्धि कहते हैं। जैसे विष्णो इति। यहाँ विष्णो पद एक वचन सम्बोधन का रूप है और इससे परे इति शब्द का लौकिक भाषा में प्रयोग हुआ है। अतः ओकार की विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होगी। प्रगृह्य पक्ष में प्रकृतिभाव होकर विष्णो इति रूप ही रहेगा। अप्रगृह्य पक्ष में एचोऽयवायावः सूत्र से सन्धि होकर रूप बनेगा विष्णव् + इति = विष्णविति। लोपः शाकल्यस्य से व् का विकल्प से लोप होकर रूप बनेगा विष्ण इति। यह नियम वेद में लागू नहीं होता।

मय उञो वो वा 8.3.33

मयः परस्य उञो वो वा अचि। किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्।

व्याख्याः मय् से परे उञ् को विकल्प से व् आदेश हो जाता है। जैसे किमु+उक्तम् = किम्वुक्तम्। यहाँ किम् से परे उञ् अर्थात् उ निपात है। निपात एकाजनाङ् से उ की नित्य प्रगृह्य संज्ञा प्राप्त थी। परन्तु इस सूत्र के द्वारा उ को व् आदेश बताया गया है, अतः किम्वुक्तम् रूप बना। प्रगृह्य पक्ष में किमु उक्तम् रूप ही रहेगा।

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6.1.127

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधानसामर्थ्यात् स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चक्र्यत्र। पदान्ता इति किम्–गौर्यो।

व्याख्याः पदान्त इक् से परे यदि असवर्ण अच् हो तो इक् को विकल्प से ह्रस्व आदेश हो जाता है। जैसे चक्री + अत्र = चक्रि अत्र। यहाँ चक्री में ई पदान्त में है और उससे परे असवर्ण अच् अ है। अतः शाकल्य के मतानुसार ई को ह्रस्व इकार हो गया और सन्धि नहीं हुईं। पाणिनि के मतानुसार यहाँ यण् सन्धि होकर चक्र्यत्र रूप बनेगा। सूत्र में ह्रस्व का विधान किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि ह्रस्व होने के पश्चात् स्वर सन्धि नहीं होगी क्योंकि स्वर सन्धि होने पर चक्रच रूप ही बनता जो दीर्घ ईकार से भी बनता है। अतः यह सूत्र निरर्थक हो जाता।

यह नियम तभी लागू हाता है जब इक् पद के अन्त में हो पद के मध्य में यह नियम लागू नहीं होता जैसे गौरी + औ = गौर्यो। यह गौरी शब्द का प्रथम द्विवचन का रूप है। पूर्ण पद है गौर्यो न कि गौरी। अतः ई यहाँ पदान्त में नहीं है, अतः ह्रस्व नहीं हुआ।

अचो रहाभ्यां द्वे 8.4.46

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यो।

व्याख्याः अच् से परे रेफ या हकार हों और उनसे परे यर् हो तो यर् को विकल्प से द्वित्व हो जाता है। जैसे गौरी–औ। यहाँ पहले इको यणचि सूत्र से ई को य् आदेश हुआ। तब स्थिति हुई गौर् य् + औ। यहाँ अच् से परे रेफ है और उससे परे यकार है जो यर् प्रत्याहार का वर्ण है। इसलिए यकार को विकल्प से द्वित्व होगा और रूप बनेगा गौर्य्यो। द्वित्व के अभाव पक्ष में रूप बनेगा गौर्यो।

ऋत्यकः 6.1.128

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा। ब्रह्म ऋषि, ब्रह्मर्षि। पदान्ताः किम् – आर्च्छत्। इति अच् सन्धि

व्याख्याः पद के अन्त में आने वाले अक् को विकल्प से ह्रस्व हो जाता है यदि परे ह्रस्व ऋत (ऋत्) हो जैसे ब्रह्मा + ऋषि = ब्रह्म ऋषि। ह्रस्व होने के बाद सन्धि नहीं होती है। विकल्प पक्ष में आद्गुणः से गुण होकर बह्मर्षि रूप बनेगा। जब अक् पद के अन्त में न हो तो सामान्य नियमों के अनुसार सन्धि होगी। जैसे आ+ऋच्छत् आर्च्छत्। यह एक पद है, अतः आ पद के अन्त में नहीं है। इसलिए आ को ह्रस्व नहीं होगा। आटश्च सूत्र से वृद्धि होकर आर्च्छत् रूप बनेगा।

(इति अच्सन्धिः)

1.4.2 हल् सन्धि

स्तोः श्चुना श्चुः 8.4.40

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः। रामश्शेते। रामश्चिनोति सच्चित्। शार्गिञ्जयः।

व्याख्याः सकार और तवर्ग का शकार और चवर्ग के साथ योग हो तो सकार को शकार और तवर्ग का चवर्ग आदेश हो जाता

है। यथासख्यमनुदेशः समानाम् सूत्र से त् को च्, थ को छ्, द को ज्, ध् को झ् तथा न् को ञ् आदेश होता है। जैसे– रामस्+शेते = रामश्शेते। रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति। सत् + चित् = सच्चित्। शार्गिन् + जयः = शार्गिञ्जयः। ध्यान रहे, सकार और तवर्ग का शकार और चवर्ग के साथ योग कहा गया है। पूर्व और पर का विचार यहाँ नहीं किया जाता है।

शात् 8.4.44

शात् परस्य तवर्गस्य श्चुत्वं न स्यात्। विश्नः प्रश्नः।

व्याख्याः शकार से परे तवर्ग के स्थान में श्चुत्व नहीं होता है। जैसे विश्+नः। यहाँ शकार और तवर्ग न् का योग है, इसलिए स्तोः श्चुना श्चुः से न् को **ञ्** प्राप्त था। परन्तु शात् सूत्र से उसका बाध हो गया। इसलिए विश्नः रूप ही रहा। इसी प्रकार प्रश् + नः = प्रश्नः।

ष्टुना ष्टुः 8.4.41

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्याद्। रामष्षष्ठः। रामष्टीकते। पेष्टा। तट्टीका। चक्रिण्ढौकसे।

व्याख्याः सकार और तवर्ग का यदि षकार और टवर्ग के साथ योग हो तो सकार को षकार और तवर्ग को टवर्ग आदेश हो जाता है। जैसे रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः (छठा राम) रामस् + टीकते = रामष्टीकते (राम जाता है)। पेष् + ता = पेष्टा (पीसने वाला)। तत् + टीका = तट्टीका (उसकी टीका)। चक्रिन् + ढौकसे = चक्रिण्ढौकसे से (हे चक्रधारी तुम जाते हो)। इन उदाहरणों में षकार अथवा टवर्ग के योग में सकार को षकार अथवा टवर्ग के योग में सकार को षकार और तवर्ग को टवर्ग आदेश हुआ है। यथासंख्यमनुदेशः समानाम् से त् को ट्, थ् को ठ्, द् को ड्, ध को ढ् तथा न् को ण् आदेश होता है। सकार और तवर्ग का षकार और टवर्ग से योग होना कहा गया है चाहे वह पूर्व हो या पर हो।

न पदान्ताट्टोरनाम् 8.4.42

पदान्ताट्टवर्गात्परस्याऽनामः स्तो ष्टुर्न स्यात्। षट् सन्तः। षट् ते। पदान्तात् किम्–ईट्टे। टोः किम् सर्पिष्टमम्।

व्याख्याः पदान्त टवर्ग से परे सकार और तवर्ग को टवर्ग आदेश नहीं होता है। यह ष्टुना ष्टुः सूत्र का अपवाद है जैसे षट् सन्तः (छह सन्त)। यहाँ षट् में ट् पद के अन्त में है। इसलिए स को ष् आदेश नहीं हुआ है। इसी प्रकार षट् ते (वे छह) में पदान्त ट् से परे त् को ट् आदेश नहीं हुआ है। यदि टवर्ग पदान्त में न हो तो सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग ओदश हो जाता है। जैसे ईट्+ते (यहाँ ईड् धातु के ड् को त परे होने पर खरि च सूत्र से ट् आदेश हुआ है। ते प्रत्यय आत्मने पद का लट् लकार प्रथम पुरूष एकवचन का प्रत्यय है। यहाँ ट् पदान्त नहीं है, अपितु पद के मध्य में है, इसलिए त् को ट् आदेश हो जाएगा और रूप बनेगा ईट्टे। सूत्र में पदान्त ट वर्ग कहा गया है। नाम परे होने पर इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे षड्+नाम = षण्णाम्। यहाँ प्रत्यये भाषायां नित्यम् इस वार्तिक से ड् को ण् आदेश हुआ और स्थिति हुई षण् + नाम। यद्यपि ण् पदान्त टवर्ग है तो भी नाम के न को ण् प्राप्त हो जाता है क्योंकि सूत्र की प्रवृत्ति नाम शब्द को छोड़कर बताई गई है। अतः रूप बना षण्णाम्।

वा. अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्। षण्णाम्। षण्णवतिः। षण्णगर्यः।

व्याख्याः नाम, नवति और नगरी को छोड़कर पदान्त टवर्ग से पर त वर्ग को ट वर्ग आदेश नहीं होता है। ऐसा कहना चाहिए।

न पदान्ताट्टो...... सूत्र में नाम पद को छोड़कर कहा गया है। वर्तिककार ने नवति और नगरी शब्द को नाम के साथ सम्मिलित किया है। जैसे षण्+नवतिः = षण्णवतिः। षण् + नगर्यः = षण्णगर्यः। यहाँ षड् के ड् को यरोऽनुनासिकेऽनुनाासिको वा से विकल्प से ण् हुआ है। ण् से परे नवतिः और नगरी के न को टवर्ग ण् आदेश हुआ है। ड् को ण् जब नहीं होगा तो रूप बनेगा षड्णवतिः, षड्णगर्यः।

तो षिः 8.4.43

न ष्टुत्वम्। सन् षष्ठः।

व्याख्याः षकार परे रहते तवर्ग को टवर्ग आदेश नहीं होता है। यह ष्टुना ष्टुः का अपवाद है। जैसे सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः ष्टुना ष्टुः से न् को ण् प्राप्त था परन्तु प्रकृत सूत्र से उसका निषेध हो गया।

झलां जशोऽन्ते 8.2.39

पदान्ते झलां जशः स्युः। वागीशः।

व्याख्याः पद के अन्त में झलों को जश् आदेश हो जाता है। झल् प्रत्याहार में वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्ण तथा श ष स ह वर्ण आते हैं। जश् में केवल तृतीय अर्थात् ज, ब, ग, ड, द वर्ण आते हैं। किस झल् के स्थान पर क्या आदेश हो इसका निर्णय इस बात से होता है कि झल् कौन से वर्ग का है। जिस वर्ग का झल् उसके स्थान पर उसी वर्ग का तृतीय वर्ण हो जाता है जैसे क, ख, घ के स्थान पर ग, च, छ झ ज् होगा ष् के स्थान पर स्थाने अन्तरतमः से डकार, श् को जकार तथा स् को तकार होना चाहिए। परन्तु श् और स् के उदाहरण नहीं मिलते हैं। **उदाहरणः** वाक् + ईशः । यहाँ वाक् में क् पदान्त में है इसलिए इसको जशत्व होकर ग् बना और वागीश रूप सिद्ध हुआ।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा 8.4.45

यरः पदान्तस्यानुनासिके परे अनुनासिको वा स्यात्। एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः।

व्याख्याः पदान्त यर् से परे यदि अनुनासिक हो तो यर् को विकल्प से अनुनासिक हो जाता है। जैसे एतद् + मुरारिः = एतन्मुरारिः। यहाँ द् यर् प्रत्याहार का वर्ण है और पदान्त में है। उससे परे अनुनासिक म् है। इसलिए द् को स्थानेऽन्तरतमः से उसी वर्ण का अनुनासिक न् आदेश हुआ है। विकल्प पक्ष में एतद्मुरारिः रूप बनेगा।

वा. प्रत्यये भाषायां नित्यम्। तन्मात्रम्, चिन्मयम्

व्याख्याः यदि अनुनासिक प्रत्यय के आदि में हो तो लैकिक भाषा में यर् को नित्य अनुनासिक जैसे तद् + मात्रम्। यहाँ मात्र प्रत्यय परे होने पर द् को नित्य न् होगा और रूप बनेगा तन्मात्राम्। मात्रच् प्रत्यय 'तदस्य परिमाणम्' अर्थ में 'प्रमाणे द्वयसच्दध्नच्मात्रचः' सूत्र से हुआ है। इसी प्रकार चित्+मयम्। यहाँ म् मयट् प्रत्यय का है। अतः त् को नित्य अनुनासिक होकर चिन्मयम् रूप बनेगा। यहाँ 'तत्प्रकृतवचने मयट्' से मयट् प्रत्यय हुआ है।

तोर्लि 8.4.60

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः। तल्लयः। विद्वाँल्लिखति। नस्यानुनासिको लः।

व्याख्याः लकार परे होने पर तवर्ग को परसवर्ण हो जाता है। जैसे तद्+लयः = तल्लयः। यहाँ द् को लकार परे होने पर परसवर्ण ल् आदेश हुआ है। नकार को अनुनासिक ल् आदेश होता है। जैसे विद्वान् + लिखति = विद्वाल्ँलिखति = विद्वाल्लिँखति।

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य 8.4.61

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः।

व्याख्याः उद् उपसर्ग से परे यदि स्था और स्तम्भ धातु हों तो स्था और स्तम्भ धातुओं के स्थान पर पूर्वसवर्ण आदेश हो जाता है।

तस्मादित्युत्तरस्य 1.1.67

पंचमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम्।

व्याख्याः तस्मात् पद पंचमी विभक्ति का सूचक है। जब पंचमी विभक्ति द्वारा कोई कार्य निर्दिष्ट हो तो वह कार्य पंचम्यन्त पद द्वारा बोधित शब्द से बाद वाले वर्ण पर होता है। पचंमी–निर्दिष्ट पद और जिस वर्ण पर कार्य हो उसके बीच में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान नहीं होना चाहिए। जैसे 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' सूत्र में उदः में पचंमी विभक्ति है। अतः उत् उपसर्ग से परे स्था और स्तम्भ पर कार्य होंगे। उत् उपसर्ग से परे स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण आदेश बाताया गया है। यह आदेश किस वर्ण के स्थान पर हो इसका निर्णय अग्रिम सूत्र से होगा।

आदेः परस्य 1.1.54

परस्य यद् विहितं तत् तस्यादेर्बोध्यम्। इति सस्य थः।

व्याख्याः जो कार्य बाद वाले शब्द पर बताया गया है वह कार्य उस शब्द के आदि वर्ण पर होता है। जैसे उद्+स्थानम् और उद्+स्तम्भनम्। यहाँ स्थानम् स्था धातु का रूप है और स्तम्भनम् धातु का रूप है। अतः पूर्वसवर्ण

आदि वर्ण स् के स्थान पर होगा। पूर्ववर्ण तवर्ग है अतः स के स्थान तवर्ग होगा। स् का सवर्ण तवर्ग को कौन सा वर्ण है स्थानेऽन्तरतमः से प्रयत्न सादृश्य के कारण स् का सवर्ण थ् होगा क्योंकि दोनों का प्रयत्न विवार, श्वास, अघोष और महाप्राण है। इसलिए उद्+थ्थानम्, उद्+थ्तम्भनम् यह स्थिति हुई।

झरो झरि सवर्णे 8.4.65

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि।

व्याख्याः हल् से परे झर् हो और उससे परे सवर्ण झर् हो तो पूर्व झर् का विकल्प से लोप हो जाता है। जैसे उद्+थ्थानम् और उद्थ्तम्भनम् में थ् से परे सवर्ण झर् हैं। इसलिए पूर्व थ् का लोप हो गया और स्थिति हुई उद्+थानम् और उद+्तम्भनम्।

खरि च 8.4.55

खरि झलां चरः स्युः। इत्युदो दस्य तः उत्थानम्, उत्तम्भनम्।

व्याख्याः खर् परे होने पर झलों को चर् आदेश हो जाता है। उद्+थानम् और उद्+तम्भनम् में द् से परे खर् है। इसलिए द् को चर् आदेश होगा। चर् में वर्ण हैं च ट त क प श ष स। स्थानेऽन्तरतमः से द् को त् आदेश होगा। इसलिए रूप बनेगा उत्थानम् तथा उत्तम्भनम्। जब थ का लोप नहीं होगा तो स्थिति होगी उद् + थ् थानम्, उद् + थ्तम्भनम्। यहाँ खरि च सूत्र से थ् और द् दोनों को चर् आदेश त् होगा। इसलिए रूप बनेंगे उत्त्थानम् और उत्तम्भनम्।

झयो होऽन्यतरस्याम् 8.4.62

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः। नादस्य घोषस्य सवांरस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थाः–वाग्घरिः, वाग्हरिः।

व्याख्याः झय् से परे हकार को विकल्प से पूर्वसवर्ण आदेश हो जाता है। जैसे वाग् + हरिः। यहाँ ग् झय् प्रत्याहार का वर्ण है और उससे परे ह् है इसलिए ह् को विकल्प से पूर्व सवर्ण होगा। ग् कवर्ग का वर्ण है इसलिए स्थानेऽन्तरतमः से ह् को कवर्ग का घ् होगा। क्योंकि ह् और घ् का प्रयत्न नाद, घोष, संवार और महाप्राण है। इसलिए रूप बना वाग्घरिः। विकल्प पक्ष में वाग्हरिः ही रहेगा।

शश्छोऽटि 8.4.63

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि।

व्याख्याः झय् से परे शकार हो और उससे परे अट् हो तो शकार को विकल्प से छकार आदेश हो जाता है। जैसे तद् + शिवः। यहाँ द् को स्तोः श्चुना श्चुः से चवर्ग ज् आदेश हुआ और ज् को खरि च सूत्र से च्। च् झय् प्रत्याहार का वर्ण है। उससे परे शकार है और शकार से परे इ अट् है। इसलिए प्रकृत सूत्र से श् को छ् आदेश हुआ और रूप बना तच्छिवः। छकार के अभाव पक्ष में तच्शिवः रूप ही बनेगा।

मोऽनुस्वारः 8.3.23

मान्तस्य पदस्याऽनुस्वारो हलि। हरिं वन्दे

व्याख्याः जो पद मकारान्त है उसको हल् पर होने पर अनुस्वार आदेश हो। अलोऽन्त्यस्य परिभाषा के अनुसार म् को

अनुस्वार होगा न कि सम्पूर्ण पद को। जैसे हरिम् + वन्दे। यहाँ म् हरिम् पद के अन्त में है इसलिए इसे अनुस्वार आदेश हुआ और रूप बना हरिं वन्दे।

नश्चापदान्तस्य झलि 8.3.25

नस्य मस्य चाऽपदान्तस्य झल्यनुस्वारः। यशांसि, आक्रंस्यते। झलि किम् मन्यसे।

व्याख्याः अपदान्त नकार और मकार को अनुस्वार आदेश हो जाता है जब उससे परे झल् हो। पूर्व सूत्र में पदान्त म् को अनुस्वार आदेश बताया गया है। जैसे यशान् + सि = यशांसि। यहाँ न् पद के मध्य में है और परे सकार झल् हैं, इसलिए अनुस्वार आदेश हुआ है। इसी प्रकार आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते (आक्रमण किया जाएगा)। इसी प्रकार संगंस्यसि, पयांसि, मंस्यते, गंस्यते आदि रूप बनेंगे। । यह स्थिति झल् पर हाने पर ही होती है। मन्यते में अनुस्वार नहीं होगा क्योंकि न् से परे यकार है जो झल् नहीं है।

अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः 8.4.58

स्पष्टम्। शान्तः।

व्याख्याः यय् परे होने पर अनुस्वार को पर सवर्ण आदेश हो जाता है। जैसे शान्तः। यहाँ शाम्+तः में म् को पहले नश्चापदान्तस्य झलि सूत्र से अनुस्वार आदेश हुआ और स्थिति हुई शाम् + तः। अनुस्वार से परे त् है जो यय् प्रत्याहार का वर्ण है। इसलिए प्रकृत सूत्र से अनुस्वार को पर सवर्ण ओदश प्राप्त हुआ। अर्थात् तवर्ग आदेश हुआ। स्थानेऽन्तरतमः से न् आदेश प्राप्त हुआ। इसलिए रूप बना शान्तः। इसी प्रकार अटित, लुंचित, लुण्ठित, गुम्फित आदि शब्दों में पर सवर्ण हुआ है।

वा पदान्तस्य 8.4.59

त्वङ्करोषि, त्वं करोषि।

व्याख्याः पद के अन्त में अनुस्वार को यय् परे होने पर विकल्प से पर सवर्ण आदेश होता है। जैसे त्वम् + करोषि। यहाँ मोनुऽस्वारः से म् को अनुस्वार हुआ और स्थिति हुई त्वं + करोषि। अनुस्वार पद के अन्त में है इसलिए विकल्प से परसवर्ण हुआ। इसलिए रूप बना त्व**ङ् क**रोषि। विकल्प पक्ष में अनुस्वार ही रहेगा और स्थिति होगी त्वं करोषि। फलितार्थ यह है कि यदि अनुस्वार पद के मध्य हो तो उसे यय् परे होने पर नित्य परसवर्ण आदेश होगा और पद के अन्त में विकल्प से।

मो राजि समः क्वौ 8.3.25

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात्। सम्राट्।

व्याख्याः क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु परे होने पर सम् के म् को म् ही रहता है। जैसे सम्राट्। सम्+राज्+क्विप्। क्विप् का सर्वापहारी लोप होता है। सम+राज्। राज् के ज् को व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छषां षः सूत्र से ष् हुआ को झलां जशोऽन्ते सूत्र से ड् हुआ और वाऽवसाने से चर्त्व होकर ट् बना। इस प्रकार स्थिति बनी सम्+राट्। वर्तमान सूत्र से म् को अनुस्वार न होकर म् ही रहा और रूप बना सम्राट्।

हे मपरे वा 8.3.26

मपरे हकारे परे मस्य मो वा। किम्ह्मलयति, किं ह्मलयति।

व्याख्याः म् से परे ह् हो और ह् से परे म् हो तो ह् से पूर्व म् को विकल्प से म् ही रहता है। जैसे किम् + ह्मलयति। यहाँ म् से परे मकार परक ह् है। अतः वर्तमान सूत्र से मकार को विकल्प से म् ही रहेगा। किम्ह्मलयति

(क्या गति करता है)। विकल्प पक्ष में किं ह्मलयति रूप बनेगा। **वा. यवलपरे यवला वा कियँ ह्य।, किं ह्यः। किवँह्वलयति, किं ह्वलयति। किलँह्लादयति, किं ह्लादयति।**

व्याख्याः म् से परे ह् हो हो और उससे परे य्, व्, ल् हों तो म् को विकल्प से क्रम से मकार, वकार और लकार हो जाते हैं। जैसे– किम् + ह्यः = कियँह्यः। म् अनुनासिक है, अतः य्, व्, ल् भी अनुनासिक ही होंगे। इसी प्रकार किम् + ह्वलयति = किवँ ह्वलयति। किम् + ह्लादयति = किलँ ह्लादयति। विकल्प पक्ष में म् को अनुस्वार होगा जैसे– किं ह्यः। किं ह्वलयति। किं हलादयति।

नपरे नः 8.3.27

नपरे हकारे मस्य नो वा। किन्हनुते नुते, किं ह्नुते।

व्याख्याः नकार परक हकार परे होने पर म् को विकल्प से न् आदेश होता है। जैसे किम् + ह्नुते = किन्ह्नुते। विकल्प पक्ष में म् को अनुस्वार होगा और रूप बनेगा किं ह्नुते।

आद्यन्तौ ट्कितौ 1.1.46

टित्कितौ यस्योक्तौ, तस्य, क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः।

व्याख्याः जिस शब्द को टित् आगम बताया गया हो वह आगम उस शब्द के आदि में होता है और कित् आगम उस शब्द के अन्त में होता है। उदाहरण के लिए आगे देखें।

ङ्णोः कुक् टुक् शरि 8.3.28

वा स्तः

व्याख्याः ङकार और णकार से परे यदि शर् हो तो ङकार को कुक् का और णकार को टुक् का आगम होता है। कुक् और टुक् के अन्तिम क् की हलन्त्यम् से इत् संज्ञा होती और उकार की उपदेशजऽनुनासिक इत् से इत्संज्ञा होती है। केवल क् और ट् शेष बचते हैं। क् और ट् कित् हैं अतः ये आगम शब्द के अन्त में होंगे। जैसे प्राङ् + षष्ठः। यहाँ ङ् से परे ष् है जो शर् है अतः प्राङ् को विकल्प से कुक् आगम प्राप्त हुआ और स्थिति हुई प्राङ् क् + षष्ठः। **वा. द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् प्राङ्ख्षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः। सुगणठ् षष्ठः, सुगणट् षष्ठः, सुगण्षष्ठः।**

व्याख्याः पौष्करसादि आचार्य के मत में चय् (अर्थात् वर्ग के प्रथम वर्ण) को द्वितीय वर्ण आदेश हो जाता है शर् परे होने पर जैसे प्राङ्क् + षष्ठः = प्राङ्ख्षष्ठः। यह मत पौष्करसादि का है, पाणिनि का नहीं। पाणिनि के मत में क् ही रहेगा और रूप बनेगा– प्राङ् क् + षष्ठः = प्राङ्क्षष्ठः (क् और ष् का संयोग क्ष् लिखा जाता है)। कुक् का आगम विकल्प से है, अतः तीसरा रूप प्राङ्षष्ठः ही रहेगा। इसी प्रकार सुगण् = षष्ठः = सुगण्ट् + षष्ठः = सुगण् ठ् + षष्ठः = सुगण्ठ्षष्ठः और पाणिनि के मत में गुगण्ट्षष्ठः। टुक् आगम न होने पर सुगण् षष्ठः रूप रहेगा।

डः सि घुट् 8.3.29

डात्परस्य सस्य धुड् वा। षट्त्सन्तः षट् सन्तः।

व्याख्याः ड् से परे स् को धुट् का आगम विकल्प से होता है। जैसे षड् + सन्तः। यहाँ ड् से परे स् है, अतः स् को वर्तमान सूत्र से धुट् का आगम हुआ। धुट् का उट् इत्संज्ञक है, अतः ध् शेष रहा। ध् टित् है, अतः आद्यन्तौ ट्कितौ से स् के आदि में होगा। इस प्रकार स्थिति होगी षड् ध् सन्तः। ध् को खरि च से चर्त्व होकर

स्थिति बनी षड् त् सन्तः। ड को भी खरि च से चर्त्व होकर ट् आदेश हुआ और रूप बना षट्त् सन्तः। धुट् का आगम न हाने पर को चर्त्व होकर रूप बनेगा– षट्सन्तः।

नश्च 8.3.30

नान्तात् परस्य सस्य धुड् वा। सन् त् सः। सन् सः।

व्याख्याः नकारान्त पद से परे परे यदि स् हो तो स् को धुट् का आगम विकल्प से होता है। पूर्व सूत्र में डकारान्त पद से परे स् को धुट् का आगम बताया था। यहाँ पृथक् सूत्र अगले सूत्र में नकार की अनुवृत्ति के लिए बताया गया है। उदाहरण– सन् + सः = सन्त्सः। विकल्पक्ष में सन् सः।

शि तुक् 8.3.31

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग् वा। सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः, सञ् शम्भुः।

व्याख्याः पदान्त नकार से श् परे होने पर नकार को विकल्प से तुक् का आगम होता है। तुक् का क् शेष रहता है। कित् होने के कारण यह आगम अन्त में होगा। जैसे न+शम्भु = सन् त् शम्भुः। स्तोः श्चुना श्चुः से त् को च् आदेश हुआ और स्थिति हुई सन्च् शम्भुः। न् को भी श्चुत्व हो कर ञ् हुआ। अतः रूप हुआ सञ्च् शम्भुः। श को शश्छोऽटि से विकल्प से छ् आदेश हुआ और रूप बना सञ्च्छम्भुः। तुक् का आगम न हाने पर रूप बनेंगे– सञ् छम्भुः और सञशम्भुः।

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् 8.3.32

ह्रस्वात्परो यो ङम्, तदन्तं यत्पदं, तस्मात् परस्याचो ङमुट्। प्रत्यङ्ङात्मा सुगण्णीशः। सन्नच्युतः।

व्याख्याः ह्रस्व से परे ङम् हो, उस ङमन्त पद से परे अच् को ङमुट् आगम हो जाता है। ङम् प्रत्याहार में ङ, ण् और न् ये अनुनासिक वर्ण होते हैं। ये यदि पद के अन्त में हों और इन से पूर्व ह्रस्व अच् हो तो इनसे परे अच् को ङमुट् आगम होता है। ङमुट् का उट् इत्संज्ञक है। ङम् शेष रहता है। ङमुट् प्रत्याहार है जिसमें ङ्, ण् और न वर्ण होते हें। यथासंख्यमानुदेशः समानाम् के अनुसार ङ्, से परे ङ्, ण् से परे ण् और न से परे न् आगम होता है। ङमुट टित् है अतः यह आगम बाद वाले अच् के आदि में होगा। जैसे प्रत्यङ् + आत्मा। यहाँ प्रत्यङ् पद के अन्त में ङ् है और उससे पूर्व ह्रस्व अच् है, अतः बाद वाले अच् को ङ् आगम होगा। इस प्रकार रूप होगा– प्रत्यङ् + ङ् आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा। इसी प्रकार सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः। सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः। यह आगम नित्य बताया गया है परन्तु कई बार नहीं भी होता है। पाणिनि ने स्वयं कई स्थानों पर इस नियम का पालन नहीं किया है जैसे तिङन्त, सनादि आदि पदों में।

समः सुटि 8.3.5

समः रुः सुटि।

व्याख्याः सम् के म् को रु आदेश हो, सुट् परे होने पर। रु के उकार की इत्संज्ञा होती है केवल र् शेष रहता है। सुट् आगम है जिसके उट् की इत्संज्ञा होती है।

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा 8.3.2

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा।

व्याख्याः इस रु के प्रकरण में रु से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है। पाणिनि ने रु आदेश दो स्थानों पर बताया है– एक तो ससजुषो रुः (8.2.66) सूत्र में और दूसरा मतुवसो रुः सम्बुद्धौ (8.3.1) से लेकर कानाम्रेडिते

(8.3.92) सूत्र तक। सूत्र में प्रयुक्त अत्र से तात्पर्य बाद वाले रु से है। जैसे सम् + कर्त्ता। यहाँ सम्परिभ्याँ करोतौ भूषणे सूत्र से सुट् का आगम हुआ और स्थिति हुई सम् + स्कर्त्ता। अब समः सुटि से रु आदेश हुआ। तब स्थिति हुई– सर् + स्कर्त्ता। तब र् से पूर्व वाले वर्ण अर्थात् स् को अत्राानुनासिकः पूर्वस्य तु वा सूत्र से अनुनासिक हुआ। तब स्थिति हुई– सँ र् स्कर्त्ता। अनुनासिक विकल्प से होता है। अनुनासिक के अभाव पक्ष में अगले सूत्र से अनुस्वार होगा।

अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः 8.3.4

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः

व्याख्याः जब अनुनासिक न हो तो रु से पूर्व वाले वर्ण को अनुस्वारागम होता है। अनुस्वार होने पर स्थिति होगी सं र् स्कर्त्ता।

खवरवसानयोर्विसर्जनीयः 8.3.55

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः।

व्याख्याः खर् परे होने पर और अवसान में पदान्त रेफ को विसर्ग आदेश हो। अवसान की परिभाषा है–

विरामोऽवसानम्। अर्थात् वर्णों के अभाव को अवसान कहते हैं। तब स्थिति हुई– सँः स्कर्त्ता तथा संः स्कर्त्ता।

वा. संपुंकानां सो वक्तव्यः। सँस्कर्त्ता, संस्कर्त्ता।

व्याख्याः सम्, पुम् और कान् शब्दों के विसर्ग को स् कहना चाहिए। इस वार्तिक के अनुसार सम् के विसर्ग को स् होने पर रूप बनेंगे– सँस्कर्त्ता तथा संस्कर्त्ता।

पुमः खय्यम्परे 8.3.6

अम्परे खयि पुमो रुः। पुँस्कोकिलः पुंस्कोकिलः।

व्याख्याः पुम् से परे यदि खय् हो और उससे परे अम् हो तो पुम् के म् को रु आदेश हो। जैसे पुम् + कोकिलः = पुर् कोकिलः। यहाँ पुम् से परे क् है जो खय् प्रत्याहार का वर्ण है और उससे परे ओ है जो अम् प्रत्याहार का वर्ण है। अतः यहाँ प्रम् के म् को रु आदेश हुआ है।

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा सूत्र से रु से पूर्व वर्ण को अनुनासिक और दूसरे पक्ष में अनुनासिकात्परोनुऽस्वारः सूत्र से अनुस्वार होकर स्थिति हुई– पुँर् कोकिलः तथ पुंर् कोकिलः। र् को खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग और समपुंकाना सो वक्तव्यः इस वार्तिक से स् आदेश होकर रूप बने– पुँस्कोकिलः तथा पुंस्कोकिलः।

नश्छव्यप्रशान् 8.3.7

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः

व्याख्याः नकारान्त पद से अम्परक छव् परे हो तो नकारान्त पद के न् को रु आदेश होता है, प्रशान् शब्द को छोड़कर। जैसे चक्रिन् + त्रायस्व। यहाँ नकारान्त पद से परे त् है जो छव् प्रत्याहार का वर्ण है और उससे परे र् है जो अम् प्रत्याहार का वर्ण है। अतः वर्तमान सूत्र से न् को रु आदेश हुआ। रु का र् शेष रहा और स्थिति हुई चक्रि र् + त्रायस्व। अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा तथा अनुनासिकात्परोनुऽस्वारः सूत्रों से पूर्ववर्ण को अनुनासिक तथा विकल्प से अनुस्वार होकर स्थिति हुई– चक्रिँ र्त्रायस्व तथा चक्रिंर्त्रायस्व। र् को खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से विसर्ग हुआ। तब स्थिति हई चक्रिँः त्रायस्व तथा चक्रिंः त्रायस्व।

विसर्जनीयस्य सः 8.3.34

खरि। चक्रिंस्त्रायस्व। अप्रशान् किम् प्रशान्तनोति। पदान्तस्येति किम् – हन्ति।

व्याख्याः खर् परे होने पर विसर्ग के स्थान पर स् आदेश हो जाता है। इस प्रकार रूप बने चक्रिँस्त्रायस्व तथा चक्रिंस्त्रायस्व। प्रशान् शब्द को रु आदेश नहीं होता, अतः रूप बनेगा– प्रशान्तनोति। यदि न् पदान्त न हो तो भी न् को रु आदेश नहीं होगा। जैसे हन् + ति = हन्ति। यहाँ न् पदान्त नहीं है।

नॄन् पे 8.3.10

नॄन् इत्यस्य रुर्वा पे।

व्याख्याः नॄन् पद के न् को विकल्प से रु आदेश होता है जब पकार परे हो। जैसे नॄन् + पाहि = नॄर् पाहि। पूर्ववत् नॄ को अनुनासिक और अनुस्वार आगम होकर तथा र् को विसर्ग होगर स्थिति हुई– नॄँः पाहि तथा नॄंः पाहि। अब विसर्ग को विसर्जनीयस्य सः से स् प्राप्त होता है।

कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च 8.3.37

कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य ≍ क ≍ पौ स्तः। चाद्विसर्गः। नॄँ ≍ पाहि, नॄं≍ पाहि, नॄँः पाहि, नॄंः पाहि।

व्याख्याः कवर्ग और पवर्ग परे होने पर विसर्गों को क्रमशः जिह्वामूलीय और उपध्मानीय हो जाते हैं तथा विकल्प से विसर्ग भी रहते हैं। अतः नॄं ≍ पाहि, नॄं ≍ पाहि, नॄँ : पाहि, नॄं : पाहि ये चार रूप बनेंगे। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के लिए समान चिह्न– ≍ लगते हैं। इस चिह्न के आगे कवर्ग हो तो जिह्वामूलीय और पवर्ग हो उपध्मानीय पढ़े जाएंगे।

तस्य परमाम्रेडितम् 8.1.2 द्विरुक्तस्य

परमाम्रेडितं स्यात्।

व्याख्याः जब किसी शब्द को दो बार कहा जाए तो बाद वाले शब्द के आम्रेडित संज्ञा होती है। जैसे कान् कान्। यहाँ बाद वाले कान् की आम्रडित संज्ञा है।

कानाम्रेडिते 8.3.12

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रडिते। काँस्कान् कांस्कान्।

व्याख्याः कान् शब्द के नकार को रु आदेश होता है आम्रेडित परे होने पर। जैसे कान् कान्। यहाँ पूर्व कान् के न् को रु आदेश होगा क्योंकि द्वितीय कान् की आम्रेडित संज्ञा है। इसलिए स्थिति हुई– कार् कान्। पूर्ववत अनुनासिक्, अनुस्वार, विसर्जनीय और सकार होकर रूप बनेंगे – काँस्कान् तथा कांस्कान्। यहाँ विसर्जनीयस्य सः सूत्र से विसर्ग को स् स् प्राप्त हुआ परन्तु वा शरि सूत्र से विकल्प से विसर्ग भी प्राप्त होता है जिसको बाध कर 'सम्पुंकानां सो वक्तव्यः' वार्तिक से सकार ही होगा।

छे च 8.1.73

ह्रस्वस्य छे तुक्। शिवच्छाया।

व्याख्याः छकार परे होने पर ह्रस्व को तुक् का आगम होता है। जैसे शिव + छाया = शिव + त् + छाया। त् को स्तोः श्चुना श्चुः से चवर्ग च् होकर रूप बना शिवच्छाया।

पदान्ताद्वा 6.1.56

दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग्वा। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया।

व्याख्याः छकार परे होने पर पदान्त दीर्घ को विकल्प से तुक् का आगम होता है। जैसे लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया तथा लक्ष्मीछाया।

1.4.3 विसर्ग सन्धि

विसर्जनीयस्य सः 8.3.34

खरि। विष्णुस्त्राता।

व्याख्याः खर् परे होने पर विसर्ग के स्थान पर स् आदेश हो जाता है। जैसे विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता।

वा शरि 8.3.36

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा। हरिः शेते, हरिश्शेते।

व्याख्याः विसर्ग से परे यदि शर् हो तो विसर्ग का विकल्प से विसर्ग ही रहता है। यह पूर्व सूत्र का अपवाद है। पूर्व सूत्र में खर् परे होने विसर्गों को नित्य स् आदेश बताया है। परन्तु इस अपवाद सूत्र के द्वारा शर् अर्थात् श, ष, स्, परे होने पर विकल्प से विसर्ग आदेश बताया गया है। दूसरे पक्ष में सकार आदेश होगा। जैसे हरिः + शेते = हरिस् +शेते। स् को स्तोः श्चुना श्चुः से शकार आदेश होकर हरिश्शेते रूप बनेगा। विकल्प पक्ष में हरिः शेते रूप बनेगा।

ध्यान रहे क, ख् और प्, फ् परे होने पर कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च से विसर्गों को विकल्प से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय प्राप्त होते हैं और पक्ष में विसर्ग ही रहते हैं।

ससजुषो रुः 8.2.66

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात्।

व्याख्याः पदान्त में आने वाले सकार और सजुष् के ष् को रु आदेश हो जाता है। जैसे शिव + स् (प्रथम एकवचन का प्रत्यय) = शिवस्। स् पद के अन्त में है अतः वर्तमान सूत्र से स् को रु प्राप्त हुआ। रु के उकार की इत्संज्ञा है अतः र् शेष रहा और स्थिति बनी शिवर्। खरवसानयोर्विसर्जनीयः से र् को विसर्ग हुआ क्योंकि र् अवसान में है। अतः रूप बना शिवः। इसी प्रका रामः, गुरुः, हरिः आदि।

अतो रोरप्लुतादप्लुते 6.1.113

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति। शिवोऽर्च्यः।

व्याख्याः अप्लुत अकार से परे पदान्त रु के स्थान पर उ आदेश हो जाता है, अप्लुत अकार परे होने पर। जैसे शिवस् + अर्च्यः। ससजुषो रुः से शिवस् के स् को रु आदेश हुआ। रु का र् शेष रहा। स्थिति हुई शिवर् + अर्च्यः। र् से पूर्व अप्लुत अकार है और परे भी अप्लुत अकार है। अतः वर्तमान सूत्र से र् को उ होकर स्थिति हुई– शिव उ अर्च्यः। अ और उ को गुण ओ हुआ और एङ पदान्तादति सूत्र से अ को पूर्वरूप हुआ और रूप बना शिवोऽर्च्यः।

हशि च 6.1.114

तथा। शिवो वन्द्यः।

व्याख्याः अप्लुत अकार से परे पदान्त रु हो और उससे परे हश् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो रु को उ आदेश हो जाता है। जैसे शिवस् + वन्द्यः। यहाँ सःसजुषो रुः से पदान्त स् को रु आदेश हुआ। रु का र् शेष रहा। स्थिति हुई– शिवर् + वन्द्यः। रु से पूर्व अप्लुत अकार है और परे वकार है जो हश् प्रत्याहार का वर्ण है। अतः हशि च सूत्र से र को उ आदेश हुआ। तब स्थिति हुई शिव उ वन्द्यः। अकार और उकार की आद्गुणः से गुण सन्धि होकर रूप सिद्ध हुआ– शिवो वन्द्यः। हश् प्रत्याहार में सभी घोष वर्ण आते हैं।

भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि 8.3.17

एतत् पूर्वस्य रो यादेशोऽशि। देवा इह, देवायिह। भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः। तेषां रोर्यत्वे कृते–

व्याख्याः रु से पूर्व भो, भगो, अघो या अ पूर्व हो और परे अश् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो रु को यकार आदेश हो जाता है। भोस्, भगोस् और अघोस् सकारान्त निपात हैं। उदाहरण भोस् देवाः। भोस् के स् को ससजुषो रुः से रु आदेश हुआ जिसका र् शेष रहा। स्थिति हुई भोर् देवा। यहाँ रु से पूर्व भो है ओर परे द् है जो अश् प्रत्याहार का वर्ण हे। अतः वर्तमान सूत्र से र् को य् आदेश हुआ। स्थिति हुई भोय् देवाः

हलि सर्वेषाम् 8.3.22

भो भगो अघो अपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि। भो देवाः। भगो नमस्ते। अघो याहि।

व्याख्याः भो, भगो, अघो और अ पूर्वक य् का हल् परे होने पर सभी आचार्यों के मत में लोप हो जाता है। अतः भोय् देवाः = भो देवाः । इसी प्रकार भगो नमस्ते। अधो याहि। भोस्, भगोस् और अघोस् सम्बोधन शब्द हैं और निपात हैं। भोस् शब्द साधारण सम्बोधन में प्रयुक्त होता है। भगोस् शब्द आदर पूर्वक सम्बोधन में प्रयुक्त होता है और अघो शब्द में निन्दा का भाव निहित है। जैसे भो देवाः का अर्थ है अरे देवताओ। भगो नमस्ते का अर्थ है भगवान् आप को नमस्कार और अघो याहि का अर्थ अरे नीच, चला जा।

रोऽसुपि 8.2.69

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि। अहरहः। अहर्गणः।

व्याख्याः अहन् शब्द के न् को रेफ आदेश हो जाता है, परन्तु सप्तमी बहुवचन के प्रत्यय सुप् के परे रहते रेफ आदेश नहीं होता है। जैसे अहन् अहन्। न् को रेफ आदेश होने पर स्थिति हुई अहर् अहर् = अहरहर्। खरवसानयोर्विसर्जनीयः से र् को विसर्ग होकर रूप बना अहरहः। इसी प्रकार अहन् + गणः = अहर् + गणः = अहर्गणः

रो रि 8.3.14

रेफस्य रेफे परे लोपः

व्याख्याः रेफ से परे रेफ हो तो पूर्व रेफ का लोप हो जाता है। जैसे पुनर् + रमते। यहाँ रेफ से परे रेफ है, इसलिए पूर्व रेफ का लोप होगा और स्थिति होगी पुन + रमते।

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः 6.3.111

ढरेफयोर्लोपयोः पूर्वस्याणो दीर्घः। पुना रमते। हरी रम्यः। शम्भू राजते। अणः किम् – तृढः, वृढः। मनस् + रथः इत्यत्र रुत्वे कृते 'हशि च' इत्युत्वे 'रोरि इति लोपे च प्राप्ते।

व्याख्याः ढ् और र् का लोप जब ढ् और र् परे होने पर होता है, तो लोप होने के पश्चात् लोप निमित्तक ढ् और र् से पूर्व अण् (अ, इ,उ) को दीर्घ हो जाता है। जैसे पुनर् + रमते। यहाँ पुनर् के र् का लोप र् परे होन पर हुआ है। अतः रमते के र् से पूर्व जो अण् अर्थात् अकार है उसका दीर्घ हो जाएगा। अतः रूप बनेगा पुना रमते। इसी प्रकार हरिर् + रमते। यहाँ रोरि सूत्र से हरिर् के र् का लोप होकर स्थिति बनी हरि + रमते। रमते का रेफ लोप का निमित्त है, अर्थात् इसी र् के परे रहते हरिर् के र् का लोप हुआ है। लोप हाने के पश्चात् रमते के रेफ से पूर्व जो इकार है वह अण् प्रत्याहार का वर्ण है। इसलिए इस इकार का ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घेण्ऽाः से दीर्घ होगा और रूप बनेगा हरी रमते। इसी प्रकार शम्भुर् + राजते = शम्भु + राजते = शम्भू राजते।

यह दीर्घ केवल अण् अर्थात् अ, इ, उ का ही होगा अन्य स्वर का नहीं, इसलिए सूत्र में अण् का प्रयोग हुआ है। अण् के अतिरिक्त कोई दूसरा स्वर होगा तो उसे दीर्घ नहीं होगा जैसे तृढ् + ढः। यहाँ ढो ढे लोपः सूत्र से पूर्व ढकार का लोप हुआ और स्थिति हुई तृ+ढ : अब क्योंकि ऋ अण् प्रत्याहार का वर्ण नहीं है, इसलिए इसे दीर्घ नहीं होगा और तृढः रूप ही रहेगा।

विप्रतिषेधे परं कार्यम् 1.4.2

तुल्यबलविरोधे परं कार्य स्यात्। इति लोपे प्राप्ते 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति रो रि इत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव। मनोरथः।

व्याख्याः जब एक ही स्थान पर दो सूत्र समान रूप से लग रहे हों तो अष्टाध्यायी क्रम में जो सूत्र पर है अर्थात् बाद का है उसकी ही प्रवृत्ति होगी। तुल्यबलविरोध का अर्थ है जब दो सूत्रों का समान बल हो और दोनों सूत्रों की प्रवृत्ति समान रूप से हो। ऐसी अवस्था में यह देखना चाहिए कि अष्टाध्यायी में कौन सा सूत्र बाद का है। उसी की प्रवृत्ति होगी। जैसे मनस् + रथः। यहाँ ससजुषो रुः से स् को र् हुआ और स्थिति हुई मनर् + रथः। यहाँ हशि च ;6.1.114) सूत्र से र् को उ प्राप्त है और रो रि (8.3.14) से र् को लोप प्राप्त है। अष्टाध्यायी क्रम में रो रि सूत्र बाद का है, अतः र् का लोप प्राप्त है। परन्तु रो रि सूत्र त्रिपादी का है अतः पूर्वत्रासिद्धम् (8.3.1) से पूर्वसूत्र के प्रति असिद्ध है। अतः रो रि सूत्र से लोप प्राप्त होने पर भी हशि च सूत्र के प्रति असिद्ध है। अतः रो रि सूत्र से लोप प्राप्त होने पर भी हशि च सूत्र से र् को उ प्राप्त होगा। आद गुणः से गुण होकर रूप बनेगा। मनोरथः।

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि 6ण्1ण्132

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि, न तु नञ् समासे। एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः किम्– एषको रुद्रः। अनञ् समासे किम् – अस् शिवः। हलि किम् – एषोऽत्र।

व्याख्याः ककार रहित एतद् और तद् से परे प्रथमा एकवचन के प्रत्यय सु का लोप हो जाता है जब हल् परे हो। जैसे एषस् + विष्णुः। यहाँ एतद् से परे सु प्रत्यय लगाकर एषस् शब्द बना है। (पूरी प्रक्रिया के लिए देखें सुबन्त प्रकरण)। इससे परे व् हल् है। अतः प्रकृत सूत्र से स् का लोप होगा और रूप बनेगा– एष विष्णु। इसी प्रकार तद् शब्द से स शम्भुः। रूप होगा। जब एतद् और तद् शब्द के साथ ककार हो तो सु का लोप नहीं होगा। एतद् और तद् का ककारयुक्त रूप अकच् प्रत्यय जोड़ने से बनता है। अकच् प्रत्यय टि से

पूर्व जुड़ता है– अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः। अकच् प्रत्यय जुड़ कर एषकस् यह स्थिति बनती है। जैसे एषकस् रुद्रः अर्थात् यह रुद्र। यहाँ हप् परे होने पर स् का लोप नहीं होगा। ससजुषो से रुत्व और हशि च सूत्र से रु को उ होकर रूप तथा आद्गुणः से गुण होकर रूप बनेगा– एषको रुद्रः। नञ् समास में भी सु का लोप नहीं होता है जैसे असः शिवः (उससे भिन्न शिव)। हल् परे होने पर ऐसा क्यों कहा? क्योंकि अच् परे होने पर सु का लोप नहीं होता है जैसे एषोऽत्र। यहाँ स् को ससजुषो रुः से रुत्व, अतो रोरप्लुतादप्लुते से र् को उत्व, आद्गुणः से गुण और एङः पदान्तादति से पूर्वरूप एकादेश होकर एषोऽत्र रूप बनता है।

सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् 3.1.134

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत। सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

व्याख्याः अच् परे होने पर सः के सु का लोप हो जाता हे यदि पाद की पूर्ति में इसकी आवश्यकता हो। पूर्व सूत्र द्वारा हल् परे होने पर ही सः के सु का लोप बताया गया है, अच् पर होने पर नहीं। परन्तु यदि पाद की पूर्ति के लिए आवश्यकता हो तो सः के सु का अच् परे होने पर भी लोप हो जाता है। जैसे– सेमामविड्ढि प्रभृति य ईशिषे यह वेद के जगती छन्द का उदाहरण है। जगती छन्द में 12 अक्षर होते हैं। यदि सः के सु का लोप करके सन्धि नहीं होती तो 12 अक्षर से अधिक हो जाते और पाद की पूर्ति नहीं होती। इसी प्रकार – सैषः दाशरथी रामः यह अनुष्टुप् छन्द का लौकिक उदाहरण हैं अनुष्टुप् में आठ अक्षर होते हैं जो सः के सु का लोप करके और गुण सन्धि करके ही पूरा हो सकता है।

सः के सु का लोप न किया जाए तो सकार को रुत्व और भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि से र् को यकार होगा और लोपः शाकल्यस्य से विकल्प से लोप होकर स एष रूप बनेगा। लोपः शाकल्यस्य के असिद्ध हाने के कारण गुण सन्धि नहीं हो सकेगी। इस प्रकार स एष दशरथी रामः यह स्थिति होगी इसमें 9 अक्षर होने के कारण पाद की पूर्ति नहीं हो सकेगी।

(सन्धि प्रकरण समाप्त)

1.5 स्त्री प्रत्यय (अर्थ व्याख्या एवं रूपसिद्धि)

स्त्रियाम् 4.2.3

अधिकारोऽयम् 'समर्थानाम्–' इति यावत्।

व्याख्याः यह अधिकार सूत्र है। यह अधिकार 'समर्थानां प्रथमाद् वा 4।1।82।।' सूत्र तक है अर्थात् उससे पूर्व के सूत्रों में 'स्त्रियाम्' यह पद उपस्थित होता है–अतः वे सूत्र स्त्रीत्व बोधन के लि प्रत्यय करते हैं।

अजाद्यतष्टाप् 4.1.4

अजादीनाम्, अकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वम्, तत्र द्योत्ये टाप् स्यात्। अजा। एडका। अश्वा। चटका। मृषिका। वाला। वत्सा। होडा। मन्दा।विलाता–इत्यादिः अजादिगणः। सर्वा।

व्याख्याः अजाद्यत इति–अज आदि और अकारान्त शब्दों का जब स्त्रीत्व कहना हो, तब इन प्रातिपदिकों से टाप् हो।

टाप् का टकार और पकार इत्संज्ञक है।

अजा (बकरी)यहाँ अजादिगण के प्रथम शब्द अज से स्त्रीत्व अर्थ बोधन के लिये प्रकृत सूत्र से टाप् प्रत्यय हुआ। तब टाप् के आकार के साथ 'अज' के अन्त्य अकार के स्थान में सवर्ण दीर्घ होने पर 'अज' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में सु के अपृक्त सकार आबन्त से परे होने के कारण 'हल्–ङ्याब्भ्यो दीर्घात्

सुतिस्यपृक्तं हल6.1.68' इस सूत्र से लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। इन स्त्रीप्रत्ययान्त अजा आदि शब्दों से सु आदि की उत्पत्ति आबन्त होने के कारण 'ङ्याप्–प्रातिपदिकात् 4.1.1' इस सूत्र के अधिकार के बल से अथवा 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्–प्रातिपदिक का सामान्य या विशेष रूप से ग्रहण होने पर लिङ्ग–विशिष्ट का भी ग्रहण होता है'– इस परिभाषा के बल से होती है। इसी प्रकार –एडक (भेड़ा) से एडका (भेड़, अश्व (घोड़ा) से अश्वा (घोड़ी, चटक (चिड़ा) से चटका (चिड़िया, मूषक (चूहा) से मूषिका (चुहिया), बाल से बाला, वत्स से वत्सा, होड़ से होडा, मन्द से मन्दा और विलात से बिलाता–शब्द सिद्ध होते हैं। अन्तिम पाँच शब्दों का अर्थ कुमार है। सभी शब्द अजादि गण के हैं। सर्वा–यहाँ अकारान्त सर्व शब्द से टाप् प्रत्यय हुआ।

उगितश्च 4.1.6

उगिदन्तात प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। भवन्ती। पचन्ती। दीव्यन्ती।

व्याख्याः उगित प्रत्यय जिस प्रातिपदिक के अन्त में हो उससे स्त्री बोधक के लिये ङीप् प्रत्यय हो।

ङीप् प्रत्यय के ङकार और पकार इत्संज्ञक है, ई शेष रहता है।

कृदन्त प्रकरण में बताया गया शतृ प्रत्यय ऋकार उक के इत् होने से उगित् है, अतः तदन्त शब्दों से इस सूत्र के अनुसार स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होगा और तद्धित ईयसुन प्रत्यय भी उकार उक् के इत्संज्ञक होने के कारण उगित् है, अतः इयसुन् प्रत्ययान्त शब्दों से भी प्रत्यय होगा।

भवन्ती (होती हुई) यहाँ शतृप्रत्ययान्त भवत् शब्द से उगिदन्त होने के कारण प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ। तब उसके परे होने पर 'शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81' से नुम् आगम होकर रूप सिद्ध हुआ।

भा धातु से डवतु प्रत्यय होकर सिद्ध हुए भवत् (टाप्) के उगिदन्त होने के कारण उससे ङीप् होकर 'भवति' रूप बनता है। यहाँ नुम् नहीं होता। इसी प्रकार–शतृ प्रत्ययान्त पचत् और दीव्यत् शब्दों से पचन्ती (पकाती हुई) और दीव्यन्ती (खेलती हुई) रूप सिद्ध होते है।

ये सब उदाहरण प्रथमा के एकवचन में दिये गये हैं। आबन्त और ङीबन्त से प्रथमा के एकवचन सु के अपृक्त सकार का 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् 6.1.68' से लोप होकर रूप बनता है। ईयसुन् प्रत्ययान्त के उदाहरण मूल में नहीं दिये गये हैं–श्रेयस्–श्रेयसी (कल्याणकारिणी), पटीयस्–पटीयसी (अति चतुर स्त्री) और नेदीयस्–नेदीयसी (निकट स्थिता) इत्यादि।

टिड्–ढाऽण्–अञ्–द्वयसच्–दघ्नञ्–मात्रच्–तयपठक्–ठञ्–कञ्क्वरपः 4.5.15

अनुपसर्जनं यत् टिद्–आदि तदन्तं यद् अदन्तं प्रातिपदिकम, ततः स्त्रिया ङीप् स्यात् कुरुचरी। नदट्–नदी। देवट्–देवी। सौंपर्णयी। ऐन्द्री। औत्सी। ऊरुद्वयसी। ऊरु–दघ्नी। ऊरुमात्री। पंच–तयी। आक्षिकी। ग्रास्थिकी। लावणिकी। यादृशी। इत्वरी।

व्याख्याः अनुपसर्जन (जो गौण न हो) आकारान्त टिदन्त और ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नञ्, मात्रच्, तयप्, ठक, टञ्, कञ् और क्वरप् इन प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो।

ढआदि ग्यारह तद्धित प्रत्यय हैं। टित् प्रत्यय कृदन्त क ट टक् हैं और देवट् तथा नदट् शब्द भी टित् हैं। आगे इनके उदाहरण क्रमशः दिये जाते हैं। **कुरु–चरी** (कुरुषु चरति स्त्री–कुरुदेश में घूमनेवाली स्त्री)–यहाँ

[5]. *स्वार्थ, द्रव्य, लिङ्ग, संख्या और कारक–ये पाँच प्रातिपदिक के अर्थ हैं–इस पक्ष में लिङ्ग के प्रातिपदिकार्थ होनेसे प्रत्यय उसके द्योतक होते हैं लिङ्ग को प्रातिपदिकार्थ न माननेवालों के पक्ष में वाचक।*

'चरेष्टः3.2.16. ' सूत्र से सुबन्त उपपद रहते चर् धातु से ट प्रत्यय होकर सिद्ध हुए कुरुचर शब्द से स्त्रीलिङ्ग में प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च 6.4.148' अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

नदी–'नदट्' इस टि् प्रातिपदिक में प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय होने 'यस्येति च' से अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। देवी–देवट् शब्द से ङीप् प्रत्यय होकर पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ। सौपर्णेयी (सुपर्णी की कन्या, गरुड़ की बहन) यहाँ सुपर्णी शब्द से अपत्य अर्थ में 'स्त्रीभ्यो ढक् 4.1.120' से ढक् प्रत्यय होकर, उसको ' आयन्–7.1.2' इत्यादि सूत्र से 'एय्' आदेश, आदि वृद्धि, पूर्व ईकार का 'यस्येति च' से लोप होने पर सिद्ध हुए सौपर्णेय इस ढ प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से सूत्र से ङीप् हुआ। तब 'यस्येति च' से प्रातिपदिक से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

ऐन्द्री (इन्द्रो देवता अस्याः इन्द्र जिसका देवता है अथवा इन्द्र की)।

यहाँ इन्द्र शब्द से 'साऽस्य देवता4.2.24' अथवा 'तस्येदम् 4.3.120' से अण् होने पर, अकार का लोप और आदिवृद्धि होकर सिद्ध हुए ऐन्द्र–इस अण्णन्त प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ। तब अकार का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ। **औत्सी** (उत्सस्येयम्, उत्स–झरना या ऋषिविशेष सम्बन्धिनी)। यहाँ उत्स शब्द से 'उत्सादिभ्योऽञ् 4.1.86' सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर सिद्ध हुए औत्स इस अञ् प्रत्ययान्त शब्द से प्रकृत से ङीप् हुआ। तब 'यस्येति च' पूर्व अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

ऊरु–द्वयसी, ऊरु–दघ्नी, ऊरु–मात्री (ऊरूप्रमाणमस्याः, ऊरुप्रमाण जलवाली–तलैया, छोटा तालाब आदि।यहाँ ऊरु शब्द से प्रमाण अर्थ में 'प्रमाणे द्वयसच्–दघ्नञ्–मात्रचः5.2.37' से द्वयसच्, दघ्नञ् और मात्रच्–प्रत्यय होने पर सिद्ध हुए ऊरुद्वयस, ऊरुदघ्न और ऊरुमात्र–इन प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

पंच–तयी (पंच अवयवा अस्याः –पाँच अवयववाली)। यहाँ पंचन् शब्द से अवयव अर्थ में 'संख्याया अवयवे तयप् 5.2.42' से तयप् प्रत्यय होने पर नकार का लोप होकर सिद्ध हुए पंचतय प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हुआ।

आक्षिकी (अक्षैर्दीव्यति, पासों से खेलनेवाली)–यहाँ अक्ष शब्द से 'तेन् दीव्यति खनति जयति जितम् 4.4.2' से ठक् प्रत्यय होने पर ठकार को इक्, 'यस्येति च' से अकार का लोप और आदिवृद्धि होकर सिद्ध हुए 'आक्षिक' शब्द से प्रकृत से ङीप् हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्रास्थिकी (प्रस्थेन क्रीता, एक प्रस्थ से खरीदी हुई)–यहाँ प्रस्थ शब्द से क्रीत अर्थ में–'तेन क्रीतम'– से ठक् प्रत्यय होकर प्रास्थिक शब्द बना। इससे ङीप् होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

लावणिकी (लवणं पण्यमस्य, नमक बेचनेवाली)। यहाँ लवण शब्द से 'तदस्य पण्यम्–4.4.51 यह इसका विक्रेता है' इस अर्थ में 'लवणात् ठञ्4.4.52 से ठञ् होकर सिद्ध हुए लावणिक शब्द से ङीप् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अकार का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

यादृशी (जैसी)–यहाँ यत् शब्द उपपद रहते दृश् धातु से 'यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च 3.2.60' से कञ् प्रत्यय होने पर 'आ सर्वनाम्नः 6.3.71' से यत् शब्द को आकार अन्तादेश ओर सवर्ण दीर्घ होकर सिद्ध हुए यादृश कञन्तप्रातिपदिक से प्रकृतसूत्र से ङीप् हुआ। तब 'यस्येति च' से लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। **इत्वरी** (व्यभिचारिणी)। यहाँ 'इण् गतौ' धातुसे 'इण्–नशि–जि–सर्तिभ्यः क्वरप् 3.2.163' से तुक् आगम होकर'इत्वर' शब्द बना। क्वबरन्त होने के कारण इससे ङीप् हुआ और 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) नञ स्नञ्–ईकक्–ख्युनु–तरुण–तलुनानाम् उपसंख्यानम्। स्त्रैणीपौंस्नी। शाक्तीकी। आढ्यङ्करणी। तरुणी। तलुनी।

व्याख्याः नञ्, स्नञ, ईकक्, ख्युन्– ये प्रत्यय जिनके अन्त में हो, उनसे तथा तरुण और तलुन–इन प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो। ईकक्, नञ् और स्नञ् ये तद्धित प्रत्यय हैं और ख्युन् कृत् प्रत्यय है। स्त्रैणी, पौंस्नी (स्त्रीसम्बन्धी, पुरुष–सम्बन्धिनी)। यहाँ स्त्री और पुरुष शब्दों से 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् 4.1.87' से क्रमशः नञ् और स्नञ्प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, स्त्री शब्द से प्रत्यय नकार को णकार होकर सिद्ध हुए स्त्रैण और पौंस्नशब्दों से प्रकृत वार्तिक से ङीप् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

शाक्तीकी (शक्तिः आयुधविशेषः प्रहरणम् अस्याः–शक्ति नाम का अस्त्र जिसका हथियार है वह स्त्री)। यहाँ शक्तिशब्द से 'शक्तियष्ट्योरीकक्' से ईक्क् प्रत्यय आदिवृद्धि, अन्त्य इकार का 'यस्योति च' लापे होकर सिद्ध हुए 'शाक्तीक' शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीप् होने पर 'यस्येति च 6.4.148' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। आढ्यङ्करणी (अनाढ्य आढ्यः क्रियतनेऽया–जो अनाढ्य को आढ्य धनवान् बनावे)। यहाँ आढ्य पद उपपद रहते कृ धातु से 'आढ्य–सुभग 3.2.56' से ख्युन् प्रत्यय हुआ, तब 'यू' को अन आदेश, 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67' से मुम् आगम और नकार को णकार होकर 'आढ्यकरण'। तब 'यस्येति च' सूत्र से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। तरुणी, तलुनी (युवती)–यहाँ तरुण और तलुन शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीप् हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूपसिद्ध हुआ।

ङीप् आदि स्त्रीप्रत्यय अजादि हैं, अतः इनके परे रहते पूर्व की भसंज्ञा होती है, तब 'यस्येति च' पूर्व अवर्ण और इवर्ण का लोप हो जाता है–इस बात का सदा ध्यान रहना चाहिये। तद्धित प्रत्यय होने पर यदि वह अजादि हो तो 'यस्येति च' सूत्र लगता है, जैसा कि तद्धित प्रकरण में यत्र तत्र दिखाया गया है।

यञश्च4.1.16

यञन्तात् स्त्र्यां 'ङीप्' स्यात्। अकार–लोपे कृते–

व्याख्याः यञन्त से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो।

अकारेति–ङीप् होने पर यञन्त के अन्त्य अकार का जैसा ऊपर कहा गया है 'यस्येति च 6.3.148' से लोप हुआ।

हलस्तद्धितस्य 6.3.150

हलः परस्य तद्धित–यकारस्योपधाभूतस्य लोप ईकारे परे। गार्गी।

व्याख्याः हल से परे तद्वित के उपधाभूत यकार का लोप हो ईकार परे रहते।

गार्गी (गार्ग्य स्त्री, गर्ग गोत्र की स्त्री)–यहाँ 'गर्गादिभ्यो यञ्4.1.105' से गर्ग शब्द से गोत्र अर्थ में यञ् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' से अन्त्य अकार के लोप होकर सिद्ध हुए यञन्त गार्ग्य शब्द से पूर्वसूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ। तब पूर्वोक्त प्रकार से अन्त्य अकार का लोप होने पर प्रकृत सूत्र से यकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्राचां ष्फस्तद्धितः4.1.17

यञन्तात् ष्फो वा स्यात्, स च तद्धितः।

व्याख्याः यञन्त से ष्फ प्रत्यय हो स्त्रीलिङ्ग में और वह तद्धित संज्ञक हो।

'ष्फ' प्रत्यय की तद्धित संज्ञा करने का फल प्रातिपदिक संज्ञा है। तद्धितान्त होने के कारण ष्फप्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में अग्रिम सूत्र से ङीष् प्रत्यय होता है।

ष्फ प्रत्यय के आदि षकार की 'षः प्रत्ययस्य 1.3.6' से इत्संज्ञा होती है और फकार को 'आयन–एय्–ईन्–इयः फ–ढ–ख–छ–घां प्रत्ययादीनाम् 7.1.2' से 'आयन्' आदेश होता है।

षिद्–गौरादिभ्यश्च 4.1.41

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीप्। गार्ग्यायणी। नर्तकी। गौरी।

व्याख्याः षिद्गौरादिभ्य–षित् और गौर आदि शब्दों से ङीप् प्रत्यय हो।

ङीष् का 'ई' शेष रहता है, शेष भाग इत्संज्ञक है। ङीप् और ङीष्–दोनों का केवल ईकार शेष रहने पर भी स्वर में दोनों का अन्तर पड़ता है। ङीप् का ईकार पित् होने से अनुदात्त होता है और ङीष् का ईकार उदात्त। **गार्ग्यायणी** (गर्गस्यापत्यं स्त्री–गर्ग की अपत्य स्त्री)। यहाँयञन्त गार्ग्य शब्द से पूर्वसूत्र से ष्फ प्रत्यय हुआ, षकार की इत्संज्ञा, फकार को आयन् आदेश 'यस्येति च' से यकारोत्तरवती अकार का लोप और णत्व होने पर सिद्ध हुए 'गार्ग्यायण' शब्द से षित् होने के कारण प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय हुआ। फिर 'यस्येति च' से णकारोत्तर अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

नर्तकी (नाचनेवाली)। यहाँ नृत् धातु से 'शिल्पिनि ष्वुन् 3.1.145' से ष्वुन् प्रत्यय से सिद्ध हुए नर्तक शब्द से षित् होने कारण प्रकृत सूत्र से ङीष् हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। **गौरी** (गौरवर्ण की स्त्री)। यहाँ गौर आदि गण के आदि शब्द गौर से प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय हुआ। तब अन्त्य अकार का लोप होकर रूप बना।

(वा) आम् अनडुहः स्त्रियां वा। अनड्वाही, अनडुही। आकृतिगणोऽयम्।

व्याख्याः (वा) स्त्रीलिङ्ग में अनडुह् शब्द को आम् विकल्प से हो।

अनड्वाही, अनडुही गौ)– यहाँ गौरादि गण के अनुडुह् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हुआ। तब प्रकृत वार्तिक से आम् आगम होने पर उकार को यण् वकार होकर अनड्वाही रूप सिद्ध हुआ। आम् के अभावपक्ष में अनडुही रूप बना।

आकृतिगण इति–गौरादि आकृतिगण है। अतः अन्य शब्द भी जो इस प्रकार के हो, उन्हें इसके अन्तर्गत समझना चाहिये।

वयसि प्रथमे 4.1.20

प्रथमवयो–वाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी।

व्याख्याः वयसीति–प्रथम अवस्था के वाचक अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो। अवस्था तीन हैं–कौमार, यौवन और वार्द्धक्य। प्रथम अवस्था कौमार है। कौमार अवस्था के वाचक शब्द से ही सूत्र ङीष् प्रत्यय का विधान करता है। कुमारी (अविवाहित लड़की) –यहाँ प्रथम अवस्था के वाचक कुमार शब्द से

प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय हुआ। तब'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। इस सूत्र पर वार्तिक है 'वयसि–अ–चरमे' इस वार्तिक से यौवन अवस्था के वाचक शब्दों से भी उक्त प्रत्यय होता है। यह वार्तिक कहता है। अतएव वधूट और चिरण्ट इन दो शब्दों से नहीं होता, अन्य दोनों से होता है। अतएव वधूट और चिरण्ट इन दो शब्दों से –जो यौवन के वाचक हैं –भी ङीष होकर–वधूटी और चिरण्टी शब्द बनते हैं।

द्विगोः 4.1.21

अदन्ताद् द्विगोः 'ङीप्' स्यात्। त्रिलोकी। अजादित्वात्–त्रिफला, त्र्यनीका–सेना।

व्याख्याः द्विगोरिति–अदन्त द्विगु से ङीप् प्रत्यय हो।

त्रिलोकी (त्रयाणां लोकानां समाहारः, तीन लोकों का समुदाय) –यहाँ 'संख्या –पूर्वो द्विगुः 2.1.52' और 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इसमें स्त्रीत्व का नियम होन से 'त्रिलोक' शब्द से प्रकृत सूत्र द्वारा ङीप् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। त्रिफला (त्रायाणां फलानां समाहारः, हरड़, बहेड़ा और आंवला –यहाँ अकारान्त द्विगु होने पर भी अजादिगण के अन्तर्गत होने से 'अजाद्यतष्टाप् 4.1.2' इस सूत्र के द्वारा 'त्रिफल' शब्द से टाप् प्रत्यय होकर रूप सिद्ध हुआ।

त्रयनीका (त्रयाणामनीकानां समाहारः सेना)। यहाँ भी पूर्ववत् अजादिगण के अन्तर्गत होने से 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् प्रत्यय हुआ।

वर्णाद् अनुदात्तात् तोपधात् तो नः 4.1.39

वर्ण–वाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधः तदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद् वा ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। एनी, एता। रोहिणी, रोहिता।

व्याख्याः वर्णवाची जो अनुदात्तान्त नकारोपध शब्द तदन्त प्रातिपदिक से ङीप् हो विकल्प से और तकार को नकार आदेश भी।

एनी, एता (चितकबरी)– यहाँ वर्णवाची शब्द 'एत' अनुदात्तान्त है, क्योंकि तकारान्त वर्णवाची शब्द का आदि अच् '(फि. सू. 33) वर्णानां त–ण–ति–नि–ताऽतानाम्' इस फिट् सूत्र से उदात्त होता है, अन्त्य अकार अनुदात्त है। इसकी उपधा तकार है। यह किसी के प्रति गौण न होने से अनुपसर्जन भी है। अतः यहाँ प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय और तकार को नकार होकर रूप सिद्ध हुआ। अभावपक्ष में अकारान्त होने से 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् प्रत्यय हुआ। **रोहिणी, रोहिता** (लाल रङ्गवाली)–यहाँ रोहित इस वर्णवाची अनुदात्तान्त तोपध अनुपसर्जन प्रातिपदिक से ङीप् और तकारको नकार होकर रूप सिद्ध हुआ। अभावपक्ष में टाप् हुआ।

वोतो गुण–वचनात् 4.1.44

उदन्ताद गुण–वाचिनो वा ङीष् स्यात्। मृद्वि, मृदुः।

व्याख्याः उकारान्त गुणवाचक शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो विकल्प से।

मृद्वि, मृदुः (कामेला)। यहाँ उकारान्त गुणवाचक मृदुशब्द से प्रकृत सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ, उकार को यण् होकर रूप बना। अभाव पक्ष में वैसे हो रहा।

बह्वादिभ्यश्च 4 |1 |45 | |

एभ्यो वा ङीष् स्यात। बह्वी, बहुः।

व्याख्याः बहु आदि गण से ङीप् प्रत्यय हो विकल्प से। बह्वी, बहुः (बहुत, स्त्रीलिङ्ग)। यहाँ बहु शब्द से ङीप् प्रत्यय होने पर उकार को यण होकर रूप बना। अभावपक्ष में यथावत् रूप रहा।

(ग. सू.) कृद् इकाराद् अक्तिनः। रात्रिः, रात्री।

व्याख्याः (ग) कृद्इकारादिति–कृत् प्रत्यय का जो इकार, तदन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो विकल्प से, परन्तु क्तिन् प्रत्ययान्त से न हो। रात्री, रात्रिः (रात) –यहाँ रा धातु से 'रा–शादिभ्यस्त्रिप्' इस उणादि सूत्र से त्रिप् प्रत्यय होकर रात्रि शब्द बना। यहाँ कृत् प्रत्यय का इकार है, तदन्त रात्रि शब्द से ङीप् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से इकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। अभावपक्ष में जैसे का तैसा रूप रहा।

(ग. सू.) सर्वतोऽक्तिन्नर्थाद् इति एके। शकटी शकटिः।

व्याख्याः सर्वत इति–क्तिन् प्रत्यय के अर्थ में विहित जो प्रत्यय, तदन्त से भिन्न इकारान्त मात्रा से ङीष् हो ऐसा कुछ एक आचार्य मानते हैं।

कृदिकारान्त और अकृदिकारान्त–दोनों से विकल्प से ङीष् होता है, पर क्तिन् के अर्थवाले प्रत्यय जिनसे हों तो उनसे नहीं।

शकटी, शकटिः (छोटी गाड़ी)–यहाँ शकटि शब्द इकारान्त है, इससे ङीष् प्रत्यय प्रकृत वार्तिक से हुआ। पूर्ववत् इकार का लोप होकर रूप बना पक्ष में जैसे का तैसा रूप रहा।

पुंयागाद् आख्यायाम् 4.1.48

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते, ततो ङीष्। गोपस्य स्त्री–गोपी।

व्याख्याः पुंयोगादिति– जो पुरुष के अर्थ में प्रसिद्ध शब्द पुरुष सम्बन्ध के द्वारा लक्षणा से स्त्री के लिये प्रयुक्त किया जाय, उसे ङीष् प्रत्यय हो। तात्पर्य यह है कि शब्द पुँलिङ्ग हो, उसका प्रयोग पतिपत्नी भाव रूप सम्बन्ध के द्वारा लक्षणा से स्त्री के लिये प्रयुक्त किया जाने लगे–उस समय ङीष् प्रत्यय हो। जैसे हिन्दी में पण्डित की स्त्री को पण्डिताइन कहते हैं वह भले ही पण्डित न हो। उसी प्रकार पुँलिङ्ग शब्द से स्त्रीत्व बोधन के लिये संस्कृत भाषा में भी इस सूत्र से प्रत्यय का विधान किया गया है।

गोपी (गोपस्य स्त्री)। यहाँ गोप शब्द पुँलिङ्ग है। पतिपत्नी–भाव रूप सम्बन्ध को लेकर इस शब्द का उसकी स्त्री के लिये भी प्रयोग होगा, उस समय प्रकृत सूत्र में ङीष् प्रत्यय हुआ। फिर 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। गोपालन करनेवाले को गोप कहते हैं, उसकी स्त्री को उसके सम्बन्ध से ही गोपी कहा जायगा– उसके लिये गोपालन करने की आवश्यकता नहीं। उसी प्रकार शूद्र की स्त्री होगी चाहे वह स्वयं शूद्र न हो।

(वा) पालकाऽन्तात् न। गो–पालिका। अश्व–पालिका।

व्याख्याः वा पालकाऽन्तादिति–पालकान्त शब्द से पुंयोग में ङीष् न हो।

पुंयोग होने पर भी गोपालक शब्द से ङीष् का निषेध प्रकृत वार्तिक से हुआ। तब अकारान्त होने के कारण टाप् हुआ। तब अग्रिम सूत्र से लकार के उत्तर में वर्तमान अकार के स्थान में इकार आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ। अश्व–पालिका–(अश्वपालकस्य स्त्री–अश्वपाल की स्त्री)। यहाँ भी पुंयोग में प्राप्त ङीष् का

पालकान्त होने के कारण प्रकृत वार्तिक से निषेध हुआ। फिर पूर्ववत् टाप् और लकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान में अग्रिम सूत्र से इकार आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्रत्यय–स्थात् कात्पूर्वस्याऽत इदाप्यसुपः 7.3.44

प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याऽकारस्येकारः स्याद् आपि, स आप सुपः परो न चेत्। सर्विका। कारिका। अकारष्य किम्–नौका? प्रत्यय–स्थात् किम् शक्नोतीति शका। अ–सु.पः किम्? –बहू–परिव्राजका नगरी।

व्याख्याः प्रत्ययस्थादिति–प्रत्यस्थ ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश हो टाप् परे रहते, यदि वह टाप् प्रत्यय सुप् से पर न हो।

पूर्वोक्त गो–पालिका और **अश्व–पालिका**–शब्दों में इकार इसी सूत्र से हुआ है। क्योंकि उसमें प्रत्ययस्थ ककार है, उससे पूर्व अकार को ककार से पूर्व स्थान में इसलिये इकार हो गया, टाप् पर है और वह सुप् से पर नहीं। क्योंकि प्रातिपदिक से टाप् हुआ है।

सर्विका। यहाँ सर्व शब्द से स्वार्थ में 'अव्यय–सर्वनाम्नाम् अकच् प्राक् टेः 5.3.71' सूत्र से टि के पूर्व अकच् प्रत्यय होकर 'सर्वक' शब्द बना। स्त्रीत्व विवक्षा में अदन्त होने के कारण इससे 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अकार लोप होकर 'सर्वका' यह रूप बना। यहाँ ककार अकच् प्रत्यय का है, उससे पूर्व अकार को इस सूत्र से इकार हुआ। क्योंकि उससे पर टाप् भी है, वह सुप से पर भी नहीं। **कारिका** (करनेवाली)। कृ धातु से कर्ता अर्थ में 'ण्वुल्–तुचौ 3.1.133' से ण्वुल् प्रत्यय, वु को अक आदेश, ऋकार को वृद्धि आर् होकर सिद्ध हुए कारक शब्द से स्त्रीत्व–विवक्षा में अदन्त होने के कारण 'अजाद्यष्टाप् से टाप् प्रत्यय हुआ। तब टाप् परे होने के कारण प्रत्यय के तकार से पूर्व अकार को प्रकृत सूत्र से इकार होकर रूप सिद्ध हुआ। अत इति। अकार को इकार होता है–ऐसा इस सूत्र में क्यों कहा? इस लिये कि नौका यहाँ प्रत्यय के ककार से पूर्व औकार को इकार न हो। नौ शब्द से स्वार्थिक क प्रत्यय होने पर टाप् होकर रूप बनता है। प्रत्यय–स्थादिति। ककार प्रत्यय का हो–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि शका में ककार से पूर्व अकार को इकार न हो। यहाँ ककार प्रत्यय का नहीं, धातु का है। शक् धातु से पचादि अच् होने पर टाप् होकर यह रूप, बना है। असुप् इति–टाप् सुप् से परे न हो–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि बहुपरिव्राजका–बहुत सन्यासी जहाँ हो– वह नगरी' यहाँ अकार को इकार न हों। परिव्राजक शब्द परिपूर्वक व्रज् धातु से ण्वुल (अक) प्रत्यय से सिद्ध हुआ है। उसका बहु शब्द के साथ बहुव्रीहि समास हुआ है। समास होने पर सुप का लोप हुआ। तब अर्न्तवखतनी विभक्ति अर्थात् लुप्त सुप् से पर टाप् के होने के कारण यहाँ अकार को इकार नहीं होता।

(वा) सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः। सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम्–

व्याख्याः (वा) सूर्यादिति। देवता जाति की स्त्री रूप अर्थ में पुंयोग में वर्तमान सूर्य शब्द से चाप् प्रत्यय हो। चाप के चकार और पकार इत्संज्ञक हैं। 'पुंयोगाद आख्यायाम्' से प्राप्त ङीष् प्रत्यय का यह बाधक है। सूर्या (सूर्यस्य स्त्री देवता, सूर्य की देवता स्त्री)। यहाँ पुंयोग से स्त्री के अर्थ में वर्तमान सूर्य शब्द से चाप् प्रत्यय हुआ, यहाँस्त्री देवता है। तब 'यस्येति च' से अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

देवतायामिति–देवता अर्थ में ही चाप् हो क्यों कहा? इसलिये कि यदि स्त्री मनुष्य जाति की हो। वहाँ सामान्य ङीष् प्रत्यय होगा।

(वा) सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च य–लोपः। सूरी–कुन्ती, मानुषीयम्।

व्याख्याः (वा) सूर्याऽगास्त्योरिति–सूर्य और अगस्त्य शब्दों के यकार का लोप हो छ और ङी प्रत्यय परे रहते।

सूरी सूर्यस्य स्त्री मानुषी–सूर्य की मनुष्य जाति का स्त्री, कुन्ती)। यहाँ पुंयोग के द्वारा मनुष्य जाति की स्त्री अर्थमें वर्तमान सूर्य शब्द से सामान्य पुंयोग–लक्षण ङीप् हुआ। तब 'यस्येति च– से अन्त्य अकार का लोप होने पर प्रकृत वार्तिक से यकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

इन्द्र–वरुण–भव शर्व–रुद्र–मृड–हिमाऽरण्य–यव–यवन–मातुलाचार्याणाम् आनुक् 4.1.49

एषाम् 'आनुक्' आगमः स्यात् ङीष् च। इन्द्रस्य स्त्री–इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी।

व्याख्याः इन्द्रेति–इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव यवन, मातुल और आचार्य –इन शब्दों को ङीष् प्रत्यय ओर आनुक आगम हो। आनुक का उक् भाग इत्संज्ञक है, आन् शेष रहता है और कित् होने के कारण शब्दों के अन्त में होता है। इन्द्र आदि छ और मातुल तथा आचार्य–शब्दों से पुंयोग में ही होता है, पूर्व सामान्य सूत्र से ङीष् सिद्ध है, इस सूत्र से केवल आनुक् विशेष होता है और शेष चारों से दोनो ङीष् और आनुक् होते हैं। इन्द्राणी (इन्द्रस्य स्त्री, इन्द्र की स्त्री)। यहाँ इन्द्र शब्द के पुंयोग में प्रकृत सूत्र से ङीष् और आनुक् आगम हुए। तब'इन्द्र आन् ई' इस दशा में सवर्ण दीर्घ और णत्व होकर रूप सिद्ध हुआ। वरुणानी (वरुण की स्त्री), भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी (शिवजी की स्त्री, भव, शर्व, रुद्र और मृड–ये शिवजी के नाम हैं)। इन रूपों की सिद्धि भी इन्द्राणी के समान होती है।

(वा) हिमाऽरण्ययोर्महत्त्वे। महद्हिमम्–हिमानी, महद्अरण्यम्–अरण्यानी।

व्याख्याः (वा) हिमारऽण्योरति– हिम (बरफ) और अरण्य (जंगल) इन दो शब्दों से ङीप् और आनुक् महत्त्व अर्थात् बड़ा अर्थ में हो।

हिमानी (महद् हिमम्–अधिक बरफ)। यहाँ हिम शब्द से महत्व अर्थ में अरण्य शब्द से ङीष् और आनुक् होकर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) यवाद् दोषे। दुष्टो यवो–यवानी।

व्याख्याः यववादिति। दोषयुक्त अर्थ में वर्तमान यव (जौ–अन्न) शब्द से ङीष् और आनुक् हो।

यवनानी (यवनानां लिपिः –यवनों की लिपि)। यहाँ यव शब्द से दोष अर्थ में प्रकृत वार्तिक से ङीप् प्रत्यय और आनुक् आगम हुआ।

(वा) यवनात् लिप्याम्। यवनानां लिपिः–यवनानी।

व्याख्याः (वा) यवनादिति। लिपि अर्थ में वर्तमान यवन शब्द से ङीष् प्रत्यय और आनुक् आगम हो।

यवनानी यवनानां लिपिः–यवनों की लिपि)। यहाँ यवन शब्द से लिपि अर्थ में प्रकृत वार्तिक से ङीष् प्रत्यय और आनुक् आगम हुआ। इन चार शब्दों से हिम, अरण्य और यव इन तीन में पुंयोग असम्भव है।

इन विशेष अर्थों में इसीलिये इनका विधान किया गया है। यवन शब्द से पुंयोग अर्थ में सामान्य सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर 'यवनी' रूप बनता है।

(वा) मातुलोपाध्याययोः 'आनुक्' वा। मातुलानी, मातुली। उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

व्याख्याः (वा) मातुलेति–मातुल (मामा) और उपाध्याय (गुरु)। इन शब्दों से आनुक् विकल्प से हो।

यहाँ विकल्प आनुक् का ही है, ङीष् तो सामान्य सूत्र से आनुक् के अभाव में भी होता है। मातुल शब्द को आनुक् प्राप्त है, उपाध्याय को नहीं–दोनों का विकल्प से विधान किया–अतः यह प्राप्ताऽप्राप्त विभाषा है। मातुलानी, मातुली (मातुलस्य स्त्री, मामा की स्त्री–मामी) यहाँ मातुल शब्द से पुंयोग में ङीष् और विकल्प से

आनुक् प्रकृत वार्तिक से होकर पहला रूप बना। आनुक् के अभाव में सामान्य ङीष् होकर रूप सिद्ध हुआ। उपाध्यायानी, उपाध्यायी (उपाध्याय–अध्यापक की स्त्री)। यहाँ भी पूर्ववत् आनुक् के विकल्प से दो रूप बने।

(वा) आचार्याद् अणत्वं च। आचार्यस्य स्त्री–आचार्यानी।

व्याख्याः (वा) आचार्यदिति। आचार्य शब्द से पुंयोग में ङीष् और आनुक् होते हैं और नकार को णत्व का निषेध भी। आचार्यानी (आचार्य की स्त्री)। यहाँ पुंयोग में आचार्य शब्द से प्रकृत वार्तिक से ङीष्, आनुक, और णत्व का निषेध–ये तीन कार्य होकर रूप बना। जो स्वयं आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो, उस स्त्री को आचार्या कहा जाता है, वहाँ अदन्तलक्षण टाप् होता है। इसी प्रकार जो स्त्री उपाध्याय की पत्नी न होते हुए स्वयं अध्यापन करती हो उसे उपाध्याया कहा जाता है। यहाँ'या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीष् वाच्यः' इस वार्तिक से वैकल्पिक ङीष् हुआ।

(वा) अथ–क्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे। अर्याणी, अर्या। क्षत्रियाणी क्षत्रिया।

व्याख्याः (वा) अर्येति अर्य और क्षत्रिय शब्दों से स्वार्थ में ङीष् और आनुक् विकल्प से हों। स्वार्थ में विधान होने से पुंयोग में नहीं होतां विकल्प कहने से पक्ष में टाप् होता है। अर्याणी, अर्य (वैश्य कुल की स्त्री)। यहाँ अर्य शब्द से स्वार्थ में ङीष् और आनुक् होकर प्रथम रूप बना और अभावपक्ष में अदन्तलक्षण टाप् होकर दूसरा रूप। पुंयोग में ङीष् होकर अर्यी रूप बनता है।

क्षत्रियाणी, क्षत्रिया (क्षत्रिय स्त्री)। यहाँ पूर्ववत् सिद्धि हुई। पुंयोग में यहां भी ङीष् होकर क्षत्रियी रूप बनता है।

क्रीतात् करण–पूर्वात् 4.1.50

क्रीताऽन्ताद् अदन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्। वस्त्र–क्रीती। कव्चित न–धन–क्रीता।

व्याख्याः क्रीतादिति–करण कारक जिसके आदि में और क्रीत शब्द अन्त में हो–ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् हो।

वस्त्र–क्रीती (वस्त्र से खरीदी हुई)–करणकारक उपपद का क्रीत शब्द के साथ 'उपपदम अतिङ् 1.2.19' सूत्र से समास हुआ। 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' इस परिभाषा के बल से सुप् आने के पूर्व समास हुआ। इस प्रकार सिद्ध हुए 'वस्त्रक्रीत' प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से ङीष् प्रत्यय हुआ, क्योंकि यहाँ आदि मं करण वस्त्र है, अन्त में क्रीत शब्द है और वह अदन्त भी है। चिदिति–कहीं यह ङीष् नहीं होता। जैसे धन क्रीता (धनेन क्रीता धन से खरीदी हुई)। यहाँ बाहुलकात् पूर्वोक्त परिभाषा की प्रवृत्ति न होकर सुप् होने पर समास होता है, अतः सुप् के पूर्व लिङ्ग बोधक प्रत्यय टाप् हो जाता है।

स्वाङ्गच् चोपसर्जनाद् अ–संयोगोपधात् 4.1.54

असंयोगोपधम् उपसर्जनं यत् स्वाङ्गम् तदन्ताद् अदन्तात् ङीष् स्यात्। केशान् अतिक्रान्ता–अति–केशी, अति–केशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। असंयोगोपधात् किम्–सु–गुल्फा। उपसर्जनात् किम्–सु–शिखा।

व्याख्याः स्वाङ्गदिति–जिसकी उपधा में सयांगे नही, ऐसा उपसजर्न–गौणस्वाङ्गवाचकजो शब्द, तदन्त अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् विकल्प से हो।

स्वाङ्ग शब्द का यहाँ 'अपना अड्ग' यह अर्थ नहीं, अपि तु पारिभाषिक अर्थ है। उसके तीन लक्षण हैं–

(1) अद्रवं मूर्तिमत् रचाङ्गं प्राणि–स्थम् अ–विकारजम्

(2) अततस्थ तत्रदृष्टं च

(3) तेन चेत् तत् तथा–युतम्

1- अद्रव (जो तरल न हो), साकार, प्राणि में वर्तमान और अ–विकारज जो विकार से उत्पन्न न हो को स्वाङ्ग कहते हैं। प्रथम लक्षण के अनुसार जब प्राणी के अङ्ग प्राणी में हो तब उन्हें स्वाङ्ग कहा जाता है।

2- उसमें रहता न हो पर उसमें दिखाई दिया हो।

यह स्वाङ्ग का दूसरा लक्षण है। प्राणी के अङ्ग केश आदि यदि गली में पड़े– हों–गली में रहनेवाले न होकर

भी गली में दिखाई पड़ने के कारण इस दूसरे लक्षण के अनुसार ये स्वाङ्ग कहे जाते हैं। अति–केशी, अति–केशा (केशान् अतिक्रान्ता–केशों का अतिक्रमण करनेवाली)। यहाँ अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' से तत्पुरुष समास होने पर केश उपसर्जन हैं, प्राणी में स्थिति और साकार होने के कारण यह स्वाङ्ग है, अतः तदन्त अदन्त प्रातिपदिक 'अतिकेश' से वैकल्पिक ङीष् होकर रूप सिद्ध हुआ। अभावपक्ष–में–अदन्तलक्षण टाप् हुआ।

चन्द्र–मुखी, चन्द्र–मुखा (चन्द्र इव मुखं यस्याः–चन्द्रमा के समान मुखवाली)।यहाँ मुख शब्द प्रथमलक्षणके अनुसार स्वाङ्गवाची है, बहुव्रीहि समास में अन्य पदार्थ के प्रधान होने से मुख यहाँ उपसर्जन भी है। अतः स्वाङ्गवाची उपसर्जन मुखशब्दान्त अदन्त प्रातिपदिक चन्द्रमुख से वैकल्पिक अभावपक्ष में अदन्तलक्षण टाप् होकर रूप सिद्ध हुआ। उपर्युक्त उदाहरणों में केश, मुख आदि स्वाड्वाचकों की उपधा में संयोग नहीं–अतः, असंयोगोपध होने से प्रकृत सूत्र की प्रवृत्तिहुई। अ–संयोगोपधादिति–संयोग उपधा में न हो–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि सु–गुल्फा–(शोभनौ गुल्फौ यस्याः–सुन्दर गुल्फ गिईठवाली)। यहाँ गुल्फ स्वाङ्ग वाचक है, बहुव्रीहि समास के कारण उपसर्जन भी है, परन्तु इसकी उपधा में लकार और फकार का संयोग है। अतः संयोगोपध होने क कारण यहाँ ङीष् न हुआ। अदन्तलक्षण टाप् होकर रूप सिद्ध हुआ।

उपसर्जनादिति–उपसर्जन से–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि सुशिखा यहाँ न हो। शिखा शब्द 'शीङ् खो स्वश्च' इस उणादि सूत्र से शीङ् धातु से ख प्रत्यय और धातु को स्व होकर बने हुए शिख–शब्द से अदन्तलक्षण टाप् होकर बना है। यदि इस सूत्र में उपसर्जन न कहा जाय तो स्वाङ्गवाची होने से शिखा शब्द से टाप् को बाधकार ङीष् होने लगे।

न क्रोडादि–बह्वचः 4.1.56

क्रोडादेः, बह्वचश्च स्वाङ्गाद् न ङीष्। कल्याण–क्रोडा। आकृति–गणोऽयम्।

व्याख्याः न क्रोडेतिक्रोड आदि गण के और बह्वच् स्वाङ्गवाचक प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न हो।

कल्याण–क्रोडा कल्याणी क्रोडा यस्याः–जिसके वक्षस्थल पर कल्याण जनक चिह्न हों–ऐसी घोड़ी)। यहाँक्रोडा शब्द स्वाङ्गवाचक है–यह बहुव्रीहि का अवयव होने से उपसर्जन भी है, उसकी उपधा में संयोग भी नहीं। अतः एतदन्त अदन्त प्रातिपदिक कल्याणक्रोड से ङीष् प्राप्त था। प्रकृत सूत्र से उसका निषेध हुआ। तब अदन्तलक्षण टाप् होकर रूप सिद्ध हुआ। आकृतिगण इति–क्रोडादि आकृतिगण है। सु–जघना (शोभनं जघनं यस्याः–जिस स्त्री का जघन सुन्दर हो)। यहाँ जघन शब्द स्वाङ्ग वाची, उपसर्जन और असंयोगोपध हैं अदन्त प्रातिपदिक सुजधन से ङीष् प्राप्त है। जघन शब्द में बहुत अच् हैं–अतः प्रकृत सूत्र से ङीष् का निषेध हो गया । तब अदन्तलक्षण टाप् होकर रूप सिद्ध हुआ।

नख–मुखात् संज्ञायाम् 4.1.58

न ङीष्।

व्याख्याः नख और मुख –इन दो स्वाङ्गवाची शब्दों से ङीष् प्रत्यय न हो संज्ञा में।

पूर्व–पदात् संज्ञायाम् अ–गः 8.4.3

पूर्वपदस्थाद् निमित्तात् परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायाम् न तु गकार–व्यवधाने। शूर्प–णखा। गौर–मुखा। संज्ञायां किम्–ताम्र–मुखी–कन्या।

व्याख्याः नख–मुखादिति–पूर्वपद में स्थित निमित्त से पर नकार को णकार हो, पर गकार के व्यवधान में न हो।

शूर्प–णखा (शूर्पाणीव नखानि यस्याः–छाजके समान जिसके नख हैं–यह एक राक्षसी का नाम है जो रावण की बहिन थी)। यहाँ स्वाङ्गवाची नख शब्द से प्राप्त ङीष् का पूर्व सूत्र से निषेध हुआ। तब अदन्तलक्षण टाप् हुआ। फिर पूर्व पद शूर्प में स्थित निमित्त रकार से पर नख शब्द के नकार के स्थान में प्रकृत सूत्र से णकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

गौर–मुख (गौरं मुखं यस्याः–गौर मुखवाली, यह किसी का नाम है)। यहाँ मुख शब्द के स्वाङ्गवाची होने के कारण प्राप्त 'ङीष्' का प्रकृत सूत्र से निषेध हुआ। तब अदन्तलक्षण टाप् होकर रूप सिद्ध हुआ। **संज्ञायामिति**–संज्ञा में ङीष् का निषेध हो ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि ताम्र–मुख (गौर मुखवाली कन्या)। यहाँ निषेध न हो। क्योंकि ताम्रमुखी संज्ञा नहीं, अतः स्वाङ्गक्षण ङीष् होकर रूप सिद्ध हो जायगा।

जातेर –स्त्रीविषयाद् अ–योपधात् 4.1.63

जाति–वाचि, यद् न च स्त्रियां नियतम् अयोपधम्, ततः स्त्रियां ङीष् स्यात्। तटी। वृषली। कठी। बह्वृची। जातेः किम्–मुण्डा। अ–स्त्रीविषयात् किम्–बलाका। अ–योपधात् किम्–क्षत्रिया।

व्याख्याः जातेरिति–जो शब्द जातिवाचक हो, नित्य स्त्रीलिङ्ग न हो और उसकी उपधा यकार न हो–ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जाति से (1) जातिवाचक संज्ञा, (2) ब्राह्मण आदि जाति (3) अपत्य प्रत्ययान्त तथा (4) शाखा के पढ़ने वाला–ये चारों लिये जाते हैं। क्रमशः इनके उदाहरण दिये जाते हैं। तटी–तट जातिवाचक है, यह नित्य स्त्रीलिङ्ग भी नहीं, इसकी उपधा यकार भी नहीं है। अतः इससे प्रकृत सूत्र से जातिलक्षण ङीष् होकर रूप बना। वृषली (वृषल जाति की स्त्री)। यहाँ वृषल शूद्र जाति है। अतः इससे प्रकृत सूत्र से जातिलक्षण ङीष् होकर रूप बना। कठी (कठेन प्रोक्तमधीयाना कठ शाखा को पढ़नेवाली)। यहाँ कठ शब्द शाखावाचक है, कठ वेदकी एक शाखा है। अतः शाखावाची होने से यह जाति है। अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ जातिलक्षण ङीष् होकर रूप सिद्ध हुआ। बह्वृची(बह्वचृशाखामधीयानाः –बह्वृच शाखा को पढ़नेवाली)। यहाँ बह्वृच वेद की एक शाखा है, अतःशाखावाची होने से वह जाति है, अतएव प्रकृत सूत्र से जातिलक्षण ङीष् होकर रूप बना।

अपत्ययप्रत्ययान्त का उदाहरण मूल में नहीं दिया। औपगवी (उपगोरपत्यं स्त्री–उपगुकी सन्तान स्त्री जाति)–यहाँ अणन्त होने से 'टिड्–ढाऽणञ् 4.1.15' से प्राप्त ङीष् को बाधकर जातिलक्षण ङीष् होकर रूप सिद्ध हुआ। स्वर में भेद है। जातेरिति–जाति से ही–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि मुण्डा (मुँड़ी हुई) यहाँ ङीप् न हो। यह उपर्युक्त जातिलक्षणों में किसी में नहीं आता।

अ–स्त्रीविषयादिति–नितयस्त्रीङ्गि न हो–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि वलाका (पक्षी विशेष)–यहाँ न हो। वलाका शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग है, अतः इससे जातिलक्षण ङीष न हुआ। अदन्तलक्षण टाप् होकर रूप सिद्ध

हुआ। अ–योपधादिति–यकार उपधा में न हो–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि क्षत्रिय जातिकी स्त्री)। यहाँ जातिलक्षण ङीष् न हो। क्षत्रिय शब्द जातिवाचक है, पर इसकी उपधा यकार है।

(वा) योपध–प्रतिषेधे हय–गवय–मुकय–मनुष्य–मत्स्यानाम् अप्रतिषेधः। हयी। गवयी। मुकयी। 'हलस्तद्धितस्य' इति य–लोपः–मनुषी।

व्याख्याः (वा) योषधेति–योषध के निषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य–इनको भी वर्जित नहीं समझना चाहिये अर्थात् योपध होने पर भी हय आदि से ङीष् प्रत्यय हो। **हयी** (घोड़ी), गवयी (गवय स्त्री मादा–गवय गो सदृश पशु होता है) और मुकयी मुकच पशु जाति की मादा)–इन शब्दों की उपधा यकार है,तो भी इनसे प्रकृत वार्तिक के द्वारा जातिलक्षण ङीष् हुआ।

मनुषी (मनुष्य जाति की स्त्री)–यहाँ योपध होने पर भी मनुष्य शब्द से प्रकृतवार्तिक के अनुसार ङीष् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार के लोप होने पर 'हलस्तद्धितस्य 6.4.150' से सकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। मानुषी–मानुष शब्द से जातिलक्षण ङीष् होने पर सिद्ध होता है। मत्स्यस्येति–मत्स्य शब्द के यकार का ङी पर रहते लोप हो। मत्सी (मछली)। यकारोपध होने पर भी मत्स्य शब्द से पूर्वोक्त वार्तिक के अनुसार से ङीष् प्रत्यय हुआं तब 'यस्येति च' से अकार का लोप होने पर प्रकृत वार्तिक से यकार का लोप होकर रूप बना गया।

इतो मनुष्य–जातेः 4.1.65

ङीष्। दाक्षी। (वा) मत्स्यस्य ङ्याम्। य–लोपः। मत्सी।

व्याख्याः मनुष्य जातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिक से 'ङीष्' प्रत्यय हो।

'जातेरस्त्रीविषयाद्–'इत्यादि सूत्र अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय करते हैं, अतः इकारान्त का प्राप्त नहीं थे। अतः प्रकृत सूत्र से इकारान्त प्रातिपदिक से उसका विधान किया गया। दाक्षी (दक्षस्यापत्यं स्त्री–दक्ष की सन्तान स्त्री)। यहाँ दक्ष शब्द से अपत्य अर्थ में 'अत इञ्4.1.95' इस सूत्र से ठञ् प्रत्यय होकर सिद्ध 'दाक्षि' इस इकारान्त प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र सेङीष् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से इकार का लोप होकर रूप बना।

ऊङ् उतः 4.1.66

उदन्ताद् अयोपधात् मनुष्य ज्ञाति–वाचिनः स्त्रियाम् ऊङ् स्यात्। कुरूः अ–योपधात् किम्–अध्वर्युः–ब्राह्मणी। (वा) श्वशुरस्योकाराऽकार–लोपश्च। श्वश्रूः

व्याख्याः ऊङ इति–उकारान्त अयोपध मनुष्य जातिवाचीप्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो।
ऊङ् का ङकार इत्संज्ञक है।

कुरूः (कुरुजातेः स्त्री, कुरु जाति की स्त्री)। संज्ञा होने से कुरु शब्द जातिवाचक है, इसकी उपधा में यकार भी नहीं है। अतः उकारान्त अयोपध मनुष्यजाति–वाचक कुरु प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से ऊङ् प्रत्यय हुआ। तब सवर्ण दीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ।

अयोपधादिति–यकारोपध न हो–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि अध्वर्युः ब्राह्मणी–अध्वर्यु शाखा को पढ़नेवाली'–यहाँ ऊङ् न हो। शाखावाचक होने से अध्वर्यु शब्द जातिवाचक है। अध्वर्यु वेद की एक शाखा है। उपधा में यकार होने से यहाँ ऊङ् प्रत्यय नहीं हुआ।

(वा) श्वशुरस्येति– श्वशुर शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो और शकार से पर उकार का तथा रकार से पर अकार का लोप हो।

उकार और अकार के लोप होने पर शकार और रकार हल् रह जाते हैं।श्वशुर शब्द स 'श्वशुरस्य स्त्री' इस अर्थ में पुंयोगलक्षण ङीष् प्राप्त था। यह ऊङ् प्रत्यय उसका बाधक है।

श्वश्रूः (श्वशूर की स्त्री, सास)। यहाँ श्वशुर शब्द से ऊङ् प्रत्यय और शकार से पर उकार का तथा रकार से पर अकार का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

पङ्गोश्च 4.1.68

पङ्गूः।

याख्याः पङ्गोरिति–उकारान्त पङ्गु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो। जातिवाचक न होने के कारण पङ्गु शब्द की पूर्वसूत्र से ऊङ् प्राप्त नहीं था। इसलिये इस सूत्र के द्वारा विधान किया गया है।

पङ्गु (लङ्गड़ी)–यहाँ पङ्गु शब्द से प्रकृत सूत्र से ऊङ् प्रत्यय हुआ। तब सवर्ण दीर्घ होने पर रूप सिद्ध हुआ।।

ऊरूत्तरपदाद् औपम्ये 4.1.69

उपमानवाचिपूर्वपदम् ऊरुत्तरपदं यत् प्रातिपदिकम् तस्माद् 'ऊङ्' स्यात्। करभोरूः।

व्याख्याः ऊरूत्तरेति–जिस प्रातिपदिक का पूर्वपद उपमान–वाची और उत्तरपद 'ऊरु' शब्द हो, उससे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ्शब्द हो, उससे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो।

करभोरूः (करभौ इव ऊरू यस्याः–हथेली के किनारे के समान ऊरुवाली)। यहाँ करभ पूर्वपद उपमान है और उत्तरपद ऊरू है, अतः 'कुरुभोरु' इस प्रातिपादिक से ऊङ् प्रत्यय हुआ। तब सवर्ण दीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ।

संहित–शफ–लक्षण–वामादेश्च 4.1.70

अनौपम्याऽर्थ सूत्रम्। संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः।

व्याख्याः संहितेति– ऊरु उत्तरपदवाले प्रातिपदिक के पूर्वपद संहित, शफ, लक्षण और वाम हों तो उससे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो। अनौपम्याऽर्थमिति–यह सूत्र अनौपम्य के लिये है अर्थात् पूर्वपद उपमान जब न हो, तब यह सूत्र प्रवृत्त होगा। उपमान पूर्वपद होने पर पूर्वसूत्र से ही ऊङ् हो सकता है। संहित आदि शब्द उपमान नहीं, अतः पूर्वसूत्र से ऊङ् सिद्ध न था, इसलिये इस सूत्र के द्वारा विधान किया गया।

संहितोरुः (संहितौ ऊरू यस्याः–जिसके ऊरु मिले हुए हों) शफोरू (शफौ ऊरु यस्याः– जिसके ऊरू मिले हुए हों) लक्षणोरुः लक्षणौ ऊरू यस्याः जिसके ऊरु अच्छे लक्षणवाले हों) और वामोरूः (वामोरु शब्दों से ऊङ् प्रत्यय होकर सिद्ध होते हैं।

शाङ्र्गरवाद्यञो ङीन् 4.1.73

शाङ्र्गरवादेः अञो योऽकारः, तदन्ताच् जाति–वाचिनो ङीन् स्यात्। शाङ्र्गरवी। वैदी। ब्राह्मणी।

व्याख्याः ङीन् के ङकार और नकार इत्संज्ञक हैं, केवल ई शेष रहता है। ङीन् प्रत्ययान्त शब्द नित् होने से आद्युदात्त होता है। इस प्रकार ङीप्, ङीष्, ङीन् इन तीनों के ईकार रूप होने पर भी स्वर में अन्तर है।

शाङ्र्गरवी (श्रृङग्रोपत्य स्त्री– श्रृङ्रु की स्त्री सन्तान)। यहाँ अपत्य प्रत्ययान्त होने से जातिवाचक होने के कारण शाङ्र्गरव शब्द से ङीन् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार् का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। वैदी (विदस्य अपत्य स्त्री–विद की स्त्री सन्तान)। यहाँ 'अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् 4.1.104' इस सूत्र से अञ् प्रत्यय होकर सिद्ध हुए वैद शब्द से ङीन् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

ब्राह्मणी (ब्राह्मणजातीय स्त्री–ब्राह्मण जाति की स्त्री)। यहाँ जातिवाचक ब्राह्मण शब्द से जातिलक्षण ङीष् प्राप्त था, उसको बाधकर प्रकृत सूत्र से ङीन् प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

(ग. सू) नृ–नरयोर्वृद्धिश्च। नारी।

व्याख्याः (ग. सू)नृनरयोरिति–नृ और नर शब्द से स्त्रीलिडग् में ङीन् प्रत्यय हो औरवृद्धि भी–नृशब्द से वृद्धि ऋकार को और नर शब्द में आदि अकार को होती है।

ऋकारान्त होने के कारण नृशब्द से 'ऋलेभ्यो ङीप्' से ङीप् प्राप्त या और नर शब्द से जातिलक्षण ङीष्। नारी (नरजातीय स्त्री)। यहाँ नृ शब्द से प्रकृत गणसूत्र से ङीन् प्रत्यय और ऋकार को और नर शब्द के आदि अकार को वृद्धि होकर रूप सिद्ध हुआ। नर शब्द से भी प्रकृत गण सूत्र से ङीन् प्रत्यय और अकार को वृद्धि तथा अन्त्य अकार का 'यस्येति च' से लोप होकर पूर्वोक्त 'नारी' रूप ही बना।

यूनस्तिः 3.6.77

युवन्'शब्दात् स्त्रियां 'ति' प्रत्ययः स्यात्। युवतिः।

व्याख्याः यून इति–युवन् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ति प्रत्यय हो।

यवुतिः[1] (युवास्थावाली स्त्री)–यहाँ यवुन्शब्द से स्त्रीलिडग् से प्रकृतसूत्रसे ति प्रत्ययहुआ। तब 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने 4.4.17' से पूर्व की पद संज्ञा होने पर 'प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7' से नकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

(स्त्रीप्रत्यय प्रकरण समाप्त)

1.6 अपनी प्रगति जांचिए

1. प्रत्याहार सूत्र कितने हैं?
2. ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत संज्ञा किसकी होती है?
3. संयोग संज्ञा के स्वरूप को स्पष्ट करें।
4. 'सुद्ध्युपास्यः' इस पद में कौन–सी सन्धि है?
5. 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र से आप क्या समझते हैं?
6. 'तट्टीका' यहां कौन–सी सन्धि है?

---

6 - *इससे भी सु आदि प्रत्यय लिङ्गविशिष्ट परिभाषा से आते हैं।*

'युवती' यह दीर्घ ईकारान्त शब्द 'सर्वतोऽक्तिन्नर्थात्' इस बह्वादि गण सूत्रा से वैकल्पिक ङीष् के द्वारा अथवा 'यु मिश्रणामिश्रणयोः' धातु से शतृ प्रत्यय होकर सिद्ध हुए 'युवत्' शब्द से उगित् होने के कारण 'उगितश्च' सूत्रा से ङीष् प्रत्यय के द्वारा बनता है।

7. 'अजा' शब्द में कौन–सा स्त्री प्रत्यय है? ससूत्र निर्देश कीजिए।

8. 'यूनस्तिः' सूत्र से आप क्या समझते हैं?

1.7 निष्कर्ष

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि प्रत्याहार सूत्र कितने हैं एवं प्रत्याहारों का निर्माण कैसे होता है? प्रत्याहारों का महत्त्व एव किस प्रकार प्रत्याहारों की सहायता से पाणिनि ने अष्टाध्यायी को सुगम एवं व्यवस्थित रूप प्रदान किया इसका भी बोध होता है। कतिपय संज्ञाओं यथा इत्, लोप, संयोग, सवर्ण एवं पद आदि संज्ञाओं के स्वरूप एवं उनके प्रयोग तथा महत्त्व को भी जाना। किस प्रकार पाणिनि उद्‌देश्यपूर्ण संज्ञाओं का विधान करते हैं एवं उनकी व्याकरण तन्त्र में क्या उपादेयता है? इन विषयों को भी हृदयंगम किया।

सन्धि प्रकरण में अच् सन्धि में यण्, अयादि, गुण, वृद्धि, आदि सन्धियों को प्रयोगात्मक रूप से जानकर संस्कृत भाषा के अपने सौष्ठव में अभिवृद्धि की। इसी प्रकार श्चुत्व, ष्टुत्व आदि हल् सन्धि एवं सत्व आदि विसर्ग सन्धि–युक्त पदों का परिचय प्राप्त कर उनका शास्त्रीय विश्लेषण भी किया। सन्धि विधायक सूत्रों की गहनता से पड़ताल करने से सभी सन्धियों के नियम एवं क्षेत्र की भी स्पष्टता हो जाती है। स्त्री प्रत्ययों का सामान्य परिचय एवं रूप–सिद्धि की प्रक्रिया से भी इस इकाई के माध्यम से परिचय हो चुका है। टाप्, ङीप्, ङीष् एवं ङीन् आदि स्त्री प्रत्यय कब किस स्थिति में किस प्रातिपदिक से होंगे इसका भी पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है।

1.8 पदविश्लेषण

अदर्शन– विद्यमान होने पर भी जो दिखाई न दे।

आस्य– मुख के भीतर होने वाला।

संनिकर्ष– अत्यन्त सामीप्य।

अच्– स्वर।

अन्तरतम– सदृशतम।

उपदेश– आद्योच्चारण (जैसा शास्त्र में आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट है)

टि– एक संज्ञा विशेष किसी शब्द के अन्तिम अच् की अथवा उसके परवर्ती व्यंजन सहित पूर्ण समुदाय की टि संज्ञा होती है। यथा सरस् शब्द में अन्तिम अच् 'अ' तथा उसके परवर्ती व्यंजनभूत 'स्', 'अस्' इस प्रकार समुदाय की टि संज्ञा होती है।

विप्रतिषेध– तुल्यबलविरोध। दो समान बल वाले सूत्रों की सहप्रसक्ति।

1.9 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. 14

2. अच् (स्वरों की)

3. हलोऽनन्तराः संयोगः – अचों के व्यवधान से रहित हलों की संयोग संज्ञा होती है। जैसे 'इन्द्र' यहां पर

न्द्र् की संयोग संज्ञा है।

4. यण् सन्धि
5. एक स्थानी के स्थान पर जब कोई आदेश प्राप्त होते हैं जो स्थानी सर्वाधिक निकट है वही आदेश होगा।
6. ष्टुत्व
7. अजाद्यतष्टाप्– टाप् प्रत्यय
8. युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में 'ति' प्रत्यय होता है, जिससे युवति शब्द सिद्ध होता है।

1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. उपदेश किसे कहते हैं?
2. पद संहिता एवं अनुनासिक संज्ञा करने वाले सूत्रों का निर्देश करें।
3. आभ्यन्तर प्रत्यय कितने होते हैं? नाम सहित बतायें।
4. प्रकृतिभाव किसे कहते हैं? उदाहरण सहित बतायें।
5. 'अग्नेऽत्र' इसका पदच्छेद करते सन्धि एवं विधायक सूत्रों का निर्देश करें।
6. 'तल्लयः' सन्धिच्छेद करते हुए सूत्र का निर्देश करें।
7. श्चुत्व सन्धि को स्पष्ट करें।
8. 'कुमारी' शब्द में किस सूत्र से कौन–सा प्रत्यय होता है?

1.11 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

लघुसिद्धान्त कौमुदी – वरदराज आचार्य विरचित

टीकाएं

1. भीमसेन शास्त्री
2. धरानन्द शास्त्री
3. डॉ. अर्कनाथ चौधरी
4. डॉ. सत्यपाल सिंह
5. गोविन्द प्रसाद शर्मा (श्रीधरमुखोल्लोसिनी)

इकाई – 2

अजन्त सुबन्त प्रकरण

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 अजन्त सुबन्त

2.3.1 पुल्लिङ्ग शब्द

2.3.2 स्त्रीलिङ्ग शब्द

2.3.3 नपुंसकलिङ्ग शब्द

2.4 अपनी प्रगति जांचिये

2.5 निष्कर्ष

2.6 पदविश्लेषण

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

2.1 परिचय

व्याकरण शास्त्र में मुख्यतः दो प्रकार के शब्द होते है सुबन्त और तिङन्त। प्रस्तुत इकाई में सुबन्त शब्दों के प्रकरण का परिचय कराया जायेगा। जिन शब्दों के अन्त में सुप् प्रत्यय लगते हैं उन्हें सुबन्त (सुप् अन्त) शब्द कहा जाता है। सुप् प्रत्यय 21 होते हैं, जिनका पूर्ण परिचय प्रस्तुत इकाई में दिया जायेगा। सुप् प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि रूपों के निर्माण के लिये लगाये जाते हैं। जिन शब्दों के साथ सुबन्त प्रत्यय जुड़ते हैं उनकी व्याकरण में पद संज्ञा होती है तथा उन्हीं पदों को भाषा में प्रयोगार्ह भी माना जाता है। सुबन्त शब्द भी दो प्रकार के होते हैं अजन्त एवं हलन्त। अजन्त अर्थात् अच् (स्वर) जिनके अन्त में है यथा राम यह अकारान्त है, हरि यह इकारान्त है, शम्भु यह उकारान्त है। ये सभी शब्द अजन्त हैं। इस इकाई में ऐसे सुबन्त शब्दों पर विचार किया जायेगा जो अजन्त हैं। शब्दों का लैंगिक विभाजन भी त्रिविध है– पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग। यहां पर भी अजन्त शब्दों क्रमशः इसी क्रम में विचार किया गया है सर्वप्रथम प्रातिपदिक संज्ञा के स्वरूप पर विचार करते हुए 21 सुप् प्रत्ययों का बोध कराया जायेगा, फिर अजन्त पुल्लिङ्ग शब्दों यथा – राम, हरि, शम्भु, क्रोष्टु, गौ, रै आदि शब्दों के सातो विभक्तियों एवं तीनों वचनों के रूपों की सिद्धियां एवं तदन्तर्गत आने वाले सूत्रों की सुबोध व्याख्या प्रदर्शित की जायेगी। इसी क्रम में अजन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों एवं अजन्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों की भी रूपसिद्धि एवं सूत्रव्याख्या पर विचार किया जायेगा।

ध्यातव्य है कि यहां पर सभी शब्दों के शब्दरूप भी प्रदर्शित किये जायेंगे जिससे कि विद्यार्थियों को सन्देह ना रहे।

2.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप अजन्त सुबन्त शब्दों के स्वरूप को समझ सकेंगे

प्रातिपदिक संज्ञा का बोध होगा।

21 सुप् प्रत्ययों का परिचय प्राप्त होगा।

अंग–संज्ञा का स्वरूप समझ सकेंगे।

राम शब्द के सभी रूपों की सिद्धियां जान सकेंगे एवं राम शब्द के समान सभी अकारान्त पुल्लिङ्‌ग शब्दों की रूपसिद्धि कर पायेंगे।

सर्वनाम संज्ञा का बोध होगा।

हरि शब्द एवं तत्समान इकारान्त पुल्लिङ्‌ग शब्दों की रूपसिद्धि जान सकेंगे।

घि संज्ञा एवं उसके प्रयोजन का ज्ञान प्राप्त होगा।

आकारान्त स्त्रीलिङ्‌ग शब्दों का यथा 'रमा' के सभी रूपों की सिद्धि से परिचय होगा।

अजन्त नपुंसकलिङ्‌ग शब्दों यथा ज्ञान, वारि आदि के शब्दरूप एवं रूपसिद्धि जानने का अवसर मिलेगा।

2.3 अजन्त सुबन्त

2.3.1 पुँल्लिंग शब्द

अर्थवद् अधातुर् अप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। 1.2.45

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः जो शब्द अर्थवान् हों, धातुसंज्ञक न हों, प्रत्यय या प्रत्ययान्त न हों उनकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। उन्हीं शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है जिनका लोक में कुछ अर्थ हो। प्रातिपदिक मूल शब्द रूप होता है जिससे वाक्य में प्रयुज्यमान अनेक रूप बनते हैं। भाषा की मूल इकाई वाक्य है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पदसंज्ञा का अधिकारी होता है। प्रातिपदिक के साथ अनेक विभक्तियों के प्रत्यय जुड़ जाते हें। प्रत्यय जुड़ने पर ही शब्द वाक्य में प्रयोग के योग्य बनता है। जैसे राम शब्द से रामः रामौ आदि अनेक रूप बनते हैं। अतः राम की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त शब्द भी अर्थवान् होते हैं परन्तु उनकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती है। जैसे भू धातु होने अर्थ में प्रयुक्त होती है। परन्तु अर्थवान् होते हुए भी धातुसंज्ञक होने के कारण भू की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी इसी प्रकार सु आदि प्रत्यय अर्थवान् होते हुए भी प्रातिपदिक संज्ञक नहीं होंगे। प्रत्ययान्त शब्द जैसे रामः पठति आदि भी प्रातिपदिक संज्ञक नहीं होते।

कृत्तद्धितसमासाश्च 1.2.46

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः।

व्याख्याः कृत् प्रत्ययान्त, तद्धितान्त और समास की भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है पिछले सूत्र में प्रत्ययान्त की प्रातिपदिक संज्ञा का निषेध किया था। परन्तु उसके अपवाद के रूप में कृत् प्रत्ययान्त और तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों

की प्रातिपदिक संज्ञा बताई गई है। जैसे कृ + तृ = कर्ता यह कृत् प्रत्ययान्त रूप है। अतः प्रकृत सूत्र से इसकी प्रातिपदिक संज्ञा होगी और सुप् आदि प्रत्यय लगाकर कर्त्ता, कर्त्तारौ आदि रूप बनेंगे। इसी प्रकार उपगु + अण् = औपगवः इस तद्धितप्रत्ययान्त शब्द की भी प्रकृत सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होगी। समास अर्थवान् होता है। इसकी पूर्व सूत्र से ही प्रातिपदिक संज्ञा हो सकती थी परन्तु इस सूत्र में इसकी पृथक् गणना का प्रयोजन यह है कि समास में दो या दो से अधिक पद होते हैं। उनमें पृथक् पृथक् प्रत्येक की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती है, अपितु सम्पूर्ण समस्त पद की प्रातिपदिक संज्ञा होती। जैसे राज्ञः पुरुषः, इन दो पदों का जब समास होगा तभी राजपुरुषः शब्द बनता है। यहाँ पूरे राजपुरुष समस्तपद की प्रातिपदिक संज्ञा होगी। राजन् और पुरुष शब्द की पृथक् पृथ्क प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी। तद्धितान्त शब्द उपलक्षणार्थ है। कुछ तद्धित प्रत्यय ऐसे भी हैं जो शब्द के अन्त में न लगाकर मध्य या पूर्व में भी लगते हैं। जैसे अकच् प्रत्यय अन्त में न लगकर टि को लगता है, जैसे सर्व + अकच् = सर्वकः। इसी प्रकार बहुच् प्रत्यय शब्द के आदि में लगता है जैसे बहुधनः। तद्धित प्रत्यय युक्त होने के कारण इनकी भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् 4.1.2

'सु औ जस्' इति प्रथमा। 'अम् औट शस्' इति द्वितीया। 'टा भ्याम्, भिस्' इति तृतीया। 'ङे भ्याम् भ्यस्' इति चतुर्थी। 'ङसिभ्याम् भ्यास्' इति पंचमी। 'ङस्ओस् आम्' इति षष्ठी। 'ङि ओस् सुप्' इति सप्तमी।

व्याख्याः सु औ जस्, अम् और् शस्, टा भ्याम् भिस्, ङे भ्याम् भ्यस्, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङ्स, ओस् आम्, ङि ओस् सुप् ये 21 प्रत्यय होते हैं। आदिरन्त्येन सहेता सूत्र से सुप् प्रत्याहार बनता है जिसके अन्तर्गत ये सभी 21 प्रत्यय आते हैं। ये तीन–तीन प्रत्यय क्रमशः प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पचंमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्ति के हैं।

ङ्याप्प्रातिपदिकात् 4.1.1

व्याख्याः यह अधिकार सूत्र है। सुप् प्रत्यय ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक के अधिकार में प्रयुक्त होते हैं। ङ्यन्त से तात्पर्य है– ङी है अन्त में जिसके। ङी से तात्पर्य ङीप्, ङीष् और ङीन् ये तीन स्त्री प्रत्यय हैं आबन्त से तात्पर्य है–टाप् है जिसके अन्त में। टाप् प्रत्यय टाप्, डाप् और चाप् इन तीन स्त्री प्रत्ययों का प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि तीनों का टाप् शेष रहता है।

ङ्यन्त और आबन्त का ग्रहण इसलिए किया गया है प्रत्ययान्त की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती और प्रातिपदिक न होने के कारण इन शब्दों के साथ सु आदि की उत्पत्ति नहीं हो सकती थी। अतः प्रातिपदिक के साथ ङ्यन्त और आबन्त शब्द का ग्रहण करने से इनके साथ भी सु आदि की उत्पत्ति हो जाएगी।

यहाँ प्रश्न उठता है कि स्त्री प्रत्यय तो ङ्यन्त और आबन्त के अतिरिक्त और भी हैं जैसे ऊङ्, ति आदि ऐसे प्रत्ययान्त शब्दों के साथ सु आदि की उत्पत्ति कैसे सम्भव होगी। इसका उत्तर यह है कि ङयाप् शब्द उपलक्षण है और सभी

स्त्री प्रत्ययों का द्योतक है।

प्रत्ययः 3.1.1

परश्च 3.1.2

इत्यधिकृत्य। ङ्यन्ताद् आबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः।

व्याख्याः ङयाप् प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः और परश्च ये तीनों अधिकार सूत्र हैं। इन तीनों का सम्मिलित अर्थ है कि सु

आदि प्रत्यय ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदकि से परे लगते हैं। अधिकार सूत्र वो होते हैं जो स्वतंत्र रूप से अपना, अर्थ नहीं रखते अपितु दूसरे सूत्रों के साथ मिलकर अर्थ प्रदान करते हैं– स्वदेशे वाक्यार्थ बोधशून्यत्वे सति परदेशे वाक्यार्थबोधकत्वमधिकारत्वम्। अर्थात् जो अपने स्थान पर बोध न करा कर दूसरे स्थान पर जाकर अन्वित होकर वाक्यार्थ का बोध कराते हैं उन्हें अधिकार सूत्र कहा जाता है।

सुपः 1.1.103

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकशः एकवचन–द्विवचन–बहुवचन संज्ञानि स्युः।

व्याख्याः सुप् प्रत्ययों के तीन–तीन का समूह क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन होते हैं। सात विभक्तियों में तीनों वचनों में प्रत्यय इस प्रकार हैं–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पंचमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने 1.4.22

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः

व्याख्याः जब दो की विवक्षा हो अर्थात् जब वक्ता दो का बोध कराना चाहता हो तो द्विवचन का प्रयोग होता है और जब एक की विवक्षा हो तो एकवचन का प्रयोग होता है।

विरामोऽवसानम् 1.4.110

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गौ – रामः।

व्याख्याः जहाँ वर्णों का अभाव हो उसकी अवसान संज्ञा होती है। अर्थात् जिस वर्ण के पश्चात् अन्य कोई वर्ण न हो उसकी अवसान संज्ञा होती है। अवसान संज्ञा का प्रयोजन रुत्व के र् को विसर्ग करना है। जैसे रामर्। यहाँ र् की अवसान संज्ञा है अतः खरवसानयोर्विसर्जनीयः से र् को विसर्ग होकर रामः रूप बनेगा। रामः शब्द की सिद्धि इस प्रकार होगी–

रामः

राम शब्द की अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् अथवा कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा होगी। जब राम शब्द किसी के नाम आदि के लिए रूढ अर्थ में प्रयुक्त हो तो अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदकिम् से प्रातिपदिक संज्ञा होगी। जब राम शब्द रमु क्रीडायाम् धातु से घञ् कृत् प्रत्यय लगाकर बनेगा तो इसकी

कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होगी।

राम + सु	(ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इन तीन अधिकार सूत्रों से सु आदि की उत्पत्ति होगी। तब द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने सूत्र से एक की विवक्षा में प्रथमा एकवचन का प्रत्यय सु लगा)
राम + स्	(उपदेशेजऽनुनासिक इत् से उकार की इत्संज्ञा हुई और तस्य लोपः से उसका लोप हुआ)
राम + र्	(ससजुषो रुः से स् को रुत्व हुआ और उकार की इत्संज्ञा और लोप हुआ)
रामः	(विरामोऽवसानम् से र् की अवसान संज्ञा हुई और खरवसानयोर्विसर्जनीयः से र् को विसर्ग हुआ)

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ 1.2.64

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि, तेषामेक एव शिष्यते।

व्याख्याः एक विभक्ति परे रहने पर जो समान रूप दिखाई देते हैं उनमें से एक ही शेष रहता है। हम जानते हैं कि एक की विवक्षा में एकवचन, दो की विवक्षा में द्विवचन और बहुत की विवक्षा में बहुवचन प्रत्यय का प्रयोग होता है। दो की विवक्षा में शब्द का दो बार उच्चारण प्राप्त होता है और दो से अधिक की विवक्षा में अनेक बार उच्चारण प्राप्त होता है। इस सूत्र के द्वारा यह नियमन किया जाता है कि जहाँ एक जैसे शब्दों का एक से अधिक बार उच्चारण प्राप्त होता है, एक विभक्ति परे रहते उनमें से एक ही शेष रहता है। जैसे दो राम की विवक्षा में राम का दो बार उच्चारण प्राप्त होता है और द्विवचन का प्रत्यय प्राप्त होता है जैसे राम राम + औ। क्योंकि दोनों शब्दों से एक ही विभक्ति लगी है अतः इनमें से एक ही शेष रहेगा और स्थिति होगी– राम + औ। यह नियम तभी लागू होता है जब दोनों शब्दों का रूप समान दिखाई दे। राम कृष्ण में दोनों शब्दों का रूप समान नहीं है, अतः इनमें से एक शेष नहीं रहेगा, अपितु, दोनों शब्द ही विद्यमान रहेंगे। दो राम, इस विवक्षा में स्थिति होगी– राम + औ।

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः 6.2.102

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात। इति प्राप्ते–

व्याख्याः जब प्रातिपदिक के अन्त में अक् हो और परे प्रथमा और द्वितीया की अजादि विभक्ति हो तो दोनों को पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होता है। राम + औ में वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त है परन्तु उसको बाधकर प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त होता हे। परन्तु इसका अग्रिम सूत्र से निषेध हो जाता है।

नादिचि 6.1.104

आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिरेचि् रामौ।

व्याख्याः अवर्ण से परे यदि इच् हो तो पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होता है। राम + औ में अवर्ण से परे औ प्राप्त है जो इच् प्रत्याहार का वर्ण है। अतः पूर्वसूत्र से प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध होगा। पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध होने पर पुनः वृद्धिरेचि सूत्र की प्रवृत्ति होगी और रामौ रूप बनेगा। रामौ शब्द की सिद्धि प्रक्रिया इस प्रकार होगी–

राम + राम + औ	(अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपादिकम् अथवा व्युत्पत्तिपरक अर्थ में कृतद्धितसमासाश्च सूत्र से राम की प्रातिपदिक संज्ञा हुई। ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इन तीन सूत्रों के अधिकार में सु आदि प्रत्ययों की प्राप्ति हुई। द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने सूत्र से दो की विवक्षा में प्रथमा द्विवचन का प्रत्यय औ प्राप्त हुआ)
राम + औ	(सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ सूत्र से एक 'राम' शेष रहा।) यहाँ वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त हुई परन्तु उसको बाधकर प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ। परन्तु नादिचि सूत्र से इसका बाध हो गया)
रामौ	(पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश का बाध होने पर पुनः वृद्धिरेचि सूत्र की प्रवृत्ति हुई और यह रूप सिद्ध हुआ)।

बहुषु बहुवचनम् 6.1.104

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात्।

व्याख्याः जब बहुत की विवक्षा हो अर्थात् जब दो से अधिक का बोध कराना हो तो बहुवचन प्रत्यय आता है। जैसे राम राम

राम यहाँ तीन रामों का बोध कराना अभीष्ट है, इसलिए बहुवचन का प्रत्यय जस् आएगा– राम राम राम + जस्। सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ से एक ही 'राम' शेष बचेगा। तब स्थिति होगी राम + जस्।

चुटू 1.3.7

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः।

व्याख्याः प्रत्यय के आदि में चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा होती है। राम + जस्, यहाँ जस् प्रत्यय के आदि जकार की इत्संज्ञा होगी और तस्य लोपः से उसका लोप होगा तब स्थिति बनेगी– राम + अस्।

विभक्तिश्च 1.4.104

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः।

व्याख्याः सुप् और तिङ् की विभक्तिसंज्ञा होती है। तिङ् प्रत्यय धातु से परे लगकर क्रियारूप बनाते हैं।

न विभक्तौ तुस्माः 1.3.4

विभक्तिस्थास्तवर्गसमा नेताः। इति सस्य नेत्वम्। रामाः।

व्याख्याः विभक्ति में प्रयुक्त तवर्ग, सकार और मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। राम + अस् में सकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा प्राप्त है परन्तु प्रकृत सूत्र से सकार की इत्संज्ञा का निषेध हुआ। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से राम के अकार और अस् प्रत्यय के अकार को पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर रामास् रूप बना। ध्यान रहे, यहाँ इच् परे नहीं है, अतः प्रथमयोः पूर्वसवर्णः का बाध नहीं होगा। रामास् के स् को ससजुषो रुः से रुत्व, खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग होकर रामाः रूप सिद्ध होगा।

रामाः शब्द की सिद्धि

राम राम राम + जस् (पूर्ववत् प्रातिपदिकसंज्ञा और सु आदि की प्राप्ति। बहुषु बहुवचनम् से बहुत्व की विवेक्षा में प्रथमा बहुवचन का प्रत्यय जस् आया।)

राम + जस् (सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ सूत्र से एक 'राम' शेष रहा।)

राम + अस् (चुटू से जकार की इत्संज्ञा और तस्य लोपः से उसका लोप हुआ)

राम + अस् (हलन्त्यम् से अस् के सकार की इत्संज्ञा प्राप्त हुई परन्तु 'न विभक्तौ तुस्माः' से उसका निषेध हुआ)

रामास् (प्रथमयोः पूर्वसवर्ण से राम के अकार तथा अस् के अकार का पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश हुआ)

रामार् (ससजुषो रुः से स् को रु आदेश हुआ। उपदेशेजऽनुनासिक इत् से रु के उकार की इत्संज्ञा और तस्य लोपः से उसका लोप हुआ)

रामाः (विरामो अवसानम् से र् की अवसान संज्ञा और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग हुआ)

इस प्रकार रामाः रूप सिद्ध हुआ।

एकवचनं सम्बुद्धिः 2.3.49

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः सम्बोधन में प्रथमा का एक वचन सम्बुद्धिसंज्ञक होता है। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। सम्बोधन में प्रथमा एक वचन के रूप में अन्तर आता है, द्विवचन और बहुवचन के रूपों में अन्तर नहीं आता।

यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् 1.4.13

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते, तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्नगं स्यात्।

व्याख्याः जिस शब्द से प्रत्यय का विधान किया जाता है वह शब्द जिस शब्द समुदाय के आदि में हो उस समुदाय की, प्रत्यय के परे रहते अंग संज्ञा होती है। जैसे पठ् धातु से परे ति प्रत्यय का विधान किया जाता है और कर्तरि शप् से शप् (अर्थात् अ) का विधान किया जाता है तो पठ + अ + ति =पठ + ति यह स्थिति बनती है। यहाँ ति प्रत्यय से पूर्व पठ है जिसके आदि में पठ् है ,अतः पठ शब्द समुदाय की अंग संज्ञा होगी। अंगकार्य पठ शब्दसमुदाय पर ही होंगे केवल पठ् पर नहीं। इसका स्पष्ट उदाहरण है– पठ + मि। यहाँ अतो दीर्घोयञि से पठ अंग को दीर्घ होगा और

रूप बनेगा पठामि।

एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः 6.1.69

एङन्तात् ह्रस्वादंगात् हल् लुप्यते, सम्बुद्धेश्चेत्। हे राम, हे रामौ, हे रामाः।

व्याख्याः यदि अंग एङन्त हो अथवा ह्रस्वान्त हो तो सम्बुद्धि के हल् का लोप हो जाता है। जैसे राम + स्। यहाँ स् की एकवचनं सम्बुद्धिः से स् की सम्बुद्धि संज्ञा है। राम की यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽगंम् से अंग संज्ञा है। राम, ह्रस्वान्त अंग है। अतः सम्बुद्धि के हल् स् का लोप हो जाएगा और रूप बनेगा हे राम। द्विवचन और बहुवचन रूपों में कोई अन्तर नहीं है।

अमि पूर्वः 6.1.107

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। रामम्, रामौ।

व्याख्याः अक् से परे द्वितीया एकवचन के प्रत्यय अम् का अच् परे होने पर दोनों को पूर्वरूप एकादेश हो जाता है। जैसे राम+अम् = रामम्। यहाँ राम में मकार परे अ है जो अक् प्रत्याहार का वर्ण है।अतः इस अकार और अम् के अकार को पूर्वरूप अकार हुआ और रामम् रूप सिद्ध हुआ।

रामम् शब्द की सिद्धि राम + अम् (पूर्ववत् प्रातिपादक संज्ञा, ङयाप् प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च सूत्रों के अधिकार में सु आदि की उत्पत्ति।

द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने से एक की विवक्षा में द्वितीया एकवचन का प्रत्यय अम् आया। रामम् (अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश) द्वितीया के द्विवचन में प्रथमा के समान रामौ रूप बनेगा। द्वितीया के बहुवचन में राम + शस्।

तस्माच्छसो नः पुंसि 6.1.103

पूर्वसवर्णदीर्घात्, परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात् पुंसि।

व्याख्याः पूर्वसवर्ण दीर्घ से परे शस् के स् को पुँल्लिंग में न् आदेश हो जाता है। रामास् में पूर्वसवर्णदीर्घ हुए आकार से परे शस् का स् है। अतः इसको न् आदेश हुआ और रामान् बना।

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि 8.4.2

अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् एतैर्न्यस्तैः समस्तैर्यथासंभवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे। इति प्राप्ते।

व्याख्याः इस सूत्र में रषाभ्यां नो णः समानपदे सूत्र की अनुवृत्ति है। अतः अर्थ होगा– र् और ष् से परे अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् के व्यवधान होने पर भी न् को ण् हो जाता है, समान पद में। यह व्यवधान ऊपर बताए हुए किसी एक वर्ण का हो या अनेक वर्णों का हो तब भी न् को ण् हो जाता है। समान पद का अर्थ है एक ही पद। जैसे रामान् एक पद है। र् और न् के बीच में आ, म् और आ इन तीन् वर्णों का व्यवधान है। आ अट् के अन्तर्गत आते हैं और म् पवर्ग के अन्तर्गत। अतः न् को ण् प्राप्त होता है। परन्तु अग्रिम सूत्र से इसका निषेध हो जाता है।

पदान्तस्य 8.4.37

नस्य णो न। रामान्।

व्याख्याः पदान्त न् को ण् आदेश नहीं होता है। रामान् में न् पद के अन्त मे है, इसलिए इसे ण् आदेश नहीं होगा। अतः रामान् रूप सिद्ध होगा।

रामान् की सिद्धि

राम राम राम + शस् (यहाँ पूर्ववत् राम की प्रातिपदिक संज्ञा हुई। ङयाप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इन तीन सूत्रों के अधिकार से सु आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति हुई। बहुषु बहुवचनम् सूत्र से द्वितीया का बहुवचन प्रत्यय शस् आया।

राम + शस् (सरूपाणमेकशेष एकविभक्तौ सूत्र से एक राम शेष रहा।)

राम + अस् (लशक्वतद्धिते सूत्र से शस् के श् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से उसका लोप हुआ।)

रामास्　(प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से राम के अन्तिम अकार और अस् के अकार को पूर्वसवर्ण दीर्घ (एकादेश हुआ।)

रामान्　(तस्माच्छसो नः पुंसि से शस् के स् को नकार आदेश हुआ)

रामान्　(अट्कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि सूत्र से न् को ण् प्राप्त हुआ परन्तु पदान्तस्य सूत्र से उसका निषेध हुआ)

इस प्रकार रामान् रूप सिद्ध हुआ।

लशक्वतद्धिते 1.3.8

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः।

व्याख्याः तद्धित को छोड़कर प्रत्यय के आदि में लकार, शकार, और कवर्ग की इत्संज्ञा होती है। राम + शस् में शस् के शकार की इत्संज्ञा हुई और स्थिति हुई राम + अस्। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होकर स्थिति हुई रामास्।

तृतीया के एकवचन में राम + टा यह स्थिति हुई।

टाङसिङसामिनात्स्याः 7.1.12

अदन्तात् टादीनामिनादयः स्युः। णत्वम् – रामेण।

व्याख्याः अदन्त अंग से परे टा, ङसि, ङस् को क्रमशः इन, आत् और स्य आदेश हो जाते हैं। राम अदन्त है, अतः टा को इन आदेश हुआ। तब स्थिति हुई राम + इन।' आद्गुणः से गुण होकर स्थिति हुई रामेन। यहा न पद के अन्त में नहीं है अतः अट् कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि सूत्र से न को ण आदेश हुआ और रामेण रूप सिद्ध हुआ। तृतीया के द्विवचन में राम + भ्याम् यह स्थिति हुई।

सुपि च 7.3.102

यञादौ सुपि अतोऽंगस्य दीर्घः। रामाभ्याम्

व्याख्याः इस सूत्र में अतो दीर्घो यञि सूत्र की अनुवृत्ति है। अतः अर्थ होगा– यञ् है आदि में जिसके, ऐसा सुप् प्रत्यय परे रहते अदन्त अंग को दीर्घ आदेश हो जाता है। अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा सूत्र से अन्तिम अच् को दीर्घ होगा। राम + भ्याम् में अदन्त अंग से परे सुप् प्रत्यय भ्याम् है। भ्याम् सुप् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है अतः प्रकृत सूत्र से राम के अ को दीर्घ आदेश होकर रामाभ्याम् रूप बनेगा। तृतीया के बहुवचन में राम + भिस् यह स्थिति हुई।

अतो भिस् ऐस् 7.1.13

अनेकाल् शित् सर्वस्य। रामैः

व्याख्याः अदन्त अंग से परे भिस् को ऐस् आदेश होता है। ऐस् अनेकाल् है, अतः अनेकाल् शित् सर्वस्य इस परिभाषा सूत्र के बल से ऐस् आदेश सम्पूर्ण भिस् के स्थान पर होगा। ऐस् आदेश होकर रामैः रूप बनेगा।

रामैः रूप की सिद्धि

राम : भिस्　(पूर्ववत् तृतीया बहुवचन का प्रत्यय आया) राम + ऐस्　(अतो भिस् ऐस् से भिस् को ऐस् आदेश हुआ) रामैस्　(वृद्धिरेचि सूत्र से अ और ऐ को वृद्धि एकादेश ऐ हुआ) रामैर् (ससजुषो रुः से स् को रु आदेश

हुआ। उपदेशेऽजनुनासिक इत से उकार की इत्संज्ञा हुई। तस्य लोपः से उसका लोप हुआ)

रामैः (खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से र् को विसर्ग हुआ)इस प्रकार रामैः रूप सिद्ध हुआ।

चतुर्थी के एकवचन में ङे प्रत्यय आया और स्थिति हुई– राम + ङे।

ङेर्यः 7.1.9

अतोऽंगात्परस्य ङेर्यादेशः।

व्याख्याः अदन्त अंग से परे ङे के स्थान पर य आदेश होता है। इस प्रकार स्थिति होगी राम + य।

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ 1.1.56

आदेशः स्थानिवत् स्यात्, न तु स्थान्यलाश्रयविधौ।

व्याख्याः आदेश स्थानी के समान होता है, अर्थात् आदेश पर भी उसी प्रकार के कार्य होते हैं जिस प्रकार स्थानी पर। परन्तु यह नियम अल् विधि में लागू नहीं होता। अल् विधि का अर्थ है अल् सम्बन्धी विधि। अल प्रत्याहार में सभी वर्ण आ जाते हैं। जहाँ एक वर्ण को आश्रय मान कर आदेश किया जाता है उस पर स्थानी के समान कार्य नहीं होते।

वस्तुतः धातु, अंग, कृत्, तद्धित, सुप्, तिङ् और पदादेश स्थानिवत् होते हैं। धातु के स्थान पर आदेश धातु के समान , अंग के स्थान पर आदेश अङ्ग के समान कृत् के स्थान पर कृत् के समन समान, तद्धित के स्थान पर आदेश तद्धित के समान, सुप् के स्थान पर आदेश सुप् के समान, तिङ् के स्थान पर आदेश तिङ् के समान और पद के स्थान पर आदेश पद के समान होते हैं। जैसे अस्तेर्भूः, इस सूत्र से अस् धातु के स्थान पर भू आदेश होता है। इसलिए भू को धातु माना जाएगा। सुप् के स्थान पर आदेश सुप् के समान होते हैं। राम + य में ङे के स्थान पर य आदेश हुआ है, अतः य को सुप् ही माना जाएगा। इसलिए सुपि च से राम के अकार को दीर्घ होकर रामाय रूप बनेगा। चतुर्थी के द्विवचन में पूर्ववत् रामाभ्याम् रूप बनेगा।

चतुर्थी के बहुवचन में राम + भ्यस् यह स्थिति होगी।

बहुवचने झल्येत् 7.1.103

झलादौ बहुवचने सुपि अतोऽंगस्यैकारः, रामेभ्यः। सुपि किम् पचध्वम्।

व्याख्याः बहुवचन का झलादि सुप् यदि परे हो तो अदन्त अंग को एकार आदेश होता है। राम + भ्यस् में भ्यस् बहुवचन का प्रत्यय है और झलादि है। राम अदन्त अंग है, अतः राम के अकार को एकार होकर रामेभ्यः रूप बनेगा। स् को पूर्ववत् विसर्ग होंगे। सुप् परे होने पर ही अदन्त अंग को एकार आदेश होगा। सुप् भिन्न झलादि प्रत्यय परे होने पर ऐसा नहीं होगा। जैसे पच + ध्वम्। यहाँ ध्वम् बहुवचन का झलादि प्रत्यय परे है और पूर्व में अदन्त अंग है परन्तु क्योंकि ध्वम् सुप् नहीं है, अतः पंच के अकार को एकार आदेश नहीं होगा। पचंमी के एकवचन में राम + ङसि यह स्थिति होगी। ङसि को 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इस सूत्र से आत् आदेश होगा। अकः सवर्णे दीर्घः से सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर रामात् रूप बनेगा।

वाऽवसाने 8.4.56

अवसाने झलां चरो वा स्युः। रामात्, रामाद्, रामाभ्याम्, रामेभ्यः, रामस्य।

व्याख्याः अवसान में झलों को विकल्प से चर् आदेश होता है। रामात् में झलां जशोऽन्ते से त् को नित्य द् प्राप्त होता है। परन्तु अवसान में विकल्प से झलों को चर् आदेश बताया गया है। अतः रामाद् और रामात् ये दो रूप बनेंगे।

पंचमी के द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् क्रमशः रामाभ्याम् और रामेभ्यः रूप बनेंगे। षष्ठी के एकवचन में राम + ङस् यह स्थिति होगी। टाङसिङसामिनात्स्याः सूत्र से ङस् के स्थान पर स्य आदेश होगा और रामस्य रूप बनेगा। षष्ठी के द्विवचन में राम + ओस् यह स्थिति होगी।

ओसि च 7.3.104

अतोऽगस्यैकारः। रामयोः।

व्याख्याः यहाँ बहुवचने झल्येत् सूत्र से अकार को एत् होने की अनुवृत्ति है। अतः सूत्र का अर्थ होगा–अदन्त अंग के अकारको ओस् पर होने पर भी एकार आदेश होता है। अतः स्थिति हुई रामे + ओस्। एचोऽयवायावः सूत्र से अय् आदेश होकर रामयोस् बना। स् को पूर्ववत् विसर्ग होकर रामयोः रूप बनेगा।

षष्ठी के बहुवचन में राम + आम् यह स्थिति होगी।

ह्रस्वनद्यापो नुट् 7.1.54

ह्रस्वान्ताद् नद्यन्ताद् आबन्ताच्चांगात् परस्यामो नुडागमः।

व्याख्याः ह्रस्वान्त अंग से तथा आबन्त अंग से परे षष्ठी बहुवचन के प्रत्यय आम् को नुट् का आगम होता है। आद्यन्तौ टकितौ सूत्र से नुट् का आगम आम् के आदि में होगा। अतः स्थिति होगी राम + नाम्। राम ह्रस्वान्त अंग है अतः आम् को नुट् का आगम हुआ है। नुट् का उट् इत्संज्ञक है।

नामि 6.4.3

अजन्तांगस्य दीर्घः नामि। रामाणाम्। रामे। रामयोः। एत्वे कृते–

व्याख्याः नाम परे होने पर अजन्त अंग को दीर्घ हो जाता है। जैसे राम + नाम् यहाँ राम अजन्त अंग है और उससे परे नाम है, अतः प्रकृत सूत्र से राम के अच् को दीर्घ होकर रामा + नाम् यह स्थिति होगी। यद्यपि यहाँ सुपि च से भी दीर्घ हो सकता था। परन्तु सुपि च सूत्र केवल अदन्त अंग पर ही लागू होता है जबकि नामि सूत्र अजन्त अंग पर लागू होता है और विशेष रूप से नाम् परे होने पर ही लागू होता हौ। अतः यहाँ नामि से ही दीर्घ होगा। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि से न् को ण् होकर रामाणाम् रूप बनेगा। सप्तमी के एक वचन में राम + ङि यह स्थिति होगी। लशक्वतद्धिते से ङ् की इत्संज्ञा और तस्य लोपः से लोप होकर राम + ई यह स्थिति होगी। आद्गुणः से गुण होकर रामे रूप सिद्ध होगा।

सप्तमी के द्विवचन में राम + ओस् होकर पूर्ववत् रामयोः रूप बनेगा। सप्तमी के बहुवचन में राम + सुप् यह स्थिति होगी। यहाँ प् की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा और तस्य लोपः से लोप होकर राम + सु यह स्थिति होगी। बहुवचने झल्येत् से राम के अकार को एकार होकर यह स्थिति होगी– रामे + सु।

आदेशप्रत्यययोः 8.3.59

इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्य आदेशः प्रत्ययावयवश्च यः सः, तस्य मूर्धन्यादेशः। ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश। रामेषु। एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः।

व्याख्याः इस सूत्र में इण्कोः सूत्र का अधिकार है। इण् और कवर्ग से परे यदि अपदान्त स् हो और वह आदेश अथवा

प्रत्यय का अवयव हो तो उसे मूर्धन्य आदेश हो जाता है। स् ईषद्विवृत है अतः मूर्धन्य ईषद् विवृत वर्ण ष् ही स् के स्थान पर आदेश होगा। जैसे रामे + सु, यहाँ स् से पूर्व ए है जो इण् के अन्तर्गत है। सकार प्रत्यय का अवयव है। इसलिए प्रकृत सूत्र से स् को ष आदेश होगा और रामेषु रूप सिद्ध होगा। इस प्रकार राम के रूपों की सिद्धि हुई।

राम शब्द के सभी विभक्तियों में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पंचमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु

अन्य अकारान्त पुँल्लिंग के रूप राम की तरह चलेंगे। तृतीया के एकवचन और षष्ठी के बहुवचन में न् को ण् तभी होगा जब र् या ष् पूर्व में होंगे तथा अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् (अनुस्वार) वर्णों के अतिरिक्त अन्य वर्णों का व्यवधान नहीं होगा। जैसे कृष्ण के तृतीया एकवचन और षष्ठी पहुवचन में क्रमशः कृष्णेन और कृष्णानाम् रूप बनेंगे। क्योंकि ष् और न् के मध्य ण् का व्यवधान है जो अट्कुप्..... के अन्तर्गत नहीं आता।

अकारान्त सर्वनाम शब्दों के रूप

सर्वादीनि सर्वनामानि 1.1.27

सर्व, विश्व, उभ उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम।

पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। त्यद्, तद्, यद्, एतद् इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद् भवतु, किम्।

व्याख्याः सर्वादि शब्दों की सर्वनामसंज्ञा होती है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के साथ गणपाठ, धातुपाठ, उणादिपाठ आदि भी पढ़ने आवश्यक हैं क्योंकि पाणिनि के अनेक सूत्र गणपाठ आदि को ध्यान में रखकर रचे गए हैं। गणपाठ में सर्वादिगण भी है। सर्वादिगण में पठित शब्द सर्वादि कहलाते हैं। क्योंकि इस शब्द समूह के आदि में सर्व है। निम्नलिखित शब्दों की सर्वनाम संज्ञा होती है।

(क) सर्व (सब), विश्व (सब), उभ (दो), उभय (दो का समूह)।, डतर प्रत्ययान्त, डतम प्रत्ययान्त, अन्य (दूसरा), अन्यतर (दो में से कोई एक), इतर (दूसरा), त्वत् (दूसरा), त्व (दूसरा), नेम (आधा), सम(सब), सिम (सब)।

(ख) पूर्व (पहला), पर (बाद का या दूसरा), अवर (पश्चिम), दक्षिण (दक्षिण दिशा)।, उत्तर (उत्तर दिशा), अपर (पश्चिमी), अधर (नीचा) इन शब्दों की तब सर्वनाम संज्ञा होती है जब ये व्यवस्था अर्थ में प्रयुक्त हों और संज्ञा अर्थ में न हो। व्यवस्था का अर्थ है किसी पदार्थ की अन्य पदार्थ की तुलना में स्थिति बताना – स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था। अर्थात् जहाँ कोई पदार्थ किस के पूर्व या पर है इस प्रकार की स्थिति बताई जाए उसे व्यवस्था कहते हैं। जैसे दक्षिण शब्द की तभी सर्वनाम संज्ञा होगी जब वह दक्षिण दिशा का वाचक होगा जैसे दक्षिणे देशाः अर्थात् दक्षिण दिशा के देश। दक्षिण शब्द यदि अन्य अर्थ में प्रयुक्त होगा तो उसकी सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी, जैसे दक्षिणाः गायकाः अर्थात् चतुर गायक। ये शब्द यदि संज्ञा अर्थ में प्रयुक्त होंगे तो भी इनकी सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी। जैसे उत्तराःकुरवः अर्थात् उत्तरकुरु नामक देश।

(ग) स्व शब्द जब ज्ञातिवाचक या धनवाचक न हो तो उसकी सर्वनाम संज्ञा होती है। स्व शब्द चार अर्थों मे प्रयुक्त होते हैं–;1 स्वयं, ;2 अपना, ;3 ज्ञाति (बन्धु–बान्धव) तथा ;4 धन। स्वयं या अपना इन अर्थों में स्व की सर्वनाम संज्ञा होती है, जैसे स्वे प्रदेशाः (अपने प्रदेश) परन्तु स्वा गताः (बान्धव चले गए) या अस्वः भिक्षुकः (निर्धन भिक्षुक) यहाँ इनकी सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी।

(घ) अन्तर शब्द की बहिर्योग (अर्थात् बाह्य) तथा उपसंख्यान (अधोवस्त्र) अर्थों में सर्वनाम संज्ञा होती है।

(ङ) त्यद् (वह), तद् (वह), यद् (जो), एतद् (यह), इदम् (यह), अदस् (वह), एक, द्वि (दो) , युष्मद्, अस्मद् भवत् (आप्) तथा किम् (क्या) की भी सर्वनाम संज्ञा होती है। यह त्यादिगण है और इन शब्दों की रूप रचना पृथक् ढंग से होती है, अतः इनका परिगणन पृथक् किया गया है।

सर्व शब्द के रूप प्रथमा के एकवचन और द्विवचन में राम की तरह सर्वः और सर्वौ बनेंगे। प्रथमा के बहुवचन में अन्तर होगा।

जसः शी 7.1.17

अदन्तात् सर्वनाम्नो जसः शी स्यात्। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। सर्वे।

व्याख्याः अदन्त सर्वनाम से परे जस् के स्थान पर शी आदेश होता है। शी आदेश अनेकाल् है, अतः सम्पूर्ण जस् के स्थान पर होगा अन्तिम के स्थान पर नहीं। इसलिए सर्व + शी। शकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से उसका लोप होने पर सर्व + ई यह स्थिति रही। आद्गुणः से गुण होकर सर्वे रूप बना।

सर्वे शब्द की सिद्धि

सर्व + जस्

(अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकिम् से प्रातिपदिक संज्ञा। ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इन सूत्रों के अधिकार में सु आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति। बहुषु बहुवचनम् से प्रथमा एकवचन का प्रत्यय जस् आया)

सर्व + शी (सर्वादीनि सर्वनामानि से सर्व की सर्वनामसंज्ञा। जसः शी से जस् के स्थान पर शी आदेश। अनेकाल् शित् सर्वस्य से सर्वादेश) **सर्व + ई** (लशक्वतद्धिते से शकार की इत्संज्ञा और तस्य लोपः से उसका लोप) **सर्वे** (आद्गुणः से गुण एकादेश) इस प्रकार सर्वे रूप सिद्ध हुआ।

द्वितीया और तृतीया के रूप राम के समान होंगे।

सर्वनाम्नः स्मै 7.1.14

अतः सर्वनाम्नो ङे स्मै। सर्वस्मै।

व्याख्याः अदन्त सर्वनाम से परे चतुर्थी एकवचन के प्रत्यय ङे के स्थान पर स्मै आदेश हो। जैसे सर्व + ङे = सर्व + स्मै = सर्वस्मै।

चतुर्थी के द्विवचन और बहुवचन में राम के समान ही रूप होंगे।

ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ 7.1.15

अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः। सर्वस्मात्।

व्याख्याः अदन्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि के स्थान पर क्रमशः स्मात् और स्मिन् आदेश हो जाते हैं। अतः पंचमी का एकवचन का रूप सर्वस्मात् होगा। पचंमी के द्विवचन और बहुवचन में राम के समान सर्वाभ्याम् और सर्वेभ्यः रूप बनेंगे। षष्ठी के एकवचन और द्विवचन में राम के समान सर्वस्य और सर्वयोः रूप बनेंगे। षष्ठी के बहुवचन में रूप में अन्तर होगा।

आमि सर्वनाम्नः सुट् 7.1.52

अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः। एत्वषत्वे सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्। शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः। उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः उभौ, उभाभ्याम्, उभयोः। तस्येह पाठस्त्वकजर्थः। उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति। डतरडतमौ प्रत्ययौ। 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम् इति' तदन्ता ग्राह्याः। नेम इत्यर्धे। समः सर्वपर्यायः, तुल्यपर्यायस्तु न, यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इति निर्देशात्।

व्याख्याः अवर्णान्त सर्वनाम संज्ञक से परे आम् प्रत्यय को सुट् का आगम हो जाता है। अवर्णान्त चाहे मूल सर्वनाम शब्द हो अथवा किसी विकार द्वारा उसे अवर्णान्त बनाया गया हो, सभी से परे आम् को सुट् का आगम होता है। सुट् का उट् इत्संज्ञक है। केवल स् शेष बचता है। सर्व + आम् में प्रकृत सूत्र से सुट् का आगम होने पर स्थिति बनती है – सर्व + साम्। बहुवचने झल्येत् से सर्व के अकार को एकार आदेश होगा। इस प्रकार स्थिति होगी सर्वे + साम्। आदेश प्रत्यययोः से स को ष् आदेश होकर रूप बनेगा सर्वेषाम्। सप्तमी के एकवचन में ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ से ङि के स्थान पर स्मिन् आदेश होकर रूप बनेगा सर्वस्मिन्। सप्तमी के द्विवचन और बहुवचन में राम के समन सर्वयोः और सर्वेषु रूप बनेंगे।

सर्व शब्द के सभी विभक्तियों में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	**सर्वे**
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	**सर्वस्मै**	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	**सर्वस्मात्**	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	**सर्वेषाम्**
सप्तमी	**सर्वस्मिन्**	सर्वयोः	सर्वेषु

अकारान्त पुँल्लिंग सर्वनाम शब्दों में केवल पाँच स्थानों पर अन्तर आता है जैसा कि रेखांकित रूपों से स्पष्ट है। अन्य अकारान्त विश्व आदि सर्वनाम शब्दों के रूप सर्व के रूपों के समान होंगे। उभ शब्द के रूप केवल द्विवचन में ही बनेंगे– प्रथमा, द्वितीया में उभौ; तृतीया, चतुर्थी और पचंमी में उभाभ्याम्; षष्ठी और सप्तमी में उभयोः। इस प्रकार उभ शब्द के रूपों में सर्वनाम का कोई वैशिष्ट्य नहीं, फिर उसे सर्वनामों के अन्तर्गत क्यों रखा गया। इसका उत्तर यह है कि उस शब्द के साथ अकच् (अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः) प्रत्यय लगकर उभक शब्द बनता है जिसके रूप सभी विभक्तियों में चलते हैं। उभक के रूप उभकस्मै आदि सर्वनाम के वैशिष्ट्ययुक्त रूप बनते हैं। उभय शब्द के रूप द्विवचन में नहीं होते। या तो एकवचन में होते हैं। या बहुवचन में। डतर, डतम प्रत्यय हैं। यहाँ डतर और डतम प्रत्ययान्त शब्द जैसे कतर, कतम आदि का ग्रहण होगा। नेम शब्द अर्ध (आधा) अर्थ में सर्वनाम संज्ञक होता है तुल्य अर्थ में नहीं।

विश्वपा

दीर्घाज्जसि च 6.1.105

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिः विश्वपौ। विश्वपाः। हे विश्वपाः। विश्वपाम्। विश्वपौ।

व्याख्याः दीर्घ से परे जस् और इच् होने पर पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं होता है।

विश्वपा शब्द विश्व के साथ पा धातु के साथ समास होकर बना है–विश्वं पाति इति विश्वपा अर्थात् जो विश्व का पालन करे अर्थात् परमात्मा। विश्वपा का सु परे होने पर प्रथमा के एकवचन में स् को रुत्व विसर्ग होकर विश्वपा': रूप बनता है। द्विवचन में विश्वपा + औ यह स्थिति बनती है। यहां प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त होता है। परन्तु यहां दीर्घ से परे इच् है, अतः पूर्वसवर्ण दीर्घ का प्रकृत सूत्र से निषेध हो गया। अतः वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि एकादेश होकर विश्वपौ रूप बनेगा।

प्रथमा बहुवचन में विश्वपा + जस् यह स्थिति होने पर पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध हुआ। अतः अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ एकादेश होकर विश्वपाः रूप बना। द्वितीया के एकवचन में विश्वपा + अम् यह स्थिति होने पर प्रथमयोः पूर्वसवर्णः सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होकर विश्वपाम् रूप बनेगा। द्वितीया के बहुचन में विश्वपा + शस् = विश्वपा + अस् यह स्थिति होगी।

सुड् अनपुंसकस्य 1.1.53

स्वादिपंचवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य।

व्याख्याः सु आदि पाँच प्रत्ययों की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। अर्थात् सु, औ, जस, अम्, औट् ये पाँच प्रत्यय सर्वनास्थान–संज्ञक होते हैं। ध्यान रहे सर्वनामस्थानसंज्ञा ओर सर्वादीनि सर्वनामानि से बताई गई सर्वनाम संज्ञा में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है।

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने 1.4.17

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात्।

व्याख्याः सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्ययों को छोड़ कर सु से लेकर कप् प्रत्यय तक परे रहने पर पूर्व की पद संज्ञा होती है। स्वौजस्........ (4.1.2) सूत्र से लेकर उरः प्रभृतिभ्यः कप् (5.4.151) तक जितने प्रत्यय गिनाए गए हैं उनके परे रहते पूर्व शब्द की पद संज्ञा होती है। केवल सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्यय परे रहते पद संज्ञा नहीं होती ।

जैसे विश्वपा + शस् में शस् प्रत्यय सर्वनामस्थान भिन्न है और सु से लेकर कप् प्रत्यय तक की अवधि में है। अतः शस् परे होने पर विश्वपा की पद संज्ञा प्राप्त होती है।

यचि भम् 1.4.185

यादिषु अजादिषु च कप् प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः सर्वनामस्थान प्रत्ययों को छोड़कर सु से कप् तक यहारादि और अजादि प्रत्यय परे रहते पूर्व की भसंज्ञा होती है।

अकडाराद् एका संज्ञा 1.4.1

इतः ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्रागे–कस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया, या पराऽनवकाशा च।

व्याख्याः इस सूत्र से लेकर कडारा कर्मधारये (2.2.38) तक जो संज्ञाएँ गिनाई गई हैं वो एक शब्द की एक ही संज्ञा होती है। जहाँ एक शब्द की दो संज्ञाएँ प्राप्त हो रही हों वहाँ अष्टाध्यायी क्रम से बाद वाली संज्ञा को ग्रहण करना चाहिए। जैसे विश्वपा + अस् (शस्) में स्वादिष्वसर्वनामस्थाने सूत्र से पूर्व की पद संज्ञा होती है। परन्तु अस् अजादि प्रत्यय है, इसलिए यचि भम् से पूर्व की भसंज्ञा भी प्राप्त होती है। परन्तु यचि भम् सूत्र अष्टाध्यायी क्रम में बाद का है अतः यहाँ विश्वपा की भसंज्ञा होगी, पद संज्ञा नहीं क्योंकि कडाराः कर्मधारये सूत्र तक एक शब्द की एक ही संज्ञा का विधान है। सामान्य सूत्र से हो रही अतिव्याप्ति का बाद वाले सूत्र द्वारा नियमन किया जाता है।

ऊपर के तीन सूत्रों से यह निष्कर्ष निकला कि सर्वनामस्थान प्रत्ययों को छोड़कर यदि हलादि प्रत्यय परे हों तो पूर्व की पदसंज्ञा होती है और यदि यकारादि और अजादि प्रत्यय परे हों तो पूर्व की भसंज्ञा होती है। इस प्रकार विश्वपा + अस् में विश्वपा की भसंज्ञा हुई जिसका फल अगले सूत्र में बताया गया है।

आतो धातोः 6.1.140

आकारन्तो यो धातु, तदन्तस्य भसंज्ञकांगस्य लोपः। अलोऽन्त्यस्य। विश्वपः। विश्वपा, विश्वपाभ्यामित्यादि। एवं शंखध्मादयः। धातोः किम् हाहान्। हाहा। हाहै। हाहाः। हाहौः। हाहाम्। हाहे।

व्याख्याः आकारान्त धातु यदि भसंज्ञक अंग के अन्त में हो तो उसका लोप हो जाता है। अलोऽन्त्यस्य परिभाषा के बल पर अन्तिम वर्ण का लोप होता है। विश्वपा + अस् में विश्वपा भसंज्ञक है और इसके अन्त में आकारन्त धातु पा है, अतः पा के आकार का लोप होगा। इस प्रकार स्थिति बनेगी विश्वप् + अस् और रूप बनेगा विश्वपः। अन्य अजादि प्रत्यय परे रहते इसी प्रकार आकार का लोप होकर रूप बनेंगे। जैसे विश्वपा + टा = विश्वपा + आ = विश्वप् + आ = विश्वपा। इसी प्रकार चतुर्थी एकवचन का रूप बनेगा विश्वपे। हलादि विभक्ति परे रहने पर विश्वपा की भसंज्ञा नहीं होगी अपितु पद संज्ञा होगी। अतः आ का का लोप नहीं होगा जैसे विश्वपा + भ्याम् = विश्वपाभ्याम्।

विश्वपा शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	ब्हुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
सम्बोधन	हे विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पंचमी	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु

इसी प्रकार शंखध्मा। (शंख को बजाने वाला) आदि शब्दों के रूप बनेंगे। जहाँ अन्त में आकारान्त धातु नहीं है वहाँ आ का लोप नहीं होगा। वहाँ सामान्य सन्धि नियमों के अनुसार सन्धि होकर रूप बनेंगे। जैसे हाहा + शस् = हाहा + अस्। प्रथमयो पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घादेश होकर हाहाः रूप बनेगा। तृतीया एकवचन में हाहा : रूप बनेगा। तृतीया एकवचन में हाहा+आ। यहाँ अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ सन्धि होकर हाहा रूप बनेगा। चतुर्थी एकवचन में हाहा + ङे = हाहा + ए। यहाँ वृद्धिरेचि से वृद्धि एकादेश होकर हाहै रूप बनेगा। पचंमी और षष्ठी एकवचन में हाहा + अस्। अकः सवर्णे दीर्घः से हाहाः रूप बनेगा। षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में हाहा + ओस् वृद्धि एकादेश होकर हाहौः रूप बनेगा। सप्तमी एकवचन में हाहा + इ। गुण एकादेश होकर हाहे रूप बनेगा। इलादि प्रत्यय सीधे जुड़ जाएंगे। जैसे हाहाभ्याम्, हाहाभिः, हाहासु।

अथ इकारान्त शब्द

हरि शब्द (विष्णु)

प्रथमा एकवचन में हरि शब्द से सु प्रत्यय् होगा–

हरि + सु। यहाँ उकार की इत्संज्ञा और स् को रुत्व विसर्ग होकर हरिः रूप बनेगा। प्रथमा द्विवचन में हरि + औ। इस स्थिति में प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होकर हरी रूप बनेगा। प्रथमा का बहुवचन जस् परे होने पर हरि + जस्।

जसि च 7.3.109

ह्रस्वान्तस्यांगस्य गुणः। हरयः

व्याख्याः जस् परे होने पर ह्रस्वान्त अंग को गुण हो। जैसे हरि + अस्। यहाँ ज् की इत्संज्ञा होकर अस् शेष रहा। जस् परे रहते हरि के इकार को गुण एकादेश हुआ और स्थिति हुई हरे + अस्। एचोऽयवायावः से ए को अय् आदेश होकर हरयःरूप बना।

ह्रस्वस्य गुणः 7.3.108

सम्बुद्धौ। हे हरे हरिम्, हरी, हरीन्।

व्याख्याः सम्बुद्धि परे होने पर ह्रस्वान्त अंग को गुण होगा। अलोऽन्त्यस्य से अन्तिम को गुण होगा और सम्बोधन के एक वचन में हरि शब्द से हे हरे रूप बनेगा– हरि + स्। ह्रस्वस्य गुणः से हरे + स्।

एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः से स् का लोप होकर हरे रूप बनेगा। द्वितीया के एकवचन में हरि + अम् यह स्थिति होगी। अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश होकर हरिम् रूप बनेगा। द्वितीया के द्विवचन में पूर्ववत् हरी रूप बनेगा। द्वितीया के बहुवचन में हरि + शस् यह स्थिति होगी। लशक्वतद्धिते से शकार की इत्संज्ञा। हरि + अस्। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हरीस्। तस्माच्छसो नः पुंसि से स् को न् और हरीन् रूप सिद्ध हुआ।

शेषो घ्यसखि 1.4.7

शेष इति स्पष्टार्थम्। अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जम् घिसंज्ञम्।

व्याख्याः नदीसंज्ञक भिन्न ह्रस्व इकारान्त, उकारान्त अंग को घिसंज्ञा होती है, सखि शब्द को छोड़कर। नदी संज्ञा आगे बताई जाएगी। यहाँ शेष शब्द का प्रयोग स्पष्टता के लिए है। घिसंज्ञा का फल आगे बताया गया है।

आङो नाऽस्त्रियाम्7.3.120

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम्। 'आङ्' इति टा संज्ञा प्राचाम्। हरिणा, हरिभ्याम्, हरिभिः।

व्याख्याः स्त्रीलिंग भिन्न घिसंज्ञक अंग से परे टा को ना आदेश हो जाता है। सूत्र में टा न कह कर आङ् का प्रयोग किया गया है। पाणिनि ने आङ् संज्ञा का विधान नहीं किया है। सम्भवतः प्राचीन आचार्यों ने टा के स्थान पर आङ् संज्ञा का प्रयोग किया था। संस्कारवश अथवा पूर्व परम्परा का सम्मान करते हुए पाणिनि ने भी यहाँ आङ् का ही प्रयोग किया है। हरि + टा इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से टा के स्थान पर ना ओदश हुआ और स्थिति हरि + ना। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि से न् को ण् होकर हरिणा रूप बना। तृतीया द्विवचन में हरिभ्याम्, और तृतीया बहुवचन में हरिभिः रूप बनेंगे।

घेर्ङिति 7.3.111

घिसंज्ञकस्य ङिति गुणः। हरये।

व्याख्याः ङित् प्रत्यय परे होने पर घिसंज्ञक अंग को गुण आदेश हो जाता है। अलोऽन्त्यस्य से अन्तिम को गुण होगा। ङित् प्रत्यय चार है– ङे, ङसि, ङस् तथा ङि।

चतुर्थी एकवचन में हरि + ङे यह स्थिति हुई। लशक्वतद्धिते से ङ् की इत्संज्ञा और तस्य लोपः से उसका लोप। हरि + ए। यहाँ घिसंज्ञक अंग से परे ङित् प्रत्यय है। इसलिए हरि के इ को प्रकृतसूत्र से गुण होगा और स्थिति होगी– हरे + ए। एचोऽयवायावः से अय् आदेश होकर हरये रूप बनेगा। चतुर्थी के द्विवचन में हरिभ्याम् और बहुवचन में हरिभ्यः रूप बनेंगे।

ङसिङसोश्च 6.1.110

एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः। हरेः। हर्योः। हरीणाम्।

व्याख्याः एङ् से परे ङसि और ङस् का अत् परे होने पर पूर्वरूप एकादेश हो जाता है। पंचमी एकवचन में हरि + ङसि यह स्थिति हुई। ङसि का अस् शेष रहा और स्थिति हुई हरि + अस्। घेर्ङिति से हरि के इकार को

गुण होने पर स्थिति हुई हरे + अस्। अब यहाँ प्रकृत सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होगा और हरेस् यह स्थिति होगी। स् को रुत्व विसर्ग होकर हरेः रूप बनेगा।

षष्ठी के एकवचन में भी यही रूप बनेगा। षष्ठी के द्विवचन में हरि + ओस् यह स्थिति हुई। इको यणचि से इ का य् ओदश होकर हर्योस् यह स्थिति हुई। स् को रुत्व विसर्ग होकर हर्योः रूप बना। षष्ठी के बहुवचन में हरि + आम् स्थिति हुई। ह्रस्वनद्यापो नुट् से आम् को नुट् का आगम और स्थिति हुई हरि + नाम्। नामि से हरि के इकार को दीर्घ हुआ। हरी + नाम् यह स्थिति हुई। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि से न् को ण् हुआ और हरीणाम् रूप बना।

अच्च घेः 7.3.119

इदुदभ्यामुत्तरस्य ङेरौत् घेरत्। हरौ, ह्रर्योः, हरिषु। एवं कव्यादयः।

व्याख्याः ह्रस्व इकार और उकार से परे ङि को औत् आदेश होता है और घिसंज्ञक अंग को अत् आदेश होता है।

सप्तमी एकवचन में हरि + ङि = हरि + इ यह स्थिति हुई। प्रकृत सूत्र से ङि के इ को औ आदेश होगा और घिसंज्ञक हरि के इकार को अकार आदेश होगा। इस प्रकार हर + औ यह स्थिति हुई। वद्धिरेचि से वृद्धि होकर हरौ रूप बनेगा। सप्तमी के द्विवचन में हर्योः और बहुवचन में हरिषु रूप बनेंगे।

हरि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
सम्बोधन	हे हरे	हे हरी	हे हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पंचमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु

अन्य इकारान्त पुँल्लिंगशब्दों के रूप भी हरि के समान होंगे।

सखि

सखि शब्द के रूप भिन्न प्रकार से होंगे। ध्यान रहे सखि शब्द की घिसंज्ञा नहीं होती है।

अनङ् सौ 7.1.93

सख्युरंगस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ।

व्याख्याः सम्बुद्धिभिन्न सु परे होने पर सखि अंग को अनङ् आदेश हो जाता है। अनङ् का केवल अन् शेष रहता है। अङ् की इत्संज्ञा है। अनेकाल् शित् सर्वस्य से अनङ् आदेश सम्पूर्ण सखि अंग को प्राप्त था परन्तु ङित्

होने के कारण ङिच्च सूत्र से यह आदेश अन्तिम अर्थात् इकार के स्थान पर होगा।

सखि + सु। इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से अनङ् आदेश हुआ और स्थिति हुई सखन् + सु = सखन् + स्।

अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा 1.1.65

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः।

व्याख्याः अन्तिम अल् से पूर्व वाले वर्ण की उपधा संज्ञा होती है। जैसे सखन् शब्द में अन्तिम अल् न् है। न् से पूर्व वाला वर्ण अ है अतः अ की उपधा संज्ञा हुई।

सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ 6.4.8

नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

व्याख्याः नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ आदेश हो जाता है सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान परे रहते। सखन् + स्। यहाँ सखन् अंग नकारान्त है और उससे परे सम्बुद्धि भिन्न स् परे है। अतः सखन् की उपधा अ को दीर्घ होगा और स्थिति होगी – सखान् + स्।

अपृक्त एकाल् प्रत्ययः 1.2.41

एकाल् प्रत्ययो यः, सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः जो प्रत्यय केवल एक अल् के रूप का हो उसकी अपृक्त संज्ञा होती है। सखान् + स् में स् प्रत्यय एक अल् रूप है। अतः स् की अपृक्त संज्ञा है।

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्। 6.1.68

हलन्तात् परम्, दीर्घौ यौ ङ्यापौ। तदन्ताच्च परं, 'सुतिसि' इत्येतद् अपृक्तं हल् लुप्यते।

व्याख्याः हलन्त, दीर्घ आबन्त तथा दीर्घ ङ्यन्त से परे सु, ति, सि प्रत्ययों के अपृक्त हल् का लोप हो जाता है। सु के उकार की इत्संज्ञा और उसका लोप होकर स् शेष बचता है जो अपृक्त हल् है। ति और सि तिङ् प्रत्यय हैं जिनका किसी विशेष स्थिति में इकार का लोप हो जाता है और त् और स् शेष बचते हैं। तिङ् प्रत्ययों का विस्तार से विवरण तिङन्त प्रकरण में किया जाएगा। आबन्त तथा ङ्यन्त का विवरण स्त्री प्रत्यय प्रकरण में किया गया है। सखान् + स् इस स्थिति में हल् से परे सु के अपृक्त हल् स् का लोप होगा और स्थिति होगी सखान्

नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः। सखा।

व्याख्याः प्रातिपदिक संज्ञक पद के अन्तिम नकार का लोप हो जाता है। पद संज्ञा दो स्थानों पर बताई गई है– (1) सुप्तिङन्तं पदम् तथा (2) स्वादिष्वसर्वनामस्थाने। जिस के साथ सुप् या तिङ् प्रत्यय लगे हों उसकी पद संज्ञा होती है। हलादि सु आदि प्रत्ययों से पूर्व की भी पदसंज्ञा होती। इस स्थिति में शब्द की पद संज्ञा तो होती है परन्तु वह प्रातिपदिकसंज्ञक पद होता है क्योंकि यह प्रत्यय लगने से पूर्व की स्थिति है। जहाँ सुप् का लोप हो जाए वहाँ भी प्रातिपदिक रूप ही शेष रहता है। परन्तु इसकी भी पद संज्ञा होती है क्योंकि प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् से प्रत्यय का लक्षण विद्यमान रहता है। अतः सुप् के लोप होने पर भी शब्द सुबन्त ही माना जाता है जिसके कारण उसकी पदसंज्ञा बनी रहती है परन्तु वह प्रातिपदिक संज्ञक पद कहा

जाता है। सखान् प्रातिपदिक संज्ञक पद है क्योंकि यहाँ सु का लोप हो गया है। अतः प्रकृत सूत्र से नकार का लोप हो जाएगा और सखा रूप सिद्ध होगा। प्रथमा के द्विवचन में सखा + औ यह स्थिति हुई।

सख्युरसम्बुद्धौ 7.1.92

सख्युरंगात्परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्।

व्याख्याः सखि अंग से पर सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान प्रत्यय णित् के समान होते हैं। णितवत् से तात्पर्य है कि णित् न होने पर भी उन प्रत्ययों को णित् समझा जाये अर्थात् उनको णित् मानकर कार्य किया जाए।

अचो ञ्णिति 7.2.115

अजन्तांगस्य वृद्धिः, ञिति णिति परे। सखायौ, सखायः।

व्याख्याः ञित् और णित् प्रत्यय परे रहने पर अजन्त अंग को वृद्धि आदेश हो जाता है। अलोऽन्त्यस्य से वृद्धि आदेश अन्तिम अच् को होगा। सखि + औ। यहा औ सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय है। अतः सख्युरसम्बुद्धौ सूत्र से णिद्वद् हुआ। णिद्वद् प्रत्यय परे होने परे प्रकृत सूत्र से सखि के इकार को वृद्धि होगी। अतः स्थिति होगी– सखै + औ। एचोऽयवायावः से ऐ को आय् आदेश होकर सखायौ रूप बनेगा। प्रथमा बहुवचन में सखि + जस् यह स्थिति होगी। जस् के जकार की इत्संज्ञा और लोप होकर स्थिति होगी सखि + जस्। जस् के जकार की इत्संज्ञा और लोप होकर स्थिति होगी सखि + अस्। जस् प्रत्यय सर्वनामस्थान है अतः णिदवद् होगा। अचो **ञ्णि**ति से सखि के इकार को ऐ वृद्धि होकर एचोऽयवायावः से आय् होगा। स् को रुत्व विसर्ग होकर सखायः रूप बनेगा। सम्बोधन एकवचन में ह्रस्वस्य गुणः होकर सखे+स् यह स्थिति होगी। एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः से स् का लोप होकर सखे रूप बनेगा। द्वितीया के एक वचन में स्थिति होगी– सखि + अम्। अम् सर्वनामस्थान है। अतः सख्युरसम्बुद्धौ से णित्वद् होगा। अचो **ञ्णि**ति से सखि के इकार को वृद्धि होकर सखै + अम् यह स्थिति होगी। एचोऽयवायावः से आय् होकर सखाय रूप बनेगा। इसी प्रकार द्वितीया के द्विवचन में सखायौ रूप बनेगा। द्वितीया के बहुवचन में हरीन् के समान सखीन् रूप बनेगा क्योंकि शस् सर्वनामस्थान संज्ञक नहीं है अतः णिदवद नहीं होगा। तृतीया के एक वचन में स्थिति होगी सखि + टा = सखि + आ। इको यणचि से सखि के इकार को य् आदेश होकर सख्या रूप बनेगा। ध्यान रहे सखि की घि संज्ञा का निषेध है, इसलिए यहाँ आङो नाऽस्त्रियाम् सूत्र नहीं लगेगा और टा को ना आदेश नहीं होगा जैसा हरिणा में हुआ था। तृतीया के द्विवचन और बहुवचन में हरि के रूपों के समान सखिभ्याम् और सखिभिः रूप बनेंगे। चतुर्थी के एक वचन में सखि+ङे = सखि + ए यह स्थिति होगी। इको यणचि से इ को य् होकर सख्ये रूप बनेगा। द्विवचन और बहुवचन में सखिभ्याम् और सखिभ्यः रूप बनेंगे। पचंमी के एक वचन में स्थिति होगी– सखि + ङसि = सखि + अस्। इको यणचि से इ को य् आदेश होकर स्थिति होगी सख्य् + अस्। इस स्थिति में अग्रिम सूत्र लगेगा।

ख्यत्यात् परस्य 6.1.112

खिति शब्दाम्यां खी ती शब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः। सख्युः।

व्याख्याः खि, ति और खी, ती शब्दों का यण् आदेश करने के पश्चात् ङसि और ङस् के अकार के स्थान पर उकार आदेश हो। जैसे सख्य् + अस् इस स्थिति में खि के इकार का यण् आदेश किया गया है। इससे परे ङसि का अस् परे है। इसलिए अस् के अकार को उकार आदेश हो जाएगा और स्थिति बनेगी– सख्य् + उस्। सकार को रुत्व विसर्ग होकर रूप बनेगा सख्युः। षष्ठी के एकवचन में भी इसी प्रकार सख्युः रूप बनेगा। दीर्घ खी और ती के उदाहरण हैं सखी + ङस् = सख्युः।

षष्ठी के द्विवचन में सखि + ओस् इस स्थिति में यण् आदेश कर के सख्योः रूप बनेगा। षष्ठी के बहुवचन में सखि + आम्, इस स्थिति में ह्रस्वनद्यापो नुट् से आम् को नुट् आगम और नामि से सखि के इकार का दीर्घ करके सखीनाम् रूप बनेगा। सप्तमी के एकवचन में सखि + ङि, यह स्थिति होने पर

औत् 7.3.168

इदुतोः परस्य ङेरौत्। सख्यौ। शेषं हरिवत्।

व्याख्याः ह्रस्व इकार, उकार से परे ङि को औत आदेश होता है। सखि + ङि इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से ङि को औ आदेश होकर स्थिति हुई। सखि + औ। यण् आदेश होकर सख्यौ रूप बना। सप्तमी के द्विवचन में सख्योः और बहुवचन में सखिषु रूप बनेंगे।

सखि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
सम्बोधन	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
प्ंचमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु

पतिः समास एव 1.4.8

घिसंज्ञः। पत्या। पत्ये। पत्युः। पत्युः। पत्यौ। शेषं हरिवत्। समासे तु भूपतये। कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः।

व्याख्याः पति शब्द की समास में ही घिसंज्ञा हो। अर्थात् पति जब स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होता है तो पति की घिसंज्ञा नहीं होती। इसलिए पति शब्द के रूप पहले पाँच रूपों को छोड़कर सखि के समान होंगे। पहले पाँच रूप हरि के समान होंगे।

पति शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
सम्बोधन	हे पते	हे "	हे "
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः

चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पंचमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्यः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु

समास में पति शब्द की घि संज्ञा होगी और हरि के समान रूप बनेंगे। जैसे भूपतिना, भूपतये, भूपतेः, भूपतौ।

अथ दीर्घ ईकारान्त शब्द

पपी (सूर्य)

पपी के प्रथम एकवचन में पपी + सु यह स्थिति हुई। उकार की इत्संज्ञा और तस्य लोपः से लोप होकर पपी+स् यह स्थिति हुई। स् का ससजुषो रुः से र् और खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग होकर पपीः रूप बना। प्रथमा द्विवचन में पपी + औ यह स्थिति हुई। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त हुआ परन्तु दीर्घाज्जसि च सूत्र से उसका बाध हुआ। इको यणचि से ई को य् आदेश हुआ। रूप बना पप्यौ।

प्रथमा बहुवचन में पपी + जस् यह स्थिति हुई। दीर्घाज्जसि च से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश का बाध हुआ। यण् आदेश होकर पप्यः रूप बना।

सम्बोधन के एक वचन में भी पपीः रूप बना क्योंकि ह्रस्वान्त न होने के कारण सु का लोप नहीं हुआ। द्वितीया के एकवचन में अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश होकर पपीम् रूप बना।

द्वितीया के द्विवचन में पप्यौ और बहुवचन में प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश और तस्माच्छसो नः पुंसि से स् को न् होकर पपीन् रूप बना। तृतीया एकवचन में यण् आदेश होकर पप्या रूप बना। द्विवचन में पपीभ्याम् और बहुवचन में पपीभिः रूप बने। चतुर्थी एक वचन में पपीभ्यः रूप बना। पचंमी और षष्ठी एक वचन में यण् होकर पप्यः रूप बना। षष्ठी के द्विवचन में पप्योः। षष्ठी के बहुवचन में पप्याम् रूप बना। यहाँ ह्रस्व न होने के कारण नुट् का आगम नहीं होगा। सप्तमी के एक वचन में पपी+ङि= पपी + इ इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ होकर पपी रूप बना। सप्तमी के बहुवचन में आदेश प्रत्यययोः से स् को ष् होकर पपीषु रूप बना।

पपी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा, सम्बोधन	पपीः	पप्यौ	पप्यः
द्वितीया	पपीम्	''	पपीन्
तृतीया	पप्या	पपीभ्याम्	पपीभिः
चतुर्थी	पप्ये	''	पपीभ्यः
पंचमी	पप्यः	''	''
षष्ठी	''	पप्योः	पप्याम्
सप्तमी	पपी	''	पपीषु

प्रधी

प्रधी (प्रकर्ष बुद्धि वाला) शब्द ङ्यन्त नहीं है। इसके सु का लोप नहीं होगा। अतः प्रथमा एकवचन में प्रधीः रूप बनेगा। प्रथमा द्विवचन में प्रधी + औ यह स्थिति होगी।

अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ 6.4.77

श्नुप्रत्ययान्तस्य, इवर्णोवर्णान्तस्य धातोः, भ्रू इत्यस्य च, अंगस्य इयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते–

व्याख्याः श्नुप्रत्ययान्त शब्दरूप को, इवर्णान्त और उवर्णान्त धातु से बने रूप को तथा भ्रू से बने अंग को क्रमशः इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं। इयङ्, उवङ्, का ङ् इत्संज्ञक है। ङिच्च सूत्र से अन्तिम इवर्ण को इय् आदेश तथा उवर्ण को उव् आदेश होता है। इवर्ण, उवर्ण कहने से ह्रस्व तथा दीर्घ का ग्रहण होता है। प्रधी + औ में प्रधी शब्द ध्यै धातु से बना हैं अतः यहाँ ई धातु का अवयव है। इससे परे अजादि प्रत्यय औ परे हैं। अतः प्रकृत सूत्र से ई को इयङ् आदेश प्राप्त होता है।

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य 6.4.82

इवर्णः तदन्तो यो धातुः तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्याद् अजादौ प्रत्यये। प्रध्यौ। प्रध्यम्। प्रध्यः। प्रध्यि। शेषं पपीवत, एवं ग्रामणीः। ङौ तु ग्रामण्याम्। अनेकाचः किम्–नी नियौ नियः। अमि, शसि च परत्वादियङ्–नियम् नियः। ङेराम् नियाम्।

व्याख्याः इवर्णान्त धातु के इवर्ण से यदि धातु का अवयव संयोग पूर्व में न हो तो इवर्णन्त धातु से बने अनेकाच् अङ्ग को यण् आदेश हो जाता है अजादि प्रत्यय परे रहते। यह सूत्र पूर्व सूत्र को सीमित करता है। पूर्व सूत्र में इवर्णान्त तथा उवर्णान्त धातु से बने अङग को इयङ, उवङ् करता था। परन्तु यहाँ नियमन किया गया है कि यदि इवर्णान्त धातु के इवर्ण से पूर्व यदि संयोग न हो और उस धातु से बना अङ्ग अनेकाच् हो तो इवर्ण को इयङ आदेश न होकर यण् आदेश होता है। प्रधी + औ में प्रधी अङ्ग अनेकाच् है। यह इवर्णान्त धातु धी से बना हुआ है। ई से पूर्व धातु का अवयव संयोग पूर्व में नहीं है, इसलिए ई को यण् आदेश होगा। प्रध्य् + औ यह स्थिति होगी और रूप बनेगा प्रध्यौ। सभी अजादि विभक्ति परे होने पर यण् आदेश होगा। शेष रूप पपी के समान होंगे।

प्रधी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा,	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
सम्बोधन	हे प्रधीः	''	''
द्वितीया	प्रध्यम्	''	''
तृतीया	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
चतुर्थी	प्रध्ये	''	प्रधीभ्यः
पंचमी	प्रध्यः	''	''
षष्ठी	''	प्रध्योः	प्रध्याम्
सप्तमी	प्रध्यि	''	प्रधीषु

ग्रामणी शब्द के रूप भी प्रधी के समान होंगे। केवल ङि को आम् आदेश होगा क्योंकि यहाँ नी धातु है और ङेराम् नद्याम्नीभ्यः से यहाँ ङि को आम् प्राप्त है। इसलिए सप्तमी के एकवचन में ग्रामण्याम् रूप बनेगा। नी (ले जाने वाला) से अजादि विभक्ति परे होने पर अचिश्नु..... से इयङ् आदेश होगा क्योंकि यह अनेकाच् अङ्ग नहीं है। इसलिए प्रथमा में नीः, नियौ, नियः रूप बनेंगे। अम् परे होने पर अमि पूर्वः को बाध कर पर होने के कारण इयङ् आदेश होकर नियम् रूप बनेगा। शस् परे होने पर भी प्रथमयोः पूर्वसवर्णः को बाध कर इयङ् आदेश होगा। इसलिए द्वितीया के बहुवचन में नियः रूप बनेगा। सप्तमी के एकवचन में ङेराम् नद्याम्नीभ्यः से ङि को आम् आदेश होगा और इयङ् आदेश होकर नियाम् रूप बनेगा।

जब धातु के पूर्व में संयोग हो तो अनेकाच् को भी यण् आदेश न होकर इयङ् आदेश होगा। जैसे सुश्रियौ, यवक्रियौ आदि।

गतिश्च 1.4.60

प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः। गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते – शुद्धधियौ।

व्याख्याः क्रिया के योग में प्र आदि की गति संज्ञा भी होती है। उपसर्गा क्रिया योगे से प्र आदि की क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा बताई गई है। इस सूत्र के द्वारा प्र आदि की उपसर्ग के साथ साथ गति संज्ञा भी बताई गई है।

यदि गति और कारक पूर्वपद में न हों तो अनेकाच् होने पर भी यण् आदेश नहीं होता है। एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य से अनेकाच् और असंयोगपूर्व धातु से बने अङ्ग को यण् आदेश बताया गया था। परन्तु यह तभी होता है जब धातु के पूर्व पद में गति संज्ञक या कारक शब्द हो। शुद्धधी शब्द में शुद्ध शब्द न तो गति संज्ञक है और न ही कारक, अतः यहाँ यण् न होकर इयङ् आदेश होगा। जैसे शुद्धधियौ।

न भूसुधियोः 6.4.85

एतयोरचि सुपि यण् न। सुधियौ, सुधियः इत्यादि। सुखमिच्छतीति सुखीः, सुतमिच्छतीति सुतीः। सुख्यौ, सुत्यौ। सुख्युः, सुत्युः। शेषं प्रधीवत्। शम्भुर्हरिवत्। एवं भान्वादयः।

व्याख्याः भू और सुधी शब्द को अजादी सुप् परे रहते यण् आदेश नहीं होता है। सुधी (अच्छी बुद्धि वाला)। शब्द अनेकाच् है और इवर्ण से पूर्व धातु का अवयव संयोग पूर्व में नहीं है। अतः यहाँ एरनेकाचो.... से यण् आदेश प्राप्त था। परन्तु प्रकृत सूत्र से यण् का निषेध किया गया है। यण् का निषेध होने पर इयङ् आदेश होगा। जैसे सुधी + औ = सुधियौ। इसी प्रकार सभी अजादि विभक्ति परे होने पर इयङ् आदेश होकर रूप बनेंगे। सुखी शब्द का अर्थ है सुखमिच्छति इति सुखी अर्थात् सुख चाहने वाला। अजादि विभक्ति परे होने पर एरनेकाचो.. से यण् आदेश होगा। सुखी + औ। यहाँ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः का बाध दीर्घाज्जसि च सूत्र से होगा। एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य से यण् आदेश होगा। सुखी और सुती शब्द क्यच् प्रत्ययान्त हैं। अतः इनमें धातुत्व है। अतः सुख्यौ और सुत्यौ रूप बनेंगे। पचंमी और षष्ठी के एवचन में में ख्यत्यात्परस्य सूत्र से ङसि और ङस् के अकार को उकार आदेश होकर सुख्युः और सुत्युः रूप बनेंगे। शेष रूप प्रधी के समान होंगे। ईकारान्त शब्द समाप्त

अथ ह्रस्व उकारान्त शब्द

ह्रस्व उकारान्त शब्दों की रचना प्रक्रिया वही है जो ह्रस्व इकारान्त शब्दों की। शेषो घ्यसखि से उकारान्त शब्दों की घि संज्ञा होगी। घिसंज्ञक अङ्ग होने के कारण आङो नाऽस्त्रियाम् से टा को ना आदेश होगा। घेर्ङिति सूत्र से ङित् प्रत्यय परे होने पर उ को गुण ओ तथा एचोऽयवायावः सूत्र से ओ को अव् आदेश होगा। ङसिङसोश्च सूत्र से ङसि और ङस् के अ को पूर्वरूप एकादेश होगा। अच्च घेः सूत्र से ङि को औ आदेश होगा और घिसंज्ञक अङ्ग को अत् आदेश होगा। उकारान्त शम्भु शब्द के रूप नीचे दिए जा रहे हैं–

शम्भु शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा,	शम्भुः	शम्भू	शम्भवः
सम्बोधन	हे शम्भो	''	''
द्वितीया	शम्भुम्	''	शम्भून्
तृतीया	शम्भुना	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः
चतुर्थी	शम्भवे	''	शम्भुभ्यः
पंचमी	शम्भोः	''	''
षष्ठी	''	शम्भ्वोः	शम्भूनाम्
सप्तमी	शम्भौ	''	शम्भुषु

भानु आदि उकारान्त शब्दों के रूप शम्भु के समान होंगे।

क्रोष्टु (गीदड़) शब्द

तृज्वत् क्रोष्टुः 7.1.95

असम्बुद्धौ सर्वनामस्थानपरे क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने 'क्रोष्टृ' शब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः।

व्याख्याः सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे होने पर क्रोष्टु शब्द को तृज्वत् भाव हो जाता है। तृच् प्रत्यय का तृ शेष रहता है। यह ऋकारान्त है। अतः तृज्वद्भाव होने पर **क्रोष्टृ** शब्द बनेगा। तृ को ष्टुना ष्टुः से ट होगा।

ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः 7.3.110

ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च। इति प्राप्ते।

व्याख्याः ऋकारान्त अङ्ग को ङि और सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहते गुण हो। क्रोष्टृ+सु = क्रोष्टृ + स् इस स्थिति में सु सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहते ऋकार को गुण प्राप्त होता है।

ऋदुशनस् पुरुदंसोऽनेहसां च 7.1.94

ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्याद् असम्बुद्धौ सौ।

व्याख्याः ऋकारान्त, उशनस्, पुरुदंसस् और अनेहस् शब्दों को सम्बुद्धि भिन्न सु परे होने पर अनङ् आदेश हो जाता है। ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः सूत्र सामान्य है। परन्तु प्रकृत सूत्र विशेष है अतः क्रोष्टृ सु में यह विशेष सूत्र लगेगा।

सु परे होने पर क्रोष्टृ को अनङ् आदेश प्राप्त होगा क्योंकि सु सम्बुद्धि भिन्न है। ङिच्च सूत्र से अनङ् अन्तिम के स्थान पर होगा। इसलिए स्थिति होगी–

क्रोष्टन् + स्

अप्–तृन्–तृच्स्वसृ–नप्तृ–नेष्टृ–त्वष्टृ–क्षतृ–होतृ–पोतृ–प्रशास्तृणाम् 6.4.11

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः, क्रोष्टारम्, क्रोष्टून्।

व्याख्या: अप्, तृन् प्रत्ययान्त, तृच् प्रत्ययान्त, स्वसृ (बहिन), नप्तृ (नाती), नेष्टृ (दान देने वाला), त्वष्टृ (त्वष्टा नाम का असुर), क्षतृ (सारथि), होतृ (होता), पोतृ (पवित्र करने वाला), प्रशास्तृ (प्रशासन करने वाला) शब्दों की उपधा को दीर्घ हो जाता है सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान परे रहते।

क्रोष्टान् + स्। हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् से अपृक्त स् का लोप हुआ। तब स्थिति हुई क्रोष्टान्। न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य से न् का लोप हुआ और क्रोष्टा रूप सिद्ध हुआ। यहाँ नान्त अङ्ग होने के कारण सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ से भी उपधा को दीर्घ हो सकता था। परन्तु विशेष और पर सूत्र होने के कारण अप्तृन्.... से ही उपधा को दीर्घ होगा।

प्रथमा के द्विवचन में क्रोष्टृ + औ यह स्थिति हुई। यहाँ ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः से ऋ को गुण आदेश होगा। ऋ को गुण आदेश होकर उरण् रपरः से अ से परे र् भी होगा। इस प्रकार स्थिति होगी क्रोष्टर् + औ। अप्तृन् .... से उपधा को दीर्घ होकर क्रोष्टा रौ रूप बनेगा। प्रथमा के बहुवचन में इसी प्रकार क्रोष्टारः रूप बनेगा। द्वितीया के एकवचन में क्रोष्टारम् रूप बनेगा। द्वितीया के बहुवचन में शम्भून् के समान क्रोष्टून् रूप बनेगा क्योंकि तृज्वद्भाव केवल सर्वनामस्थान प्रत्यय परे होने पर ही बताया गया है।

विभाषा तृतीयादिष्वचि 7.1.91

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा। क्रोष्ट्रे।

व्याख्या: तृतीया से लेकर सप्तमी के बहुवचन तक जो अजादि प्रत्यय हैं उनके परे रहने पर क्रोष्टु को विकल्प से तृज्वद्भाव होता है। तृज्वद्भाव पक्ष में तृतीया के एक वचन में क्रोष्टृ + टा = क्रोष्टृ + आ यह स्थिति होगी। इको यणचि से ऋ को र् ओदश होकर स्थिति होगी क्रोष्ट् र् + आ। रूप बनेगा क्रोष्ट्रा। चतुर्थी के एकवचन में इसी प्रकार रूप बनेगा क्रोष्ट्रे।

ऋत उत् 6.1.111

ऋतो ङसिङसोरति 'उत्' एकादेशः। रपरः।

व्याख्या: ऋकारान्त अङ्ग से परे जब ङसि और ङस् का अकार हो तो दोनों के स्थान पर ह्रस्व उकार एकादेश हो जाता है। पचंमी के एकवचन में क्रोष्टृ + अस् यह स्थिति होगी। प्रकृत सूत्र से ऋ और अ के स्थान पर उ एकदेश होगा। उरण् रपरः से उ रेफ परक होगा। अतः स्थिति हुई क्रोष्टुर्स्।

रात् सस्य 8.2.24

रेफात् संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नाऽन्यस्य। रस्य विसर्गः – क्रोष्टुः। क्रोष्ट्रोः।

व्याख्या: रेफ से परे संयोगान्त सकार का ही लोप होता है अन्य वर्ण का नहीं। संयोगान्तस्य लोपः सूत्र के अनुसार संयोग के अन्त में आने वाले सभी वर्णों का लोप प्राप्त होता है। परन्तु इस सूत्र द्वारा यह नियमन किया गया है कि रेफ से परे केवल संयोगान्त स् का ही लोप होता है, अन्त संयोगान्त वर्ण का नहीं। अतः प्रकृत सूत्र से क्रोष्टुर् + स् के स् का लोप होगा और स्थिति होगी क्रोष्टुर। र् को खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग होकर क्रोष्टुः रूप बनेगा। षष्ठी के द्विवचन में स्थिति होगी क्रोष्टृ + ओस्। यहाँ यण् आदेश होकर क्रोष्ट्रोः रूप बनेगा।

षष्ठी बहुवचन में स्थिति होगी—

क्रोष्टु + आम्। यहाँ विभाषा तृतीयादिष्वचि से क्रोष्टु को विकल्प से तृज्वद्भाव प्राप्त होता है। परन्तु उसका अग्रिम वार्तिक द्वारा निषेध हो जाता है।

वा. नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन।

क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि। पक्षे हलादौ च शम्भुवत्।

व्याख्याः जब नुम् का आगम प्राप्त हो, अच् परे होने पर रेफ आदेश प्राप्त हो तथा तज्वद्भाव प्राप्त हो, इनसे पूर्व नुट् का आगम यदि प्राप्त हो रहा हो तो इनकी अपेक्षा नुट् का आगम अष्टाध्यी क्रम में पूर्व विप्रतिषेध द्वारा होता है। नुमादि पर सूत्रों द्वारा होते हैं। विप्रतिषेधे परं कार्यम् इस परिभाषा के बल से बाद वाले सूत्र द्वारा निर्दिष्ट कार्य की प्रधानता रहती है। वार्तिक ने नुमादि कार्यों की अपेक्षा नुट् को प्रधानता दी है। पूर्वविप्रतिषेध का अर्थ है पूर्व सूत्र की प्रधानता।

क्रोष्टु + आम् इस स्थिति में तृज्वद्भाव से पहले आम् को नुट् का आगम होगा और स्थिति होगी— क्रोष्टु + नाम्। नाम् परे होने पर प्रत्यय अजादि नहीं रहा। अतः तज्वद्भाव का अवकाश ही नहीं रहा। अतः तृज्वद्भाव का अवकाश हीं नही रहा। नामि से दीर्घ होकर क्रोष्टूनाम् रूप बनेगा। सप्तमी के एकवचन में स्थिति होगी क्रोष्टृ + ङि = क्रोष्टृ + इ। यहाँ ऋतो ङि—सर्वनामस्थानयोः से ऋ का गुण होकर स्थिति होगी क्रोष्टर् इ। इस प्रकार क्रोष्टरि रूप बनेगा। तृतीयादि अजादि विभक्ति परे होने पर तृज्वद्भाव विकल्प से होता है अतः क्रोष्टु शब्द ही रहेगा और शम्भु की तरह रूप बनेंगे। हलादि विभक्ति परे होने पर शम्भु की तरह रूप बनेंगे।

क्रोष्टु शब्द के रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा,	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
सम्बोधन	हे क्रोष्टो	''	''
द्वितीया	क्रोष्टारम्	''	क्रोष्टून्
तृतीया	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
चतुर्थी	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	''	क्रोष्टभ्यः
प्ंचमी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	''	''
षष्ठी	क्रोष्टुः ''	क्रोष्ट्रोः	क्रोष्टूनाम्
सप्तमी	क्रोष्टरि	क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु

ह्रस्व ऊकारान्त शब्द समाप्त

दीर्घ ऊकारान्त शब्द

संस्कृत में दीर्घ ऊकारान्त पुँल्लिङग शब्द बहुत कम हैं। जो भी शब्द हें उनमें से अधिकांश समस्तपद हैं जो या तो धातु के साथ या स्त्रीवाची शब्दों के साथ समास होकर बने हैं। दीर्घ ऊकारान्त पुँलिङ्ग शब्दों के रूप दीर्घ इकारान्त पुँलिङ्ग के समान ही चलते हैं।

खलपू शब्द

खलपू शब्द का अर्थ है– खलं पुनाति इति खलपूः अर्थात् खलिहान को साफ करने वाला। प्रथमा के एक वचन मे खलपू + स् इस स्थिति में स् को रुत्व विसर्ग होकर खलपूः रूप बनेगा। द्विवचन में खलपू + औ, इस स्थिति में अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ सूत्र से ऊकार को उवङ् आदेश प्राप्त है क्योंकि खलपू शब्द धातु के संयोग से बना है। परन्तु इसका अग्रिम सूत्र से बोध होगा।

ओः सुपि 6.4.83

धात्वयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णः, तदन्तो यो धातुः तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्याद् अचि सुपि। खलप्वौ, खलप्वः। एवं सुलू आदयः।

स्वभूः, स्वभुवौ, स्वभुवः वर्षाभूः।

व्याख्याः जिस उवर्ण के पूर्व में धातु का अवयव संयोग न हो वह उवर्ण जिस धातु के अन्त में हो उस धातु से बना हुआ अनेकाच् अङ्ग हो उस अङ्ग के उवर्ण को अजादि सुप् परे होने पर यण् आदेश होता है। खलपू + औ, यहाँ उवर्ण से पूर्व धातु का अवयव संयोग नहीं है, यह उवर्णान्त धातु से बना हुआ अनेकाच् अङ्ग है। अङ्ग से परे अजादि सुप् है। अतः प्रकृत सूत्र से उवर्ण को यण् आदेश व् होगा और रूप बनेगा खलप्वौ। प्रथमा के बहुवचन में खलप्वः रूप बनेगा। यह सूत्र अमि पूर्वः को बाध करेगा अतः द्वितीया के एकवचन में खलप्वम् रूप बनेगा। द्वितीया के बहुवचन में पूर्वसवर्ण दीर्घ का बाध होकर यण् आदेश होगा और खलप्वः बनेगा। आगे सभी रूप इसी प्रकार बनेंगे। अजादि विभक्ति परे होने पर यण् ओदश होगा और हलादि विभक्ति परे होने पर सीधे विभक्तियाँ जुड़ जाएंगी। इसी प्रकार सुलू (अच्छी तरह से काटने वाला आदि शब्दों के रूप बनेंगे।

ओकारान्त शब्द

गो शब्द

प्रथमा के एकवचन में गो + स् यह स्थिति हुई।

गोतो णित् 7.1.90

ओकारात् विहितं सर्वनामस्थानम णिद्वत्। गौः, गावौ, गावः

व्याख्याः ओकारान्त शब्द से परे सर्वनामस्थान प्रत्यय णिद्वत् होते हैं।

गो+स् में स् सर्वनामस्थान संज्ञक है। अतः इसका णिद्वद्भाव हुआ। णिद्वत् होने के कारण अचो ञिणति से गो के ओकार को वृद्धि औकार होगी। अतः गौ+स् यह स्थिति हुई। स् को रुत्व विसर्ग होकर गौः रूप बना। **गावौः** प्रथमा के द्विवचन में गो + औ यह स्थिति हुई। औ को गोतो णित् से णिदवदभाव हुआ। अचो ञिणति से गो के ओकार को वृद्धि होकर स्थिति हुई– गौ + औ। एचोऽयवायावः से और का आव् आदेश

हुआ और गावौ रूप बना। **गावः** गो + जस् = गो + अस् = गौ + अस् = गाव् + अस् = गावस् = गावः

ओतोऽम्शसोः 6.1.93

ओतोऽम्शसोरचि आकार एकादेश गाम्, गावौ, गाः। गावा। गवे। गोः 2। इत्यादि।

व्याख्याः ओकारान्त शब्द से परे अम् और शस् होने पर आकार एकादेश हो जाता है। **गाम्**–गो + अम् इस स्थिति में ओतोऽम्शसोः सूत्र से आकार एकादेश होकर गाम् रूप बना। **गा**–द्वितीया के बहुवचन में गो + शस् = गो + अस् यह स्थिति हुई। ओतोऽम्शसोः सूत्र से आकार एकादेश होकर गास् यह स्थिति हुई। स् को रुत्व विसर्ग होकर गाः रूप बना।

गवा–तृतीया के एकवचन में गो + टा = गो + आ। यह स्थिति हुई। एचोऽयवायावः सूत्र से ओ को अव् आदेश होकर गवा रूप बना।

इसी प्रकार चतुर्थी एकवचन में गवे रूप बनेगा।

गो–पंचमी और षष्ठी के एकवचन में गो+अस् इस स्थिति में ङसिङसोश्च सूत्र से अकार का पूर्वरूप होकर गोस्

यह स्थिति होगी। स् को रुत्व विसर्ग होकर गोः रूप बनेगा। **गवोः**–षष्ठी के द्विवचन में अव् आदेश होकर गवोः रूप बनेगा। **गवाम्**–षष्ठी के बहुवचन में गो + आम् यह स्थिति होने पर ओ को अव् होकर गवाम् रूप बनेगा। ह्रस्व न होने के कारण नुट् का आगम नहीं होगा।

हलादि विभक्ति परे होने पर कोई विशेष कार्य नहीं होते। सप्तमी के बहुवचन में आदेशप्रत्यययोः से स् को ष् होकर गोषु रूप बनेगा।

गो शब्द के रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा,	गौ;	गावौ	गावः
सम्बोधन	हे गौः	''	''
द्वितीया	गाम्	''	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	''	गोभ्यः
प्ंचमी	गोः	''	''
षष्ठी	''	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	''	गोषु

ऐकारान्त शब्द

रै (धन)

राः प्रथमा के एक वचन में रै + स् यह स्थिति हुई।

रायो हलि 7.2.85

अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ। राः, रायौ, रायः राभ्याम्। ग्लौः, ग्लावौ, ग्लावः ग्लौभ्याम् इत्यादि।

व्याख्याः हलादि विभक्ति परे होने पर रै शब्द को आकार आदेश होता है। अलोऽन्त्यस्य से आ आदेश अन्तिम के स्थान पर होगा।

रै + शस् इस स्थिति में रायो हलि से ऐ का आ आदेश होकर रा + स् यह स्थिति हुई। स् को रुत्व विसर्ग होकर राः रूप बना।

रायौ रै + औ इस स्थिति में एचोऽयवायावः सूत्र से ऐ को आय् आदेश होकर रायौ रूप बना। इसी प्रकार सभी अजादि विभक्ति परे होने पर ऐ को आय् आदेश होगा। हलादि विभक्ति परे हाने पर रै को रा ओदश होगा।

रै शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा,	रा;	रायौ	रायः
सम्बोधन	हे राः	''	''
द्वितीया	रायम्	''	''
तृतीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राय	''	राभ्यः
प्ंचमी	रायः	''	''
षष्ठी	''	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	''	रासु

सप्तमी बहुवचन में सु से पूर्व इण् न हाने के कारण स् को ष् नहीं हुआ है।

2.3.2 अजन्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

आकारान्त शब्द

रमा शब्द

रमा शब्द का अर्थ लक्ष्मी है। यह टाप् (टाप्) प्रत्ययान्त है अतः ङ्याप्प्रातिपदिकात् से सु आदि प्रत्यय की उत्पत्ति होगी। प्रथमा के एक वचन में रमा + सु = रमा + स्। यह स्थिति हुई। हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् से स् का लोप होकर रमा रूप बना।

औङ आपः 7.1.18

आबन्तादङ्गात् परस्यौङः शी स्यात्। 'औङ' इति औकारविभक्तेः संज्ञा। रमे, रमाः।

व्याख्याः आबन्त अङ्ग से परे औङ् को शी आदेश हो जाता है। औङ् यह औ और औट् दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

रमे– रमाशब्द से प्रथमा के द्विवचन में 'रमा + औ' इस दशा में आबन्त अङ्ग रमा से पर औङ्–'औ' को 'शि' आदेश हुआ। शकार की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः। 'शी' में स्थानिवदभाव से प्रत्ययत्व लाकर प्रत्यय का आदि शकार बनेगा। 'रमा+ ई' यहाँ अवर्ण 'आकार' से अच् 'ई' परे होने पर पूर्व और पर दोनों के स्थान में 'आद् गुणः से गुण 'एकार' एकादेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

रमा– बहुवचन में 'रमा + अस्' इस दशा में 'अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ होकर सकार को रु और रेफ को विसर्ग हुए।

यद्यपि यहाँ पूर्वसवर्णदीर्घ भी प्राप्त है तथापि 'दीर्घाज्जसि च' से उसका निषेध हो जाता है।

सम्बुद्धौ च 7.3.106

आप् एकारः स्यात् सम्बुद्धौ। एङ् ह्रस्वात्– इति सम्बुद्धिलोपः। हे रमे, हे रमे, हे रमाः। रमाम्, रमे, रमाः।

व्याख्याः सम्बुद्धि परे रहते आबन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है।

हे रमे–संबोधन एकवचन में 'हे रमा+स्' इस दशा में प्रकृत सूत्र से आबन्त अङ्ग रमा से सम्बुद्धि परे होने के कारण अलोऽन्त्यपरिभाषा के बल से अन्त्य आकार को एकार हो गया। तब 'हे रमे + स्' इस स्थिति में एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः' सूत्र से सम्बुद्धि के सकार का लोप होने से 'हे रमे' रूप सिद्ध हुआ।

हे रमे, हे रमाः ये संबोधन के द्विवचन और बहुवचन के रूप हैं। प्रथमा के समान ही सिद्ध होंगे। **रमाम्**–द्वितीया के एकवचन में 'रमा + अम्' इस अवस्था में 'अमि पूर्वः' से अम् के अकार का पूर्वरूप होने से रूप बना। द्विवचन और बहुवचन में 'रमे और रमाः' रूप प्रथमा के समान ही हैं।

रमाः 'रमा + शस्' इस दशा में शकार की इत्संज्ञा और लोप होने पर 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' सूत्र से पूर्व आकार और पर अकार दोनों के स्थान में पूर्व आकार का सवर्ण दीर्घ आकार एकादेश हुआ। तब सकार के स्थान में रु और उसके रकार के स्थान में विसर्ग होने पर रूप सिद्ध हुआ।

ध्यान रहे यहाँ शस् के स् को पुँलिङ्ग के समान न् नहीं हुआ है क्योंकि तस्माच्छसो न पुंसि सूत्र पुँल्लिङ्ग में ही लागू होता है।

आङि चापः 7.3.105

आङि ओसि चाप एकारः। रमया, रमाभ्याम्, रमाभिः।

व्याख्याः आङ् और ओस् परे होने पर आबन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है आङ्, टा के लिए प्राचीन संज्ञा है जिसे पाणिनि ने टा के साथ साथ ग्रहण किया है।

रमया–तृतीया के एकवचन में 'रमा + आ' इस दशा में आङ् 'टा' परे रहने से आबन्त अङ्ग 'रमा' के अन्त्य आकार को एकार हुआ। तब एचोऽयवायावः:' सूत्र से एकार को 'अय्' आदेश होकर 'रमया' रूप बना।

रमाभ्याम्–'द्विवचन का रूप है। कोई कार्य नहीं होता।

रमाभि–बहुवचन। यहाँ अदन्त अङ्ग न होने के कारण 'भिस्' को 'ऐस्' नहीं हुआ।

याडापः 6.1.94

आपो ङितो याट्। वृद्धिः। रमायै, रमाभ्याम्, रमाभ्यः, रमायाः

व्याख्याः आबन्त से परे ङित् प्रत्ययों को याट् का आगम होता है। ङे, ङसि, ङस् और ङि ये ङित् प्रत्यय हैं। टित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ से याट् का आगम प्रत्यय के आदि में होगा।

रमायै–चतुर्थी के एकवचन में 'रमा+ए' इस अवस्था में आबन्त अङ्ग 'रमा' से परे ङित् प्रत्यय 'ङे' को 'याट्' आगम हुआ। तब 'रमा + या ए' इस दशा में 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि हुई। इस प्रकार रूप बना 'रमायै'।

द्विवचन
–रमाभ्याम्। बहुवचन–रमाभ्यः।

रमायाः पचंमी और षष्ठी के एकवचन में 'रमा+अस' इस अवस्था में प्रकृत सूत्र से याट् आगम और सवर्णदीर्घ होकर रूप बना। रमाभ्याम्। बहुवचन–रमाभ्यः।

रमयोः–षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में 'रमा+ओस्' इस दशा में आङि चापः' सूत्र से आकार को एकार और एकार को 'अय्' आदेश तथा सकार को रु और रेफ को विसर्ग होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

रमाणाम् : षष्ठी के बहुवचन में 'रमा + आम्' इस दशा में आबन्त होने से ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् आगम तथा अट्कुप्वाङ्–' से नकार को णकार हुआ।

रमायाम् सप्तमी के एकवचन में 'रमा + ङि' इस दशा में ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' सूत्र से 'ङि' को 'आम्' आदेश हुआ और उसमें स्थानिवद्भाव से ङित्व लाकर याडापः' से 'याट्' आगम। अन्त में सवर्ण दीर्घ हुआ।

बहुवचन में रमासु।

रमा शब्द के रूप

प्र.	रमा,	रमे,	रमाः	।	च.	रमायै,	रमाभ्याम्,	रमाभ्यः।
सं.	हे रमे,	हे रमे,	हे रमाः	।	पं.	रमायाः,	''	'' ।
द्वि.	रमाम्	रमे	रमाः	।	ष.	''	रमयोः,	रमाणाम्।
तृ	रमया,	रमाभ्याम्,	रमाभिः	।	स.	रमायाम्,	''	रमासु।

इसी प्रकार सभी आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप बनेंगे।

सर्वनाम शब्द

सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च 7.3.118

आबन्तात् सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यात्, आपश्च ह्रस्वः। सर्वस्यै। सर्वस्याः। सर्वासाम्। सर्वस्याम्। शेषं रमावत्। एवं विश्वादय आबन्ताः।

व्याख्याः आबन्त सर्वनाम से परे ङित् प्रत्ययों को स्याट् का आगम होता है और आबन्त अङ्ग को ह्रस्व आदेश होता है। स्याट् आगम भी याट् के समन टित् होने के कारण आदि में होगा।

सर्वस्यै–'सर्वा + ङे ' इस अवस्था में पूर्व सूत्र से याट् प्राप्त है, उसको बाधकर सर्वनाम होने के कारण इस सूत्र से स्याट् आगम और आकार को ह्रस्व हो गया। 'सर्वस्या + ए' इस दशा में वृद्धि हाकर 'सर्वस्यै' रूप सिद्ध हुआ। **सर्वस्याः**–पचंमी और षष्ठी के एकवचन में 'सर्वा + अस्' यहाँ स्याट् आगम और आकार को ह्रस्व तथा सवर्णदीर्घ, रुत्व, विसर्ग हुए। **सर्वासाम्** : षष्ठी के एकवचन में 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' से सुट् आगम होकर रूप सिद्ध हुआ।

सर्वस्याम् : ङि में 'सर्वा + ङि' इस दशा में 'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम् आदेश और प्रकृत सूत्र से स्याट् आगम और आकार को ह्रस्व होकर रूप बना।

इस प्रकार अन्य आकारान्त स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम शब्दों के रूप बनेंगे। जैसे विश्वा से विश्वस्यै, विश्वस्याः। विश्वस्याम्।

विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ 1.1.28

सर्वनामता वा। उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै। तीयस्येति वा सर्वनामसंज्ञा–द्वितीयस्यै। एवं तृतीया। 'अम्बार्थ–' इति ह्रस्वः– हे अम्ब, हे अक्क, हे अल्ल। जरा जरसौ इत्यादि। पक्षे हलादौ च रमावत् गोपा विश्वपावत्। मतीः। मत्या।
व्याख्याः दिशावाची शब्दों की बहुव्रीहि समास में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। 'दिङ् नामान्यन्तराले' सूत्र जो समास होते हैं वे दिक् समास कहलाते हैं। इन समासों में दो दिशावाची शब्दों का समास बीच के अन्तराल का बोध कराने के लिए होता है और अन्य पद प्रधान होने के कारण बहुव्रीहि समास होता है। जैसे उत्तर–पूर्व का अन्तराल उत्तरपूर्वा। उत्तरपूर्वा की विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होगी अतः ङित् प्रत्यय परे रहते दो–दो रूप बनेंगे जैसे उत्तरपूर्वस्यै और उत्तरपूर्वायै।

तीयस्येतिः 'तीयस्य ङित्सु वा' से तीयप्रत्ययांत (द्वितीय–तृतीय) शब्दों की ङित् प्रत्यय परे होने पर में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है।

द्वितीयस्यैः द्वितीया (दूसरी) शब्द से चतुर्थी के एकवचन ङे ङित् प्रत्यय होने से सर्वनाम संज्ञा विकल्प से हुई। तब स्याट् आगम और ह्रस्व होकर रूप बना। अभावपक्ष में 'द्वितीयायै'। ङित् प्रत्ययों में ही विकल्प विधान होने से आम् में एक ही रूप होगा।

एवमिति : इसी प्रकार तृतीया (तीसरी) शब्द के भी रूप बनेंगे।

अम्बार्थ इति–अम्बा, अक्का, अल्ला (माता), इन तीनों शब्दों को अम्बार्थ–माता के वाचक–होने से सम्बुद्धि में 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' सूत्र से ह्रस्व होकर 'हे अम्ब हे अक्क हे अल्ल' रूप बनते हैं। शेष 'रमा' शब्द के समान बनेंगे।

ह्रस्व इकारान्त शब्द

ङिति ह्रस्वश्च 1.4.28 इयुङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ, ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै , मतये। मत्याः। मतेः2।

व्याख्याः जो शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग हों, ह्रस्व या दीर्घ इवर्णान्त या उवर्णान्त हों तथा उनमें इयङ् की प्राप्ति हो, उनकी ङित् प्रत्यय परे होने पर विकल्प से नदी संज्ञा होती है परन्तु स्त्री शब्द की नदी संज्ञा नहीं होती।

'यू स्त्र्याख्यौ नदी' सूत्र से दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की नदी संज्ञा बताई गई थी। प्रकृत सूत्र के द्वारा ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की भी ङित् प्रत्यय परे होने पर विकल्प से नदी संज्ञा बताई गई है। नदी संज्ञा न होने पर शेषो घ्यसखि सूत्र से घि संज्ञा होगी। जैसे–

मत्यै : चतुर्थी के एकवचन में 'मति + ए' इस दशा में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिङ्ग मति शब्द से परे ङित् प्रत्यय ङे होने से वैकल्पिक नदीसंज्ञा हुई। नदी संज्ञा होने पर 'आण्नद्याः' सूत्र से ङित् प्रत्यय 'ए' को आट् आगम और 'आटश्च' से वृद्धि तथा इकार को यण् होने से रूप सिद्ध हुआ।

मतये –नदी संज्ञा के अभाव पक्ष में घिसंज्ञा होगी और तब 'घेर्ङिति' सूत्र से घिसंज्ञानिमित्तक गुण होने पर एकार को 'अय्' आदेश हुआ।

मत्याः–पचंमी और षष्ठी के एकवचन में 'मति + अस्' इस अवस्था में नदी संज्ञा, आट् आगम् वृद्धि, यण्, रुत्व और विसर्ग कार्य होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

मतेः–नदीसंज्ञा के अभावपक्ष में घिसंज्ञा, गुण और 'ङसिङसोश्च' से अकार को पूर्वरूप तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर रूप बना।

इदुद्भ्याम् 7.3.107

नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम्। मत्याम्, मतौ। शेषं हरिवत्। एवं बुद्ध्यादयः।

व्याख्याः नदीसंज्ञक ह्रस्व इकार और उकार से पर 'ङि' को 'आम्' आदेश हो। **मत्याम्** :–'मति + ङि' इस दशा में प्रकृत सूत्र से 'ङि' को 'आम्' आदेश होने पर इकार को यण् होकर रूप सिद्ध हुआ।

यहाँ यद्यपि 'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' से ङि को 'आम्' हो सकता था, तथापि 'ओत्' सूत्र से बाध होने के कारण वह प्राप्त नहीं था। अतः इस सूत्र के द्वारा विधान किया गया है।

मतौ–नदी संज्ञा के अभाव में 'घि' संज्ञा होने से 'अच्च घेः' सूत्र से 'ङि्' को 'औ' और इकार को अकार आदेश हुआ। तब 'मत+औ' इस दशा में वृद्धि होकर रूप बना।

शेष रूप हरि के समान होंगे। द्वितीया के बहुवचन में मतीः रूप बनेगा क्योंकि यहाँ शस् के स् को न आदेश नहीं होगा।

मति शब्द के रूप

प्र.	मतिः,	मती,	मतयः	।	च.	मत्यै—मतये, मतिभ्याम्,		मतिभ्यः।
सं.	हे मते,	हे मती,	हे मतयः	।	पं.	मत्याः—मतेः,	ʻʻ	ʻʻ ।
द्वि.	मतिम्,	मती,	मतीः	।	ष.	ʻʻ ʻʻ	मत्योः	मतीनाम्।
तृ.	मत्या,	मतिभ्याम्,	मतिभिः	।	स.	मत्याम्—मतौ	ʻʻ	मतिषु।

अन्य ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिङ्गशब्दों के रूप भी इसी प्रकार बनेंगे।

त्रि शब्द

त्रि—चतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ 7.2.99

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ।

व्याख्याः त्रि और चतुर् शब्द को स्त्रीलिङ में क्रमशः तिसृ और चतसृ आदेश हो जाते हैं।

अचि र ऋतः 7.2.100

तिसृचतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि। गुणदीर्घोत्वानामपवादः। तिस्रः। तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसभ्यः।

व्याख्याः तिसृ और चतसृ शब्द के ऋकार को अच् परे होने पर र् आदेश हो जाता है। त्रि को तिसृ आदेश होने पर और जस् का अस् जोड़ने पर तिसृ+अस् यह स्थिति हुई। ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः से गुण आदेश हुआ और रूप बना तिस्रः। ध्यान रहे, यह रूप इको यणचि से यण् आदेश करने पर बन सकता था परन्तु प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से यण् का

बाध था। तृतीया के बहुवचन में तिसृभिः और चतुर्थी, पचंमी के बहुवचन में तिसभ्यः रूप बनेंगे।

षष्ठी के बहुवचन में तिसृ+आम् यह स्थिति होने पर ह्रस्वनद्यापो नुट् से नुट् का आगम होने पर स्थिति हुई तिसृ + नाम्। यहाँ नामि से ऋ को दीर्घ प्राप्त हुआ। परन्तु अग्रिम सूत्र से उसका बाध हुआ।

न तिसृचतसृ 6.4.4

एतयोर्नामि दीर्घो न। तिसृणाम्। तिसृषु द्वे, द्वे। द्वाभ्याम, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः। गौरी, गौर्यौ, गौर्यः। हे गौरि। गौर्यै इत्यादि। एवं नद्यादयः। लक्ष्मीः शेषं गौरीवत्। एवं तरीतन्त्रयादयः। स्त्री। हे स्त्रि।

व्याख्याः नाम् पर होने पर तिसृ चतसृ को दीर्घ नहीं होता है। अतः ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् वार्तिक से न् को ण् होकर तिसृणाम् रूप बना।

सप्तमी के बहुवचन में आदेशप्रत्यययोः से स् को ष् होकर तिसृषु रूप बना।

इसी प्रकार चतसृ शब्द के भी रूप बनेंगे प्र चतस्रः, द्वि. चतस्रः, तृ. चतसृभिः, च. चतसृभ्यः, पं. चतसृभ्यः,

ष. चतसृणाम्, स. चतसृषु। **द्वे इतिः**—द्वि शब्द के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में 'द्वि + औ' इस स्थिति

में 'त्यदादीनामः' सूत्र से विभक्ति पर होने पर होने के कारण इकार को अकार आदेश हुआ तब 'द्व + औ' इस दशा में अकारान्त बन जाने के कारण स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टा् प्रत्यय हुआ। 'टाप्' का टकार और पकार इत्संज्ञक होने से लुप्त हो जाता है। तब 'द्व आ औ' इस स्थिति में सवर्णदीर्घ और 'औङ आपः' से 'औ' को शी ओदश और गुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

द्वाभ्याम्ः–'भ्याम्' में त्यदाद्यत्व होने पर अकारान्त हो जाने से टाप् सवर्णदीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ।

द्वयोः–ओस् में त्यदाद्यत्व, टाप्, सवर्णदीर्घ, आकार को 'आङि चापः' से एकार, अय् आदेश और सकार को रुत्व विसर्ग होकर रूप सिद्ध हुआ। ह्रस्व इकारान्त शब्द समाप्त

दीर्घ ईकारान्त शब्द

गौरीः गौरी (पार्वती) शब्द के प्रथमा के एकवचन में 'गौरी + स्' इस अवस्था में ङ्यन्त होने से अपृक्त सकार का हल्ङ्याब्भ्यो–' से लोप हो गया। अतः विसर्ग रहित रूप बना।

गौर्यौ– औ में पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त होता है उसका 'दीर्घाज्जसि च' सूत्र से निषेध हो जाता है। तब यण् आदेश होने पर रूप की सिद्धि हो जाती है।

गौर्यः जस् में भी पूर्ववत् यण् होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

हे गौरि–सम्बुद्धि में नित्यस्त्रीलिङ्ग होने के कारण नदीसंज्ञक होने से 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' से ह्रस्व और तब 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' से सम्बुद्धि के सकार का लोप होकर रूप बनता है।

गौर्यै–चतुर्थी के एकवचन में 'गौरी + ए' इस दशा में नदीसंज्ञक होने से 'आण्नद्याः' से आट् आगम और 'आटश्च' से वृद्धि होने पर 'गौरी ऐ' इस स्थिति में यण् होकर 'गौर्यै' रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार नदी आदि दीर्घ ईकारान्त शब्दों के रूप बनेंगे।

लक्ष्मी शब्द ङ्यन्त नहीं है। यह 'लक्षेर्मुट् च' सूत्र से लक्ष् शब्द से मुट् प्रत्यय लग कर और ई लग कर रूप बना है। अतः यहाँ सु का लोप नहीं होगा और प्रथमा के एकवचन में लक्ष्मीः रूप बनेगा।

स्त्री शब्द

स्त्री– 'स्त्री स्' इस दशा में ङ्यन्त से परे होने से अपृक्त सकार का लोप होकर यह रूप सिद्ध हुआ। **हे स्त्रि**–यह रूप सम्बुद्धि में नदीसंज्ञक होने से 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' से ह्रस्व होने पर, ह्रस्वान्त अङ्ग हो जाने से, उस से परे सम्बुद्धि के सकार का 'एङ्ह्रस्वात्–' सूत्र से लोप होकर बनता है।

स्त्रियाः 6.4.79

अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे। स्त्रियौ, स्त्रियः।

व्याख्याः स्त्री शब्द को 'इयङ्' ओदश हो अजादि प्रत्यय परे रहते। 'इयङ्' का अङ् इत्संज्ञक है। 'इय्' शेष रहता है। ङित् होने से अन्त्य 'ई' कार को इयङ् आदेश होता है।

स्त्रियौ–प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में 'स्त्री + औ' इस अवस्था में अजादि प्रत्यय 'औ' परे होने से 'स्त्री' शब्द के ईकार को इयङ् आदेश होकर 'स्त्रियौ' रूप सिद्ध हुआ।

स्त्रियः प्रथमा के बहुवचन में 'स्त्री + अस्' इस अवस्था में पूर्ववत् इयङ् आदेश और सकार को रु और रेफ को विसर्ग होने से उक्त रूप बना।

वाऽम्–शसोः 6.4.80

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात्। स्त्रियम्, स्त्रीम्। स्त्रियः, स्त्रीः। स्त्रियं स्त्रिये। परत्वान्नुट्–स्त्रीणाम्। स्त्रीषु। श्रीः। श्रियौ। श्रियः।

व्याख्याः अम् और शस् परे रहते स्त्री शब्द को इयङ् विकल्प से हो।

स्त्रियम्–द्वितीया के एकवचन में अम् में 'स्त्री+अम्' इस दशा में प्रकृत सूत्र से इयङ् आदेश होकर यह रूप सिद्ध हुआ।

स्त्रीम्–इयङ् के अभावपक्ष में 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप होकर रूप बना।

स्त्रियः–द्वितीया के बहुवचन में शस् परे होने पर जब इयङ् हुआ, तब स्त्रियः बना और जब इयङ् नहीं हुआ तब पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर 'स्त्रीः' यह रूप बना।

स्त्रिया–तृतीया के एकवचन में 'स्त्री + आ' इस अवस्था में स्त्रिया' सूत्र से इयङ् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ। **स्त्रियै** तृतीया के एकवचन में 'स्त्री + ए' इस दशा में नदी संज्ञक होने से 'आण् नद्याः' से आट् आगम और 'आटश्च' से वृद्धि होने के अनन्तर 'स्त्री + ऐ' इस स्थिति के बन जाने पर स्त्रियाः' से इयङ् आदेश होकर सिद्ध हुआ। स्त्री शब्द का निषेध होने से 'ङिति ह्रस्वश्च' से ङित् प्रत्ययों से नदी संज्ञा का विकल्प नहीं हुआ। **स्त्रियाः** यह रूप पचंमी और षष्ठी के एकवचन में सिद्ध होता है। 'स्त्री + अस्' यहाँ भी नदीसंज्ञक होने से पूर्ववत् आट्, वृद्धि और इयङ् आदेश हुए।

परत्वादिति–षष्ठी के बहुवचन में 'स्त्री + आम्' इस दशा में इयङ् और नुट् दोनों की प्राप्ति होने पर, पर होने के कारण 'नुट्' आगम हुआ। 'तब अट्कुप्वा' सूत्र से नकार को णकार होकर 'स्त्रीणाम्' रूप सिद्ध हुआ। **स्त्रीषु** सप्तमी के बहुवचन का रूप है।

प्र.	स्त्री,	स्त्रियौ,	स्त्रियः	।	च.	स्त्रियै,	स्त्रीभ्याम्,	स्त्रीभ्यः।
सं.	हे स्त्रि,	हे ''	हे ''	।	पं.	स्त्रियाः,	''	'' ।
द्वि.	स्त्रियम्, स्त्रीम्	''	स्त्रियः स्त्रीः	।	ष.	''	स्त्रियोः,	स्त्रीणाम्।
तृ	स्त्रिया,	स्त्रीभ्याम्,	स्त्रीभिः	।	स.	स्त्रियाम,	''	स्त्रीषु।

अभावपक्ष में केवल एक कार्य इयङ् आदेश होकर 'श्रियि' रूप बनता है।

ह्रस्व उकारान्त शब्द

धेनु शब्द के रूप मति के समान बनेंगे।

प्र.	धेनुः	धेनू,	धेनवः	।	च.	धेन्वै,	धेनुभ्याम्,	धेनुभ्यः।
सं.	हे धेनो,	हे ''	हे ''	।	पं.	धेन्वाः,	''	'' ।
द्वि.	धेनुम्,	''	धेनूः	।	ष.	धेनोः	धेन्वोः,	धेनूनाम्।
तृ	धेन्वा,	धेनुभ्याम्,	धेनुभिः	।	स.	धेन्वाम,	''	धेनुषु।

ध्यातव्य

1- अजन्त स्त्रीलिङ्ग में प्रायः आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, शब्द अधिक प्रयुक्त होते हैं, उकारान्त, ऊकारान्त, ऋकारान्त, ऐकारान्त और औकारान्त शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। परन्तु बहुत कम।

2- अजन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों में प्रत्यय वहीं लगते हैं जो अजन्त पुँल्लिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। द्वितीया के बहुवचन में शस् के स् को नकार नहीं होता और सर्वत्र विसर्ग होता है।

3- आकारान्त शब्दों के रूपों में निम्नलिखित सूत्र लगते हैं–

(क) प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन के औ को शीङ (अर्थात्), ई आदेश हो जाता है। और प्रातिपदिक आ से मिलकर ए हो जाता है। सूत्र औङ आपः।

(ख) सम्बुद्धौ च से आबन्त के आकार को एकार होता है और सम्बुद्धि का लोप होता है। आङि चापः से टा और ओस् परे होने पर भी आकार को एकार आदेश होता है।

(ग) ङित् प्रत्ययों को याडापः से याट् का आगम होता है। सर्वनाम आकारान्त शब्दों से परे सर्वनाम्नः स्याट् ह्रस्वश्च सूत्र से स्याट् का आगम होता है।

4- ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त शब्दों की ङित् परे होने पर विकल्प से नदी संज्ञा ङिति ह्रस्वश्च सूत्र से होती है। अतः ङित् प्रत्ययों से दो–दो रूप बनते हैं।

5- त्रि–चतुर् को क्रमशः तिसृचतसृ आदेश होते हैं– त्रिचतुरो स्त्रियां तिसृचतसृ ऋ को अचि र ऋतः से र् होकर तिस्रः और चतस्रः रूप प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में बनते हैं। तिसृ चतसृ से परे षष्ठी के बहुवचन नाम् परे हाने पर दीर्घ नहीं होता है।

6- दीर्घ ईकारान्त शब्दों को प्रथमयोः पूर्वसवर्णः का बाध होकर प्रथमा और द्वितीया के अजादि प्रत्यय परे होने पर यण् आदेश होता है। द्वितीया के बहुवचन में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश ही होता है।

2.3.3 अजन्त नपुंसकलिङ्ग

"अतोऽम् [7] **7.1.24 अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम्। अमि पूर्वः–ज्ञानम्। 'एङ्ह्रस्वाद–' इति हल्लोपः–हे ज्ञान।**

व्याख्याः अदन्त नपुंसकलिङ्ग अङ्ग से पर 'सु' और 'अम्' को 'अम्' आदेश हो।

स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से 'सु' और 'अम्' को अम् इसीलिए विधान किया गया है।

ज्ञानम्–अदन्त ज्ञान शब्द के प्रथमा के एक वचन में 'सु' को 'अम्' आदेश हुआ। तब 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होने पर रूप सिद्ध हो गया।

हे ज्ञान-सम्बुद्धि में अम् आदेश और पूर्वरूप होने पर 'हे ज्ञानम्' बन जाने पर 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' से सम्बुद्धि के हल् मकार का लोप हुआ।

---

[7] . यद्यपि औट् तक सर्वनामस्थान है और सर्वनामस्थान प्रत्ययों की 'भ' संज्ञा का वर्णन किया गया है। तथापि सर्वनामस्थानसंज्ञासूत्र 'सुडनपुंसकस्य' से नपुंसकलिङ्ग के सुट् प्रत्ययों की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध होने से भसंज्ञा प्राप्त होती है। यचि भम् से भ संज्ञा प्राप्त हुई।

नपुंसकाच्च 7.1.11

क्लीबादौङः शी स्यात्। भसंज्ञायाम्।

व्याख्याः नपुंसक अङ्ग से पर औङ् को 'शी' आदेश हो। औङ् और औट् का बोधक है। ज्ञान शब्द से प्रथमा के द्विवचन में 'ज्ञान औ' इस दशा में नपुंसक अङ्ग ज्ञान से पर औङ को 'शी' आदेश हआ। 'शी' में स्थानिवद् से प्रत्ययत्व लाने पर प्रत्यय के आदि शकार का 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा होकर लोप गया। तब 'ज्ञान+ई' यह स्थिति बनी।

भसंज्ञायामिति–पूर्वोक्त स्थिति में अजादि प्रत्यय होने से पूर्व 'ज्ञान' की भसंज्ञा होने पर–

यस्येति च 6.4.148

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णायोर्लोपः। इत्यल्लोपे प्राप्ते–

व्याख्याः ईकार और तद्धित प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक अङ्ग के इवर्ण और अवर्ण का लोप हो।

यहाँ सूत्र में स्थित 'यस्येति' इस पद का 'यस्य+ईति' यह च्छेद है।

'ई' और 'अ' का समाहार अर्थ में द्वन्द्व समास करने पर 'अ इ' इस स्थिति में इकार को यण् यकार आदेश होता है, वह यकार आगे वर्तमान आकार से मिलकर 'य' शब्द बन जाता है। उससे षष्ठी विभक्ति आने पर यस्य पद बनकर अर्थ होता है 'इवर्ण और अवर्ण का'।

'ईति' यह द्वितीय पद है और 'ईति' शब्द के सप्तमी विभक्ति के एकवचन का रूप है। इसलिये अर्थ निकलता है 'ईकार परे रहते'।

'च' के द्वारा पूर्व सूत्र नस्तद्धिते से 'तद्धिते' पद का संग्रह होता है। तब 'तद्धित परे रहते' यह अर्थ प्राप्त होता है। **इत्यल्लोपे**–'ज्ञान ई' यहां भसंज्ञक अङ्ग ज्ञान के अन्त्य अकार का ईकार परे होने से लोप प्राप्त हुआ। **(वा) औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः। ज्ञाने।**

व्याख्याः औङ् के स्थान में होने वाले आदेश 'शी' परे रहते 'यस्येति च' सूत्र की प्रवृत्ति न हो अर्थात् अकार का लोप न हो।

ज्ञाने–'ज्ञान+ई' इस दशा में 'औङः–' इस वार्तिक से अकार लोप का निषेध होने पर गुण एकादेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

जश्शसोः शिः 7.1.20

क्लीबादनयोः शिः स्यात्

व्याख्याः नपुंसकलिङ्ग अङ्ग से परे जस् और शस् को 'शि' आदेश हो। नपुंसकलिङ्ग अङ्ग ज्ञान से पर 'जस्' और 'शस्' को 'शि' आदेश हुआ, शि का शकार इत्संज्ञक है। तब 'ज्ञान+ई यह स्थिति बनी।

शि सर्वनामस्थानम् 1.1.42

शि इत्येतत् उक्तसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः 'शि' यह सर्वनामस्थानसंज्ञक हो।

'ज्ञान+इ' यहाँ 'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा हुई।

नपुंसकस्य झलचः 7.1.72

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने।

व्याख्याः झलन्त और अजन्त नपुंसकलिङ्ग अङ्ग को 'नुम्' आगम हो सर्वनामस्थान परे रहते।

'नुम' का 'उम्' इत्संज्ञाक है नकार शेष रहता है।

'ज्ञान+इ' इस दशा में सर्वनामस्थान 'शि' पर है, और 'ज्ञान' अजन्त नपुंसकलिङ्ग है। अतः नुम् आगम प्राप्त हुआ। परन्तु यह आशङ्का होती है नुम् कहां हो–अङ्ग के आदि में मध्य में या अन्त में इसका निर्णय अग्रिम परिभाषा करती है।

मिदचोऽन्त्यात् परः 1.1.47

अचां मध्ये योऽन्त्यः, तस्मात् परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात्। उपधादीर्घः'ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुवंत्। एवं धन–वन–फलादयः।

व्याख्याः अचों में जो अन्त्य अच्, उससे पर और जिस समुदाय को विधान किया गया हो उसी का अन्त अवयव के रूप में मित् हो।प्रकृत में नपुसंकलिङ्ग अङ्ग को नुम् विधान है अतः उसी का अन्त अवयव 'नुम्' होगा।

'ज्ञान इ' यहाँ 'ज्ञान' इस समुदाय का अन्त अवयव अकार के आगे नुम् होगा। तब 'ज्ञानन्+इ' ऐसी स्थिति बनी। पूर्वोक्त स्थिति में **'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ'** से नान्त अङ्ग 'ज्ञानन्' की उपधा को दीर्घ होकर 'ज्ञानानि– रूप सिद्ध हुआ।

द्वितीया में प्रथमा के समान ही रूप बनेंगे, क्योंकि उक्त सारे कार्य दोनों के समान रूप से होते हैं।

शेष तृतीया आदि के रूप पुंल्लिङ्ग अकारान्त शब्द के, समान बनेंगे।

प.	ज्ञानम्, ज्ञाने,	ज्ञानानि।	च.	ज्ञानाय,	ज्ञानाभ्याम्,	ज्ञानेभ्यः।
पं.	हे ज्ञान, हे ''	हे '' ।	पं.	ज्ञानात्,	''	'' ।
द्वि.	ज्ञानम्, ''	'' ।	प.	ज्ञानस्य,	ज्ञानयोः,	ज्ञानानाम् ।
स.	ज्ञानेन, ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः।	स.	ज्ञाने,	''	ज्ञानेषु ।

इसी प्रकार अकारान्त नपुंसकलिङ्ग धन, वन, फल, मुख, नेत्र, जल, अन्न, पुष्प, वृत्त (चरित्र, समाचार, छन्द), आज्य (घी), मूल्य (कीमत) ..... चित्त, सत्य, नवनीत (मक्खन) और दैव (भाग्य) आदि शब्दों के रूप बनेंगे। ध्यान रहे कि नपुंसकलिङ्ग में सभी–अजन्त नथा हलन्त–शब्दों के रूप प्रथमा और द्वितीया में समान होते हैं और तृतीया आदि विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग के समान।

यदि प्रयोग देखकर अकारान्त शब्दों के लिङ्ग की पहचान करनी हो तो प्रथमा और द्वितीया के प्रयोगों से ही हो सकती है, तृतीया आदि के रूपों में पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग के अकारान्त शब्दों के रूपों में

कोई अन्तर नहीं होता।

अद्ड डतरादिभ्यः पंचभ्यः 7.1.125

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्ड् आदेशः स्यात्

व्याख्याः डतर आदि पांच नपुंसकलिंग अंगों से पर सु और अम् को अद्ड आदेश हो।

डतर आदि सर्वादिगण में आये हैं-**डतर, डतम, अन्य, अन्यतर और इतर।**डतर, डतम प्रत्यय हैं। अतः प्रत्ययग्रहण परिभाषा से तदन्त कतर, कतम आदि शब्द ही लिये जायेंगे। 'अन्यतर' शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं, डतरप्रत्ययान्त नहीं, इसीलिये इसका पृथक् ग्रहण किया है। **कतर-**(दो में कौन) शब्द डतरप्रत्ययान्त है। अतः इससे पर 'सु' और 'अम्' को अद्ड् आदेश हो गया। डकार की इत्संज्ञा हुई। केवल 'अद्' शेष रहा।

टेः 6.4.143

डिति भस्य टेर्लोपः। कतर्, कतरद्। कतरे। कतराणि। हे कतरत् शेषं पुंवत्।

एवं कतमत्, इतरत्, अन्यत्, अन्यतरत्। अन्यतमस्यु तु
अन्यतममित्येव।

व्याख्याः डित् परे रहते भसंज्ञक अङ्ग की टि का लोप हो।

'कतर अद्' अस दशा में भसंज्ञक अङ्ग 'कतर', की टि–रेफोत्तरवर्ती अकार'का डित् 'अद्' परे होने से लोप हो गया। तब 'वाऽवसाने– से अवसान दकार को विकल्प से चर् तकार होकर रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में दकार ही रहेगा–कतरद्।

द्विवचनों में औ को शी आदेश और 'यस्येति च' से प्राप्त अकार के औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः' से निषेध होने पर गुण एकादेश होकर कतरे रूप बना। कतराणि–जस् को शि आदेश होने पर, उसकी सर्वनामस्थान संज्ञा, उपधा दीर्घ और णत्व होकर रूप सिद्ध हुआ। हे कतरत्–सम्बुद्धि में 'अद्ड्' आदेश और टि का लोप होने पर 'हे कतरद् इस दशा में चर् विकल्प से होकर प्रथमा के समान ही रूप बनेंगे। कतरत् के तकार का लोप नहीं होता, क्योंकि 'कतर अद्' यहां अङ्ग ह्रस्वान्त नहीं, टि का लोप होने से वह हलन्त है जो ह्रस्वान्त नहीं क्योंकि इसमें अकार 'अद्' का है– अपना अकार तो लुप्त हो चुका है।

शेष रूप इसके पुंल्लिङ्ग के समान ही बनेंगे। इसी प्रकार कतम का–कतमत्, इतर का–इतरत्, अन्य का अन्यत्, अन्यतर का–अन्यतरत् रूप अद्ड् ओदश होकर बनेंगे। इन्हीं पाँच में अदड् का विधान किया गया है। अन्यतम शब्द का तो 'अन्यतमम्' ऐसा ही रूप बनेगा अर्थात् अदड् आदेश न होगा क्योंकि पूर्वोक्त पांच शब्दों में ही अद्ड् आदेश है। डतमप्रत्ययान्त भी यह नहीं, यह तो अन्यतर शब्द के समान अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है।

वा. एकतरात् प्रतिषेधो वक्तव्यः। एकतरम्।

व्याख्याः एकतर शब्द से पर 'सु' और 'अम्' को 'अद्ड्' प्राप्त था, उसका वार्तिक से निषेध हुआ। तब ज्ञान शब्द के समान

:अम्' आदेश होकर एकतरम रूप सिद्ध हुआ। इसके
रूप ज्ञान शब्द के समान ही बनते हैं।

(अकारान्त शब्द समाप्त।)

इकारान्त वारि शब्द

स्वमोर्नपुंसकात् 7.1.23

लुक् स्यात्। वारि।

व्याख्याः नपुंसकलिङ्ग शब्दों से पर 'सु' और 'अम्' का लोप हो।

ह्रस्व अकारान्त शब्दों को छोड़कर सभी अजन्त तथा हलन्त शब्दों से पर 'सु' और 'अम्' का लोप हो जाता है। वारि (जल) शब्द से पर 'सु' और 'अम्' का लोप हो जाने से वारि यही रूप सिद्ध होगा।

इकोऽचि विभक्तौ 7.1.73

इगन्तस्य नुम् अचि विभक्तौ। वारिणी। वारीणि। 'न लुमता–' इत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः–हे वारे, वारि। आङो ना–वारिणा। 'घेर्ङिति' इति गुणे प्राप्ते–

व्याख्याः इगन्त अङ्ग को नुम् आगम हो अजादि विभक्ति परे रहते। मिदचोऽन्त्यात्परः' परिभाषा से अङ्ग के अन्त्य अच् के आगे 'नुम्' होगा, वह अङ्ग का अवयव समझा जायेगा। वारिणी–वारि शब्द के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में 'वारि औ' यह स्थिति हुई। इस दशा में 'औ' को शी आदेश हुआ तब अजादि विभक्ति 'ई' परे रहते अङ्ग वारि को नुम् आगम हुआ। वह अन्त्य अच् इकार के आगे हुआ। वारिन् ई' ऐसी स्थिति हो जाने पर 'अट्कुप्वाङ्नुमव्यवायेऽपि' सूत्र से वारिणी रूप सिद्ध हो गया। वारीणी–प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में जस् और शस् को जश्शसोः शि' सूत्र से 'शि' हुआ और उसकी शि सर्वनामस्थानम् से सर्वनामस्थान संज्ञा होने पर अङ्ग को नुम् आगम हुआ। 'वारिन्+इ' इस दशा में सर्वनामस्थान परे होने से 'सर्वनामस्थाने–' सूत्र से नान्त उपधादीर्घ और अट्कुप्–' सूत्र से णत्व होकर रूप सिद्ध हुआ। न लुमतेति–'न लुमताङ्गस्य' सूत्र के अनित्य होने से पक्ष में सम्बुद्धिनिमित्त गुण होगा। इसलिये 'हे वारे' 'हे वारि' ये दो रूप सम्बुद्धि में बनेंगे।

इसकी अनित्यता का प्रमाण प्रकृत सूत्र 'इकोऽचि विभक्तौ' में 'अचि' ग्रहण है। 'अचि' ग्रहण हलादि विभक्तियों में नुम्वारण के लिये किया गया हैं परन्तु हलादि विभक्तियो में नुम् होने पर भी पदान्त होने के कारण 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से उसका लोप हो जायेगा। अतः हलादि–विभक्तियों में वारण करना व्यर्थ है। सम्बुद्धि भी हलादि विभक्ति है, वहां नुम् की आपत्ति हो सकती है और यहां 'न ङिसम्बुद्धयोः' से नकार के लोप का निषेध हो जाने से नकार श्रवण होने लगेगा। परन्तु यह आपत्ति भी ठीक नहीं, क्योंकि सम्बुद्धि का लोप 'लुक्' शब्द से हुआ है। अतः लुमता शब्द से लुप्त होने के कारण प्रत्ययलक्षण कार्य को 'न लुमताङ्गस्य' निषेध कर देगा, नुम् होगा ही नहीं। अतः सम्बुद्धि में नुम्वारण के लिए भी 'अचि' की आवश्यकता नहीं है। अतः व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'न लुमताङ्गस्य' विधि अनित्य है। जब इसकी प्रवृत्ति नहीं होगी, उस पक्ष में प्रत्ययलक्षण कार्य नुम् हो जायेगा। उसके वारण के लिये 'अचि' ग्रहण चरितार्थ है।

'वारि सु' इस अवस्था में 'सु' का लोप होने पर 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् से लुप्त–सु प्रत्यय–निमित्तक 'सम्बुद्धौ 'च' से गुण कार्य प्राप्त है। सु का लोप लुक् शब्द से विहित होने के कारण 'न लुमतांगस्य' निषेध कर देता है परन्तु यह सूत्र नित्य नहीं, अतः जब इसकी प्रवृत्ति होगी, तब लुप्तप्रत्ययनिमित्तक गुण कार्य न होकर 'वारि' रूप बनेगा और जब इसकी प्रवृत्ति नहीं होगी, तब पूर्वोक्त गुण होकर 'हे वारे' रूप बनेगा।

आङो नेति—'वारि+टा' इस अवस्था में आङा नाऽस्त्रियाम्' से 'टा' को 'ना' आदेश और अट्कुप्वाङ्—' से नकार को णकार होने से 'वारिणा' रूप सिद्ध हुआ।

घेर्ङिति इति—चतुर्थी के एकवचन में 'वारि+ए' इस अवस्था में घेर्ङिति' से गुण प्राप्त होने पर अग्रिम की प्रवृत्ति होती है।

(वा) वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन।

वारिणे। वारिणः। वारिणः। वारिणोः। 'नुमचिर—' इति नुट्— वारीणाम्। वारिणि। हलादौ हरिवत्।

व्याख्याः वृद्धि, औत्व, तृज्वद्भाव और गुण की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से (तुल्यबलविरोध होने पर पूर्व की प्रबलता से) नुम् पहले हो।

वारिणे—'वारि+ए' में गुण की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से नुम् पहले हुआ। नुम् होने पर 'वारिन्+ए' ऐसी स्थिति बनी। क्योंकि अङ्ग का अवयव ही नुम् होता है, नुम् होने पर अंग 'वारिन्' कहलायेगा, अतः अंग के अजन्त न होने से घिसंज्ञा न हुई, अतएव गुण न हुआ। तब अट्कुप्' से नकार को णकार होकर 'वारिणे' रूप सिद्ध हुआ। वृद्धि की अपेक्षा नुम् की प्रबलता का उदाहरण—प्रियसखीनि। 'प्रियः सखा यस्य, तत्कुलं प्रियसखि' यह प्रियसखि शब्द की व्युत्पत्ति है। अर्थात् जिस कुल को मित्र प्यारा हो, वह कुल 'प्रियसखि' कहलायेगा। 'प्रियसखि' शब्द से सर्वनामस्थान जस् में सख्युर—' से णिद्वद्भाव होने से 'अचो—' से अंग को वृद्धि प्राप्त होती है और नुम् भी। इस वार्तिक से नुम् पहले हुआ तो 'प्रियसखीनि' रूप बना। औत्व की अपेक्षा नुम् की प्रबलता का उदाहरण—'वारिणि' है। वारि शब्द की सप्तमी के एकवचन में 'वारि+इ' इस अवस्था में 'अच्च घेः' से 'ङि' को औत्व और 'इकोऽचि विभक्तौ' से अंग को नुम् प्राप्त होने पर 'वृद्ध्यौ—' वार्तिक से पहले 'नुम्' हुआ। अतएव 'वारिणे' रूप बना। तृज्वद्भाव की अपेक्षा नुम् की प्रबलता का उदाहरण—'प्रियक्रोष्टूनि' है। इस की भी व्युत्पत्ति 'प्रियसखि' शब्द के समान है। यहां पर जस् और शस् में तृज्वद्भाव और नुम् दोनों प्राप्त हैं। वार्तिक से नुम् पहले हुआ। **वारिणः**—पंचमी और षष्ठी के एकवचन का रूप है। यहां भी 'घेर्ङिति' से गुण की अपेक्षा 'नुम्' पूर्वविप्रतिषेध से हुआ। **वारिणोः**—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन का रूप है। यह रूप भी पूर्ववत् बनता है।

वारीणाम्—षष्ठी के बहुवचन में 'वारि+आम्' इस अवस्था में 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से आम् को नुट् और 'इकोऽचि विभक्तौ' से अङ्ग को 'नुम्' आगम प्राप्त हुआ। 'नुम्—अचिर तृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधन' वार्तिक के द्वारा पूर्वविप्रतिषेध से 'नुट्' पहले हुआ। तब 'नामि' से दीर्घ और नकार को णत्व होकर रूप सिद्ध हो गया।

यद्यपि 'नुम्' होने पर भी 'नुट्' के समान नकार ही रहता है, तथापि 'नुम्' अङ्ग का अवयव होता है, 'आम्' का नहीं, अतः 'नाम्' पर न मिलने से 'नामि' से दीर्घ नहीं हो सकता, नुम् होने से 'वारिन्' आदि अङ्ग नकारान्त बन जाता है, ह्रस्वान्त नहीं रहता। 'नुट्' आम् को होता है, अतः वह 'आम्' का अवयव बनता है, फलस्वरूप 'नाम्' भी परे मिल जाता है। और अङ्ग ह्रस्वान्त ही रह जाता है, जिससे कि अङ्ग को दीर्घ हो जाता हैं दोनों का नकार मात्र रहने पर भी यह अन्तर बना रहता है। इसलिये नुम् की अपेक्षा नुट् की प्रबलता का सफल विधान किया गया है निष्फल नहीं।

इसी प्रकार सभी इकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप बनेंगे।

अस्थि दधि—सक्थ्यक्षणामनङुदात्तः 7.1.75

एषामनङ् स्यात् टादावचि।

व्याख्याः अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (ऊरु जंघा) और अक्षि (आँख) शब्दों को अनङ् आदेश हो टा आदि

अजादि विभिक्ति परे रहते। दधि शब्द के रूप प्रथमा, संबोधन और द्वितीया में तो 'वारि' शब्द के समान ही बनेंगे। टा में प्रकृत सूत्र से अनङ् आदेश होने पर 'दध् अन् आ' ऐसी स्थिति बनती है।

अल्लोपोऽनः 6.4.134

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थान–यजादि [1]–स्वादिपरो योऽन् तस्याऽकारस्य लोप। दध्ना दध्नः 2 दध्नोः2।

व्याख्याः अंग का अवयव और सर्वनामस्थान भिन्न यकारादि तथा अजादि प्रत्यय पर हो जिससे, ऐसा जो अन् उसके अकार का लोप हो।

'दध्ना–दध् अन् आ' इस दशा में सर्वनामस्थानभिन्न अजादि प्रत्यय टा परे होने से अङ्गावयव अन् के अकार का लोप होकर 'दध्ना' रूप बन गया ।

दध्ने–'दधि+ए' यहां अनङ् आदेश होने पर प्रकृत सूत्र से अन् के अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।
दध्नः–ङसि और ङस् में पूर्ववत् अनङ् आदेश तथा अकार का लोप होने पर उक्त रूप बनता है।
दध्नोः–यह रूप ओस् में पूर्वोक्त प्रकार से ही सिद्ध होता है।

विभाषा ङि–श्योः 6.4.136 अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानपरो योऽन्, तस्याऽकारस्य लोपो वा स्यात्, ङिश्यो परयोः। दध्नि, दधनि। शेषं वारिवत्। एवमस्थिसक्थि–अक्षि।

व्याख्याः अन् अङ्ग का अवयव हो और सर्वनामस्थान प्रत्यय जिससे परे न हो,उस अन् के अकार का विकल्प से लोप हो ङि और शि परे रहते। **दध्नि**–सप्तमी के एकवचन में अनङ् आदेश होने पर 'दध् अन् इ' इस दशा में अन् के अकार का प्रकृत सूत्र से विकल्प से लोप हुआ। तब 'दध्नि' रूप बना। लोपाभाव पक्ष में दधनि। **शेषमिति**–दधि शब्द के शेष रूप वारि शब्द के समान सिद्ध होंगे। **एवमिति**–इसी प्रकार अस्थि, सक्थि और अक्षि शब्द के भी रूप बनेंगे। अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि, हे अस्थि, हे अस्थे। अस्थ्ना। अस्थ्ने। अस्थनः2। अस्थ्नाम्। अस्थ्नि, अस्थनि। सक्थि, सक्थिनी, सक्थीनि। हे सक्थि, हे सक्थे। सक्थ्ना। सक्थ्ने। सक्थ्नः2। सक्थ्नोः2। सक्थ्नाम्। सक्थ्नि, सक्थनि। अक्षि, अक्षिणी, अक्षीणि। हे अक्षि, हे अक्षे। अक्ष्णा। अक्ष्णे। अक्ष्णः2। अक्ष्णोः। अक्ष्णाम्। अक्ष्णि, अक्षणि। इकरान्त शब्द समाप्त।

तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य 7.1.74

प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद् वा टादावचि। सुधिया, सुधिनेत्यादि। मधु, मधुनी, मधूनि।

सुलु, सुलुनी, सुलूनि। सुल्वा, सुलुना। धातृ धातृणी, धातृणि। हे धातः, हे धातृ। धात्रा, धातृणा। धातॄणाम् एवं ज्ञातृ आदयः।

व्याख्याः तृतीयादिष्विति-प्रवृत्तिनिमित्त एक होते हुए जो शब्द पुंस्त्व को कहता हो अर्थात् जो शब्द पुंल्लिङ्ग में भी प्रयुक्त होता हो–उस इगन्त नपुंसकलिङ्ग शब्द को पुंवद्भाव हो अर्थात् पुंल्लिङ्ग के समान कार्य हो, टा आदि अजादि विभक्ति परे रहते।

प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं, शब्द के प्रयोग के कारण को, जिस निमित्त से शब्द का प्रयोग होता है अर्थात् अर्थ।
भाषितपुस्क-उस शब्द को कहते हैं जिसका प्रयोग पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग् दानो जगह हो और प्रवृत्तिनिमित्त– अर्थ भी दोनों लिङ्गों में समान हो। निम्नलिखित कारिका में भाषितपुंस्क की परिभाषा और उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण द्वारा बहुत स्पष्ट किया गया है–

यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्त्तते। क्लीबवृत्तौ तदेव स्यादुक्तपुंस्क तदुच्यते। पीलुर्वक्षः फलं पीलु 'पीलुने' न तु 'पीलवे' वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं तज्जत्वं तत्फले पुनः। इति।

अर्थात्-जिस निमित्त (अर्थ) को लेकर पुंल्लिङ्ग में शब्द प्रवृत्त होता है, यदि नुपंसकलिङ्ग में प्रवृत्ति का भी वही निमित्त (अर्थ) हो तो उस शब्द को भाषितपुंस्क कहा जाता है। पीलु वृक्ष को भी कहते हैं और उसके फल को भी। अतः पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में प्रयोग होने पर भी दोनों का प्रवृत्तिनिमित्त (अर्थ) भिन्न होने से यह शब्द भाषितपुंस्क नही। अतएव फल अर्थ में नपुंसकलिङ्ग में–पीलुने' यही रूप बनेगा, पुंल्लिङ्ग का जैसा–'पीलवे' नहीं। पीलु शब्द की वृक्ष अर्थ में प्रवृत्ति का निमित्त पीलुत्व है और फल अर्थ में तज्जत्व अर्थात् पीलुजत्व है। सुधीशब्द पुंल्लिङ्ग और नपसुंकलिङ्ग् दोनो जगह प्रयुक्त होता है और दोनों स्थलों में इसका प्रवृत्तिनिमित्त–अर्थ– अच्छी बुद्धिवाला है। अतः यह भाषितपुंस्क शब्द है इसको पुंवद्भाव होगा। पुंवदभाव होने से पुंल्लिङ्ग के जैसे

रूप भी बनेंगे। गालव के मत में पुंवद्भाव होता है, पाणिनि के मत में नहीं, अतः विकल्प फलित होता है। अतएव दो–दो

रूप बनेंगे। **सुधिया-**टा में 'सुधि आ' इस अवस्था में पुंवद्भाव होने पर 'अचि श्नु–' सूत्र से इयङ् होकर रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में 'नुम्' होकर 'सुधिना' रूप बनता है।

टा आदि अजादि विभक्तियों में इसी प्रकार पुंवद्भावपक्ष में इयङ् आदेश और पक्ष में नुम् होकर रूप सिद्ध होंगे।

प्र.	*सुधि,*	*सुधिनी,*	*सुधीनि।*	*द्वि.*	*सुधि,*	*''*	*''।*
सं.	*हे सुधि, हे*	*हे ''*	*हे'' ।*	*त*	*सुधिया, सुधिना,*	*सुधिभ्याम्,*	*सुधिभिः।*
च.	*सुधिये, सुधिने,*	*सुधिभ्याम्,*		*ष.*	*''*	*सुधियोः, सुधिनोः,*	*सुधीनाम् ।*
पं.	*सुधियः, सुधिनः,*	*''*	*'' ।*	*सं.*	*सुधियि, सुधिनि,*	*''*	*सुधिषु ।*

'अनादि' और 'प्रधी' आदि भाषितपुंस्क शब्दों के भी रूप इसी प्रकार पुंवद्भाव होकर सिद्ध होंगे।

(दीर्घ ईकारान्त शब्द समाप्त)

प्रद्यु शब्द

एच इग् ह्रस्वादेशे 1.1.48

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात्। प्रद्यु, प्रद्युनी, प्रद्यूनि। प्रद्युनेत्यादि। प्ररि, प्ररिणी, प्ररीणि। प्ररिणा। एकदेशविकृतमनन्यवत्। प्रराभ्याम्। सुनु, सुनुनी, सुनूनि। सुनुनेत्यादि। इति अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्।

व्याख्याः जब ह्रस्व आदेश का विधान हो, तब एच् के स्थान में इक् ही हो अर्थात् एकार और ऐकार के स्थान में इकार तथा ओकार और औकार के स्थान में उकार आदेश हों।

'ह्रस्वो नंपुसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से एजन्त शब्दों को ह्रस्व प्राप्त होता है, पर ह्रस्व कौन हो? इसका निर्णय नहीं, क्योंकि एचों के अपने ह्रस्व वर्ण तो है नहीं, 'एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्' यह पहले कहा गया है। ये एच् संयुक्त स्वर हैं अर्थात् दो–दो स्वर मिल कर बने हैं। अकार और इकार के संयोग से एकार–ऐकार तथा अकार और उकार के संयोग से ओकार–औकार बने हैं। तब एचों की अकार और इकार तथा उकार ह्रस्व प्राप्त होते हैं। इस अवस्था में 'एचः–' सूत्र नियम करता है कि इकार और उकार ही ह्रस्व

हो, अवर्ण कभी न हों। **ओकारन्त प्रद्यो** (प्रकृष्टा द्यौः यस्मिन्, दिने, सुन्दर आकाशवाला दिन)-शब्द को 'ह्रस्वो–'से ह्रस्व उकार हुआ। तब

'प्रद्यु' बन जाने से 'मधु' शब्द के समान रूप सिद्ध होंगे। इसीलिये 'प्रद्यु, प्रद्युनी, प्रद्यूनि' रूप बने।

प्रद्युना-तृतीया के एकवचन टा में 'इकोऽचि विभक्तौ' से नुम् होकर रूप सिद्ध हुआ।

यद्यपि 'सुन्दर आकाशवाला' यह प्रवृत्तिनिमित्त–अर्थ–दोनों लिङ्गों में एक होने से इसे भाषितपुंस्क कहा जायेगा, पर पुंवद्भाव नहीं होगा, क्योंकि पुंवद्भाव भाषितपुंस्क इगन्त अङ्ग को होता है। यहां जो 'प्रद्यो' शब्द भाषितपुंस्क है, वह इगन्त नहीं और जो 'प्रद्यु' शब्द इगन्त है, वह भाषितपुंस्क नहीं, क्योंकि ह्रस्वान्त 'प्रद्यु' शब्द केवल नंपुसक ही है, पुंल्लिङ्ग नहीं, पुंल्लिङ्ग में ह्रस्व नहीं होता, शब्द ओकारान्त ही रहता हैं भाषितपुंस्कत्व के लिये शब्द का प्रयोग पुंल्लिङ्ग में भी होना आवश्यक है। 'भाषितपुंस्क' अन्वर्थ संज्ञा है- 'भाषितः पुमान् येन' अर्थात् जिस शब्द ने पुल्लिंग को कहा हो और तब नपुंसक को कहता हो, अतः 'प्रद्यु' शब्द के भाषितपुंस्क न होने से पुंवद्भाव नही होता।

प्र.	प्रद्यु,	प्रद्युनी, प्रद्यूनी।	च. प्रद्युने	प्रद्युभ्याम्,	प्रद्युभ्यः	।
सं.	हे प्रद्यु, हे '' हे ''	। हे प्रद्यो	पं. प्रद्युनः,	''	''	।
द्वि.	''	'' '' ।	ष. ''	प्रद्युनोः,	प्रद्यूनाम्	।
तृ.	प्रद्युना,	प्रद्युभ्याम्, प्रद्युभिः।	स. प्रद्युनि,	''	प्रद्युषु	।

2.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. प्रातिपदिक संज्ञा विधायक सूत्रों का उल्लेख करें।
2. 'रामान्' यहां पर णत्व–निषेध किस सूत्र से होता है?
3. घि–संज्ञा विधायक सूत्र का निर्देश करे।
4. 'गौः' यहां पर णिद्वत् किस सूत्र से होता है?
5. 'औङ्' संज्ञा किसकी होती है?
6. 'सर्वस्यै' यहां पर कौन–सा आगम होता है? सूत्र का निर्दश करें।
7. 'जश्शसोः शिः' इस सूत्र से आप क्या समझते हैं?
8. 'वारि' यहां पर सु का लोप किस सूत्र से होता है?

2.5 निष्कर्ष

प्रस्तुत कारिका के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को प्रातिपदिक संज्ञा की अवधारणा एवं सुप् प्रत्ययों का सम्यग् अवबोध हो जाता है। अजन्त पुल्लिङ्ग शब्दों में अकारान्त राम की, उकारान्त शम्भु के सभी शब्द रूपों, रूपसिद्धियों तथा तदन्तर्गत सभी सूत्रों का भलीभांति परिचय हो चुका होता है। इसी के अन्तर्गत आने वाली सर्वनाम–संज्ञा, घि–संज्ञा, णत्वविधि, दीर्घविधि आदि की भी जानकारी प्राप्त होती है। इसी प्रकार अजन्त स्त्रीलिङ्ग एवं

नपुंसकलिङ्ग शब्दों के सभी शब्दरूप तथा उनकी रूपसिद्धियों का भी बोध होता है। इस इकाई के माध्यम से विद्यार्थी अजन्त सुबन्त शब्दों की रूपसिद्धि प्रक्रिया की दृष्टि से निपुण हो जाता है।

2.6 पदविश्लेषण

1. प्रातिपदिक– यह एक संज्ञा विशेष है। धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवाला शब्दरूप प्रातिपदिक संज्ञक होता है।
2. अवसान– वर्णों के अभाव की अवसान संज्ञा होती है।
3. आङ्– पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्य 'टा' इस तृतीया विभक्तिस्थ एकवचन सुप् प्रत्यय को 'आङ्' कहते थे।
4. अपृक्त– एक वर्ण स्वरूप प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा होती है।
5. आदेश– किसी स्थानी के स्थान पर प्रवृत्त होने वाले को आदेश को कहते हैं।
6. ङित्– 'ङ्' वर्ण जिसका इत् संज्ञक होता है, उसे ङित् कहते हैं।
7. आगम– आगम मित्र के समान होता है जो किसी को हटाता नहीं, अपितु दो वर्णों के बीच आकर बैठ जाता है।
8. अजादि– अच् अर्थात् स्वर आदि में है जिसके, ऐसे शब्द समूह को अजादि कहते हैं।

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, कृत्तद्धितसमासाश्च
2. पदान्तस्य
3. शेषो घ्यसखि
4. गोतो णित्
5. 'औङ्' यह औकार विभक्ति 'औ' एवं 'औट्' की प्राचीन संज्ञा है।
6. स्याट् आगम, सर्वनाम्नः स्याट् ह्रस्वश्च।
7. नपुंसकलिङ्ग से परे जस् और शस् के स्थान पर 'शि' आदेश होता है यथा ज्ञानानि
8. अतोऽम्

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'रामम्' यहां पर पूर्वरूप किस सूत्र से होता है?
2. 'यचि भम्' सूत्र को समझाइये।
3. 'हरये' यहां पर गुण किस सूत्र से होता है?
4. सम्बुद्धि संज्ञा का स्वरूप क्या है?
5. स्त्रीलिङ्ग वाची 'त्रि' के स्थान पर 'तिसृ' आदेश किस सूत्र से होता है?
6. 'अतोऽम्' सूत्र को स्पष्ट करें।

7. 'रमा' यहां पर 'सु' लोप किस सूत्र से होता है?
8. 'सखायौ' यहां पर वृद्धि किस सूत्र से होती है?

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लघुसिद्धान्त कौमुदी वरदराज आचार्यकृत

टीकाएं

भीमसेन शास्त्री (भैमीव्याख्या)

धरानन्द शास्त्री ईश्वर सिंह डॉ. सत्यपाल सिंह

इकाई – 3

अजन्त हलन्त प्रकरण

3.1. परिचय

3.2. उद्देश्य

3.3. हलन्त सुबन्त

3.3.1. पुल्लिङ्ग हलन्त शब्द

3.3.2. स्त्रीलिङ्ग हलन्त शब्द

3.3.3. नपुंसकलिङ्ग हलन्त शब्द

3.4. अपनी प्रगति जांचिये

3.5. निष्कर्ष

3.6. पदविश्लेषण

3.7. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

3.8. अभ्यास हेतु प्रश्न

3.9. कतिपय उपयोगी पुस्तकें

3.1. परिचय

सुबन्त (सुप्+अन्त) का अर्थ है सुप् है अन्त में जिसके वह पद। पाणिनि ने प्रत्ययों को मुख्यतः दो भागों में बांटा है– सुप् और तिङ्। सुप् प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम विशेषण आदि रूपों के निर्माण के लिये लगाये जाते है। तिङ् प्रत्यय क्रिया–रूप बनाने के लिये लगाये जाते हैं। जिन शब्दों के साथ सुप् प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें प्रातिपदिक कहते हैं। सुप् प्रत्याहार है जिसमें प्रथमा एकवचन से लेकर सप्तमी बहुवचन के सुप् तक 21 प्रत्यय आते हैं, जिनका विस्तृत परिचय दूसरी इकाई में हो चुका है।

प्रस्तुत इकाई में ऐसे सुबन्त शब्दों को रखा गया है जो हलन्त है। हलन्त का अभिप्राय हल् अर्थात् व्यंजन जिनके अन्त में है ऐसे शब्द।

इस इकाई में भी हलन्त शब्दों को लैङ्गिक दृष्टि से तीन भागों में पृथक्–पृथक् रखकर उनका विश्लेषण किया जायेगा। पुल्लिङ्ग हलन्त शब्दों में लिह्, दुह्, विश्ववाह्, चतुर्, अनडुह्, युष्मद्, अस्मद् एवं विद्वस् आदि शब्दों को रखा गया है, इनके सभी विभक्तियों के शब्दरूप, उनकी रूपसिद्धि तथा विधायक सूत्रों पर गहन चर्चा की जायेगी तथा प्रक्रिया की दृष्टि से विशेष प्रकाश डाला जायेगा।

इसी प्रकार हलन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों यथा चतुर्, किम्, इदम्, अदस् आदि की सभी विभक्ति एवं वचनों की रूपसिद्धि पर ससूत्र विचार किया जायेगा। नपुंसकलिङ्ग के तत्, किम्, इदम् आदि शब्दों का इसी प्रकार विश्लेषण किया जायेगा।

3.2. उद्देश्य

1. प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपका परिचय हलन्त सुबन्त शब्दों से भलीभांति हो चुका होगा।
2. दुह्, लिह् जैसे दुरुह शब्दों के सभी रूप एवं उनकी रूपसिद्धि का अधिगम हो जायेगा।
3. प्रयोग बाहुल्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण युष्मद् एवं अस्मद् शब्दों के रूप एवं प्रक्रिया की समझ उत्पन्न हो चुकी होगी।
4. सम्प्रसारण संज्ञा के स्वरूप एवं उसकी उपयोगिता से परिचय होगा।
5. 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इस सूत्र के माध्यम से आद्यन्तवत् परिभाषा का उपयोग समझ सकेंगे।
6. किम् शब्द के स्त्रीलिङ्ग रूप से परिचय एवं प्रक्रिया का ज्ञान हो चुका होगा।
7. नुम् आगम से परिचय होगा।
8. 'इदम्' शब्द के नपुंकलिङ्ग रूप से परिचय एवं प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

3.3. हलन्त सुबन्त

3.3.1 पुल्लिङ्ग हलन्त शब्द

लिह्

हो ढः 8.2.21

हस्य ढः स्याद् झलि पदान्ते च। लिट्, लिड्। लिहौ। लिहः लिड्भ्याम् लिट्त्सु–लिट्सु।

व्याख्याः हकार को ढकार होता है झल् परे रहते और पदान्त में।

लिह् (चाटनेवाला शब्द)

लिट्, लिड्-प्रथमा के एकवचन में 'लिह्+स्' इस अवस्था में हल्ङया–' से अपृक्त सकार का लोप होता है। तदनन्तर पदान्त होने से हकार को प्रकृत सूत्र से ढकार हुआ। ढकार को झलां–' से डकार और अवसान डकार को वाऽवसाने–' से टकार विकल्प से हुआ, अतः लिट् लिड् दो रूप बने।

लिहौ-प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन का रूप है। हकार 'औ' से मिल जाता है। विशेष कोई कार्य नहीं करता। **लिहः-**प्रथमा के बहुवचन में 'लिह् अस्' इस दशा में केवल इतना कार्य होता है कि सकार को रु और रेफ को विसर्ग। शस् ङसि और ङस् में भी यही रूप बनता है। **लिड्भ्याम्-**यह रूप तृतीया, चतुर्थी, और पचंमी के द्विवचन में 'भ्याम्' में सिद्ध होता हैं 'लिह् भ्याम्' इस दशा में झल् मकार परे होने से हो ढः' से हकार को ढकार और झलां–' सूत्र से ढ को डकार हुआ। **लिटत्सु, लिट्सु-**सप्तमी के बहुवचन में 'लिह् सु' इस दशा में हकार को ढकार और ढकार को डकार होने पर 'लिड्+सु' इस दशा में 'ङः सि–' से धुट् आगम और 'खरि च' सूत्र से धकार को चर् तकार और उसके परे रहते पूर्व डकार को टकार हुआ। तब 'लिट्त्सु' रूप बना। धुट् के अभाव पक्ष में–डकार के स्थान में चर् रकार 'खरि च' सूत्र से होकर 'लिट्सु' रूप बना।

प्र(लिट् लिड्)		लिहौ	लिहः	च.	लिहे,	लिड्भ्याम्, ,,	लिड्भ्यः,
सं.	हे ''	हे ''	हे ''	पं.	लिहः,	''	''
द्वि.	लिहम्,	लिहौ	लिहः	ष.	लिहः,	लिहोः	लिहाम्
तृ.	लिहा	लिड्भ्याम्,,	लिड्भिः	स.	लिहि,, ''		लिट्त्सु लिट्सु

हलन्त शब्दों के रूप बनाने में ध्यान रखना चाहिए कि अजादि विभक्तियों में प्रायः कोई कार्य विशेष नहीं करना पड़ता। शब्द के साथ विभक्ति को जोड़ देना मात्र होता है। जिन विभक्तियों के अन्त में सकार है उनमें सकार के स्थान में विसर्ग हो जाते हैं।

हलादि विभक्तियों में कुछ कार्य होता है अर्थात् सु, भ्याम्, भिस्, भ्यस् और सुप् इन पांच स्थलों में ही रूप बनाने पड़ते हैं। इसमें भी सु और सुप् में विशेष कार्य करना पड़ता है, शेष में सामान्य। अतः हलन्त शब्दों के सु और सुप् के रूप पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। भ्याम्, भिस् और भ्यस् में साधन–प्रक्रिया समान ही होती है। प्रायः सभी हकारान्त पुंल्लिग शब्दों के रूप 'लिड्' शब्द के समान ही बनेंगे। जिनमें कुछ अन्तर है वे आगे बताये जा रहे हैं।

दादेर्धातोर्घः 8.2.32

झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः।

1. 'हयवरट्' आदि के क्रम से ही यहां हकारान्त आदि शब्द बताये जा रहे हैं। हलन्तपुंल्लिङ्ग मे हल् प्रत्याहार का ही क्रम रखा गया है। अतः हकारान्त के बाद यकारान्त, वकारान्त, रेफान्त आदि क्रम से शब्द आयेंगे। यकारान्त शब्द होते ही नहीं। इसलिये हकारान्त शब्दों के बाद वकारन्त शब्द दिखाये जायेंगे।

व्याख्याः उपदेश में दकारादि धातु के हकार का घकार आदेश हो झल् परे रहते और पदान्त में। दुह् (दुहनेवाला) शब्द। 'दुह्' यह धातु उपदेश में दकारादि है। अपृक्त सकार का लोप होने के अनन्तर पदान्त होने से हकार को घकार हो गया। तब 'दुघ्' बना।

एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः 8.2.37

धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष्, से ध्वे पदान्ते च। धुक् धुग् दुहौ। दुहः। धुग्भ्याम् धुक्षु।

व्याख्याः धातु के अवयव झषन्त एकाच् के बश् के स्थान में भष् आदेश हो, सकार और ध्व परे रहते तथा पदान्त में।

धुक् धुग्-'दुघ्' यह झष् घकारान्त है। यह स्वयं धातु है, धातु का अवयव व्यवदेशिवद्भाव[8] से है, यह एकाच् भी है। पदान्त होने से इसके बश् दकार को अत्यन्त सादृश्य के कारण (आन्तरतम्य से) घकार भष् हुआ। तब 'धुघ्' बना। तदन्तर 'झलां जशोऽन्ते' सूत्र से घकार को गकार और अवसान होने से गकार को 'वाऽवसाने' से विकल्प से ककार होकर दो रूप बने–धुक् और धुग्।

धुग्भ्याम-भ्याम् में भकार झल् परे है, अतः भष्भाव से दकार के स्थान में धकार और धकार के स्थान में जश्त्व से गकार हो जाने से 'धुग्भ्याम्' बना।

[8] . *अमुख्य में मुख्य के समान व्यवहार करने को व्यपदेशिवद्भाव कहते हैं।*

धुक्षु-सुप् में सकार परे है। अतः भष्भाव से दकार को घकार और धकार को जश्त्व से गकार हुआ। तब 'खरि च' से खर् शकार परे होने से गकार को चर् ककार हुआ। तदन्तर कवर्ग से पर प्रत्यय 'सु' के सकार को 'आदेशप्रत्यययोः' सूत्र से मूर्धन्य षकार और क् और ष् के संयोग से क्ष बनकर 'धुक्षु' रूप सिद्ध हुआ।

ध्यान रहे कि भष्भाव से पहले हकार को घकार करना चाहिये। अन्यथा झषन्त नहीं हो सकेगा

प्रधुक् धुग्, ˎ		दुहौ	दुहः	।	च.	दुहे,	धुग्भ्याम्, ˎ,	धुग्भ्यः,
सं.	हे ''	हे ''	हे ''	।	पं.	दुहः,	''	'' ।
द्वि.	दुहम्,	दुहौ	दुहः	।	ष.	दुहः,	दुहोः	दुहाम्
तृ	दुहा	धुग्भ्याम्	धुग्भिः	।	स.	दुहि,, ''		धुक्षु

वा द्रुह–मुह–ष्णुह्–ष्णिहाम् 8.2.33

एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च। ध्रुक्, ध्रुग्; ध्रुट् ध्रुड्। द्रुहौ। द्रुहः। ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम् ध्रुक्षु, ध्रुट्त्सु, ध्रुट्सु। एवं मुक्, मुग् इत्यादि। द्रुह् (द्रोही) शब्द

व्याख्याः द्रुह्, मुह्, (मुग्ध), ष्णुह (वमनकारी) और ष्णिह् (स्नेही) इन शब्दों के हकार को धकार विकल्प से हो झल् परे रहते और पदान्त में।

–दुह्' को दकारादि होने से पूर्वसूत्र 'दादेर्धातोर्घः' से घ प्राप्त था और शेष को अप्राप्त। दोनों को विकल्प से विधान किया। अतः यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है।

ध्रुक् ध्रुग्-ये रूप घकार पक्ष के हैं और घकार के अभाव में 'हो ढः' से हकार को ढकार हुआ। वहां भी झषन्त होने से 'एकाचः–' से भष्भाव के द्वारा ध्रुट् और ध्रुड् रूप बने। इस प्रकार 'सु' में चार रूप हुए।

ध्रुग्भ्याम्; ध्रुड्भ्याम्-ये दो रूप गकार और डकार दो पक्षों के हैं।

ध्रक्षु-सुप् में घकार पक्ष में धकार होने के अनन्तर भष्भाव से दकार को धकार और धकार को चर्त्व से सकार और क से परे मूर्धन्य षकार और क् तथा ष् के संयोग से क्ष होकर 'ध्रुक्षु' रूप सिद्ध हुआ।

ध्रुट्त्सु ध्रुट्सु-घकाराभाव पक्ष में 'हो ढः' सूत्र से ढकार हुआ और उसके स्थान में जश्त्व से डकार आदेश। तब डकार से सकार परे मिल जाने से 'डः सि' सूत्र से वैकल्पिक 'धुट्' आगम। 'खरि च' से पहले धकार को तकार और तब डकार को टकार होकर 'ध्रुट्त्सु' रूप सिद्ध हुआ। धुडभाव पक्ष में डकार को 'खरि च' से टकार होकर

ध्रट्सु।

इसी प्रकार 'मुह्' शब्द के भी रूप बनंगे। सु–मुक्, मुग्, मुट्, मुड् भ्याम्–मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम्। सुप्–मुक्षु, मुट्त्सु, मटुस्।

ष्णुह् (वमनकारी) शब्द

धात्वादेः षः सः 6.1.64

स्नुक् स्नुग्, स्नुट् स्नुड्। एवं स्निक् स्निग्, स्निट् स्निड् इत्यादि। विश्ववाट् विश्ववाड्। विश्वाहौ। विश्ववाहः। विश्ववाहम्। विश्ववाहौ।

व्याख्याः धातु के आदि षकार (मूर्धन्य) को सकार (दन्त्य) आदेश हो।

'ष्णुह्' धातु है। इसके आदि मूर्धन्य षकार को दन्त्य सकार हो गया। तब णकार भी नकार बन गया। षकार से परे होने के कारण ही नकार को 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' णकार हुआ था। जब निमित्त षकार ही न रहा, तब नैमित्तिक कार्य णकार भी न रहेगा, 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इस परिभाषा के बल से, निमित्त के न हरे पर नैमित्तिक भी नहीं रहता।

स्नुह् के सु में पूर्ववत् चार रूप बने–स्नुक्, स्नुग्; स्नुट्, स्नुड्। 'वा द्रुह' में इसको भी धकार विकल्प से होता है। भ्याम्–स्नुग्भ्याम्, स्नुड्भ्याम। सुप्–स्नुट्त्सु, स्नुट्सु।

इसी प्रकार स्निह् शब्द (स्नेह करनेवाला) के भी रूप बनेंगे। सु–स्निक्, स्निग्, स्निट् स्निड्। भ्याम्–स्निग्भ्याम्, स्निड्भ्याम्। सुप्–स्निक्षु, स्निट्त्सु, स्निट्सु।

विश्ववाह् शब्द

विश्ववाट्, ड् (विश्वं वहति[9]इति विश्ववाह्–संसार को चलाने वाला ईश्वर)–विश्ववाह् शब्द से प्रथमा के एक वचन में 'विश्ववाह्+स्' इस स्थिति में 'हो ढः' से हकार के स्थान में ढकार आदेश होने पर 'झलां जशोऽन्ते' से ढकार के स्थान में डकार आदेश हुआ। तब 'वाऽवसाने' से डकार को विकल्प से टकार चर् आदेश होकर दो रूप सिद्ध हुए।

विश्ववाहौ-आदि रूपों में कोई कार्य नहीं होता।

इग् यणः संप्रसारणम्[10] 1.1.45

यणः स्थाने प्रयुज्मानो य इक् स संप्रसारणसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः यण् के स्थान में प्रयुज्मान जो इक् वह' संप्रसारणसंज्ञक हो। जैसे– अग्रिम 'वाह ऊठ्' सूत्र से 'विश्ववाह्' में वाह् के यण् वकार के स्थान में ऊकार इक् प्रयुक्त होता है, उसकी संप्रसारण संज्ञा होती है।

---

9 . 'वहेश्च' सूत्र से 'ण्वि' प्रत्यय होता है जिसका सर्वापहार लोप हो जाता है।

10 यहां अन्योन्याश्रय अर्थात्–एक दूसरे का परस्पर आश्रित होना–दोष पड़ता है और 'अन्योन्याश्रयाणि कार्याणि न प्रकल्प्यन्ते' अर्थात् अन्योन्याश्रय कार्य हो नहीं सकते। जब पहला हो तब उसका आश्रित दूसरा हो और जब दूसरा हो तब उसका अश्रित पहला हो। इस दशा में कोई भी कार्य नहीं हो सकता। जैसे प्रकृत में जब इक् के स्थान में यण् का प्रयोग हो तब उसकी संप्रसारणसंज्ञा हो और जब संप्रसारणसंज्ञा हो जाय, तब इक् यण् के स्थान में हो। इस प्रकार यहां 'अन्योन्याश्रय' दोष की आपत्ति आ पड़ती है। इस दोश का वारण भावी संज्ञा मानकर हो जाता है। अर्थात् ऐसा अभिप्राय संप्रसारणविधायक सूत्रों का समझना चाहिये कि जिस इक् की यण् के स्थान में होने पर संप्रसारणसंज्ञा आगे होगी वह आदेश हो। जैसे 'वाह ऊठ्' सूत्र में–वाह् को 'ऊठ्' होता है जिसकी आगे आदेश होने से अनन्तर संप्रसारणसंज्ञा होगी। इस प्रकार अभिप्राय निकालने से अन्योन्याश्रय दोष नहीं रह जाता। भावी संज्ञा का आश्रय लोक में भी बहुत होता है जैसे–'अस्य सूत्रस्य शाटकं वय = इस सूत की साड़ी बुनो।' इस वाक्य में पूर्व प्रकार के अन्योन्याश्रय है और उसका निराकरण भावी संज्ञा मान लेने से हो जाता है। तथाहि–यदि साड़ी है तब उसको क्या बुनना और यदि अभी बुनना है तो उसे साड़ी कैसे कहा जा सकता है, साड़ी तो बुने जाने पर कहा जायेगा। ऐसी दशा में इस वाक्य का भावी संज्ञा का सहारा लेकर यही अभिप्राय कहा जाता है कि इस बात से वह चीज बुनो, जिसको बुन जाने पर साड़ी कहा जाएगा।

वाह ऊठ् 6.4.32

भस्य वाहः संप्रसारणम् ऊठ्।

व्याख्याः वाह् शब्दान्त भसंज्ञक अङ्ग के अवयव वाह् शब्द की संप्रसारण–संज्ञक ऊठ् आदेश हो।

ठकार इत्संज्ञक है और 'एत्येधत्यूठ्सु' में स्वरूप परिचय के लिए भी है। विश्ववाह् शब्द के शस् में 'विश्ववाह्+अस्' इस दिशा में वाह् शब्दान्त भसंज्ञक अङ्ग 'विश्ववाह्' के अवयव वाह् को संप्रसारण ऊठ् हुआ। ऊकार वकार यण् के स्थान में हुआ। तब 'विश्व ऊ आह् अस्' यह स्थिति बनी।

संप्रसारणाच्च 6.1.108

संप्रासारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः। वृद्धिः-विश्वौहः-इत्यादि।

व्याख्याः संप्रसारण से परे अच् रहते को एकादेश हो।

विश्वौहः-'विश्व ऊ आह् अस्' यहां संप्रसारण 'ऊ' से अच् आकार परे है पूर्व ऊकार का रूप एकादेश होने से 'आ' न रहा। तब 'विश्व ऊ ह् अस्' ऐसी स्थिति बनी। यहां 'एत्येधत्यूठ्सु' सूत्र से ऊठ् परे होने के कारण अकार और ऊकार की वृद्धि औकार हुई। तब 'विश्वौहस्' बना अन्त में सकार को रु और रकार को विसर्ग होने से

''विश्वौहः'' रूप बना। आगे अजादि विभक्तियों में भ संज्ञा होने से 'विश्वौहः' के समान संप्रसारण आदि कार्य होकर रूप बनेंगे। हलादि विभक्तियों में हकार को ढकार और ढकार को जश्त्व डकार होकर रूप बनेंगे। सप्तमी के बहुवचन सुप् में 'डः सि धुट्' से वैकल्पिक 'धुट्' आगम भी होगा।

तृ	विश्वौहा,	विश्ववाड्भ्याम्,	विश्वाड्भिः ।
च.	विश्वौहे,	''	विश्ववाड्भ्यः ।
ष.	''	''	'' ।
स.	विश्वौहि,	''	विश्ववाट्त्सु, विश्वाट्सु ।

इस प्रकार प्रष्ठवाह् (उद्दण्ड बछड़ा) और भारवाह् (भार उठाने वाला मजदूर) आदि 'वह्' धातु से सिद्ध हुए शब्दों के रूप भी बनेंगे।

चतुरनडुहोराम उदात्तः[1] 7.1.98

अनयोराम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे।

व्याख्याः चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् आगम हो सर्वनामस्थान परे रहते।

'आम्' का मकार इत्संज्ञक है। अत एव मित् होने से आम् 'मिदचोऽन्त्यात्परः' परिभाषा से अन्त्य अच् के आगे होगा और उसी समुदाय का अवयव बनेगा।

'अनडुह्+स्' इस दशा में सर्वनामस्थान सु के परे होने से अन्त्य अच् डकारोत्तरवर्ती उकार के आगे 'आम्' आगम हुआ। तब 'अनडु आ ह् स्' यह स्थिति बनी।

सावनडुहः 7.1.82

अस्य नुम् स्यात् सौ परे। अनड्वान्।

व्याख्याः अनडुह् शब्द को नुम् आगम हो सु परे रहते।

'नुम्' के उकार और मकार इत्संज्ञक हैं अतएव मित् होने से नुम् भी अन्त्य अच् के आगे होगा और समुदाय का अवयव बनेगा।

अनड्वान्-'अनडु आह् स्' इस स्थिति में सु परे होने से अनडुह् के अन्त्य अच् आम् के आकार के आगे 'नुम्' आगम हुआ। तब :अनडु आन् ह् स्' यह दशा हुई। उकार को तो यण् वकार हुआ, अपृक्त सकार का 'हल्ङ्याब्भ्यः—' से लोप और हकार का संयोगान्त लोप होने से **'अनड्वान्'** रूप सिद्ध हुआ।

यहां हकार के लोप होने से 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से नकार का लोप नहीं होता। क्योंकि नकार लोप के प्रति हकार का संयोगान्त लोप असिद्ध है। अतः नकार के पदान्त न होने से लोप नहीं होता।

अम् सम्बुद्धौ 7.1.91

हे अनड्वन्। अनड्वाहौ। अनड्वाहः। अनडुहः। अनडुहा।

व्याख्याः अनडुह् शब्द को अम् आगम हो सम्बुद्धि परे रहते।

'अम्' का मकार भी इत्संज्ञक है। अतएव मित् होने से अम् अन्त्य अच् के आगे होगा और समुदाय का अवयव बनेगा। **हे अनड्वन्-**'स्' इस दशा में सम्बुद्धि परे होने से डकारोकारवर्ती उकार के आगे 'अम्' होकर 'अनडु अ ह् स्' यह स्थिति बनी। इसमें 'सावनडुहः' सूत्र से अम् के अकार के आगे नुम् हुआ। तब 'अनडु अ न् ह स्' इस स्थिति में पहले उकार को यण् वकार और तब स् का हल्ङयादि लोप तथा हकार का संयोगान्त लोप होने से 'हे अनड्वन्' रूप सिद्ध हुआ।

अनड्वाहः-यह रूप जस् में पूर्वप्रकार से ही सिद्ध होता है।

अनडुहः-यह रूप शस् का है। शस् के सर्वनामस्थान न होने से आम् आगम नहीं हुआ। सकार की रुत्व विसर्ग हुए।

वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः 8.2.71

सान्तवस्वन्तस्य ध्वंसादेश्च दः स्यात् पदान्ते। अनडुद्भ्याम् इत्यादि। सान्तेति किम्—विद्वान्। पदान्ते किम्—स्रस्तम्, ध्वस्तम्।

व्याख्याः सान्त वसु प्रत्ययान्त, स्रंसु, और अनडुह् शब्दों को दकार आदेश हो पदान्त में।

अनडुद्भ्याम्-'अनडुह्+भ्याम्' इस दशा में हलादि विभक्ति परे होने से 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने—सूत्र से पूर्व

'अनडुह' की पद संज्ञा है। पदान्त में हकार है, उसको दकार होने से रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार अन्य हलादि विभक्तियों में भी हकार को दकार होगा। सुप् में दकार को 'खरि च' सूत्र से चर् तकार हो जायेगा।

प्र. अनड्वान्, अनड्वाहौ,	अनड्वाहः।	च.	अनडुहे, अनडुद्भ्याम्,		अनडुद्भ्यः ।
सं. हे अनड्वन् हे ''	हे '' ।	पं.	अनडुहः, ''		'' ।
द्वि. अनड्वाहम्, ''	'' ।	ष.	''	अनडुहोः,	अनडुहाम् ।
तृ. अनडुहा, अनडुदभ्याम्,	अनडुद्भिः।	स.	अनडुहि, ''		अनडुत्सु।

सान्त इति-वसु प्रत्यायन्त शब्द सकारान्त जब हो तब दकार होता है ऐसा क्यों कहा?-इसलिये कि 'विद्वान्' में दकार न हो। 'विद्वान्' वसुप्रत्ययान्त तो है सकारान्त नहीं। विद् धातु से वसु प्रत्यय होने से 'विद्वस्' शब्द बनता है।

वसु प्रत्ययान्त शब्द तो सकारान्त रहेगा ही, अतः :सान्त' विशेषण देना निरर्थक है-यह आशय है शङ्का का। उत्तर का अभिप्राय यह है कि सकार के लोप होने पर वसु प्रत्ययान्तता तो शब्द में रहेगी, पर सान्तता नहीं रह सकती, जैसे–विद्वान् यह पद है। यहां सकार का लोप हो गया है। इसमें वसुप्रत्ययान्तता तो है, पर सान्तता नहीं आ सकती। अतः यहां दकार आदेश नहीं होता। **पदान्ते इति-**पदान्त में दकार होता है यह क्यों कहा? इसलिए, कि 'स्रस्तम्' और 'ध्वस्तम्' में दकार न हो जाय। यहां पर 'स्रंसु' और 'ध्वंसु' तो हैं, पर पदान्त नहीं। अतः दकार नहीं होता। ये दोनों रूप 'स्रंसु' और 'ध्वंसु' धातु के 'क्त' प्रत्यय में बनते हैं।

सहेः साडः सः 8.3.56

साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः। तुराषाट्, तुराषाड् तुरासाहौ। तुरासाहः। तुराषाड्भ्यामित्यादि। इति हकारान्ताः।

व्याख्याः साड्रूप सह धातु के सकार को मूर्धन्य (षकार) आदेश हो। अर्थात् जब सह का 'साड्' रूप बनेगा। तभी मूर्धन्य होगा।

फलितार्थ यह हुआ कि पदान्त में सह् के सकार को मूर्धन्य हो क्योंकि 'सह' का 'साड्' रूप हलादि विभक्तियों में ही बनता है, वहां पदान्त रहता ही है।

तुराषाट्–ड्-यहां प्रथमा के एकवचन में 'तुरासाह्+सु' इस स्थिति में प्रथम अपृक्त सकार का लोप होता है, तब पदान्त होने से हकार को 'हो ढः' सूत्र से ढकार और उसको जश्त्व डकार होने पर 'तुरासाड्' बन गया। यहां 'साड्' रूप होने से प्रकृत सूत्र से मूर्धन्य षकार होकर 'तुराषाड्' बनाने पर 'वाऽवसाने' सूत्र से डकार को विकल्प से टकार होकर दो रूप सिद्ध हुए 'तुराषाट्' और 'तुराषाड्'।

तुरासाहौ-औ में कोई कार्य नहीं होता। यहां पदान्त न होने से ढत्व नही होता अतः 'साड्' रूप नहीं बनता। अत एव मूर्धन्य आदेश भी नहीं होता।

इसी प्रकार सभी अजादि विभक्तियों के रूप बनेंगे। हलादियों में ढकार होगा और 'साड्' रूप बनने से मूर्धन्य भी।

वकारान्त शब्द दिव

औत् 7.1.84

'दिव' इति प्रातिपदिकस्य 'औत्' स्यात् सौ। सुद्यौः। सुदिवौ।

व्याख्याः 'दिव' इस प्रातिपदिक को 'औत्[11]' आदेश हो सु परे रहते। अलोऽन्त्यपरिभाषा से दिव् के अन्त्य वर्ण वकार को 'औ' आदेश होगा।

यह सूत्र अङ्गाधिकार का है। अतः 'पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' परिभाषा से तदन्त का ग्रहण होता है। अतः दिव् शब्दान्त 'सुदिव्' शब्द में भी सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

सुद्यौः-सुदिव्, शब्द के प्रथमा के एकवचन में 'सुदिव्'सु' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से अन्त्य वर्ण अकार को औकार आदेश हुआ। तब 'सुदि औ स्' इस स्थिति में इकार को यण् और सकार को रु और रकार को विसर्ग होकर 'सुद्यौः[12]' रूप सिद्ध हुआ।

सुदिवौ-'औ' का रूप है। कोई विशेष कार्य नहीं हुआ।

इसी प्रकार अन्य अजादि विभक्तियों में बिना किसी विशेष कार्य के रूप सिद्ध हाता है।

दिव6 उत् 6.1.131 दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात् पदान्ते। सुद्युभ्याम्–इत्यादि। इति वकारान्ताः। चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः2।

व्याख्याः दिव शब्द को उकार अन्तादेश हो पदान्त में।

सद्युभ्याम्-'सुदिव् भ्याम्' इस दशा में हलादि भ्याम् विभक्ति परे रहते पूर्व सुदिव्' शब्द '164 की स्वादिष्वस्वर्नामस्थाने' सूत्र से पदसंज्ञा है अतः वकार पदान्त है उसको उकार आदेश हुआ। 'सुदि उ भ्याम्' ऐसी स्थिति बन जाने पर

यण् होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार सभी हलादि विभक्तियों में रूप सिद्ध होंगे।

प्र. सुद्यौः, सुदिवौ, सुदिवः। च. सुदिवे, सुद्युभ्याम्, सुद्युभ्यः। सं. हे '' हे '' हे ''।
पं. सुदिवः, '' '' । द्वि. सुदिवम् '' '' । ष. '' सुदिवोः, सुदिवाम्। तृ.
सुदिवा, सुद्युभ्याम्, सुद्युभिः। स. सुदिवि, '' सुद्युषु।

चतुर् शब्द –

(चार) शब्द नित्य बहुवचनान्त है। इसलिये इसके रूप केवल बहुवचन में ही बनेंगे। **चत्वारः-**जस् में, 'चतुर् अस् इस स्थिति में सर्वनामस्थान में जस् परे होने से 'चतुर्' शब्द को 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' सूत्र से अन्त्य अच् तकारोत्तरवर्ती उकार के आगे 'आम्' आगम हुआ। तब 'चतु आ र् अस् ऐसी स्थिति बन जाने पर उकार को यण् वकार करने से और सकार को रुत्व विसर्ग होने से रूप सिद्ध हुआ।

---

11. 'औत् का तकार उच्चारणार्थ है अर्थात् केवल उच्चारण के लिए इसका प्रयोग है, किसी प्रयोजन विशेष से नही। 'उच्चारणाथार्नामित्सज्ञांलोपेभ्य विनैव निवृत्तिः' अर्थात् उच्चारणार्थकों की इत्संज्ञा और लोप किये बिना ही निवृत्ति हो जाती है। क्योंकि उच्चारण मात्र उनका प्रयोजन होता है। उसके पूरा हो जाने पर वे स्वयं निवृत्त हो जाते हैं। इत्संज्ञा करने की कुछ आवश्यकता नहीं रहती।

12. यहां 'औ' में स्थानिवद्भाव से स्थानी वकार का धर्म हल्त्व लाकर सु का हल्ङ्यादि लोप प्राप्त होता है, पर 'अनल्विधौ' से निषेध हो जाता है। क्योंकि लोप अल्विधि है, इसमें एक अल् ही आश्रय है। अतः निषेध होने से स्थानिवद्भाव न हो सकेगा। अतः हल् से पर न होने के कारण लोप न होकर सु के विसर्ग होंगे।

चतुरः-यह शस् का रूप है। इस में सकार को रुत्व और विसर्ग के अतिरिक्त कुछ कार्य नहीं होता। औट् तक ही सर्वनामस्थान संज्ञा होने से शस् के सर्वनामस्थान संज्ञा के अभाव के कारण यहां 'उ' आगम नहीं हुआ। **चतुर्भिः-**भिस् का रूप है। इसमें भी सकार को रुत्व विसर्ग के अतिरिक्त कुछ कार्य विशेष नहीं होता। **चतुर्भ्यः-**चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन का रूप है।

षटचतुर्भ्यश्च 7.1.55

एभ्य आमो नुडागमः।

व्याख्याः षट् संज्ञक और चतुर् शब्द से पर 'आम्' को 'नुट्' आगम हो। चतुर् शब्द के षष्ठी के बहुवचन में 'चतुर्+आम्' इस दशा में 'नुट्' आगम हुआ। उकार और टकार के इत्संज्ञक होने से लोप हो जाता है। 'चतुर+नाम्' ऐसी स्थिति बनी।

रषाभ्यां नो णः समानपदे 8.4.1

"अचो रहाभ्यां द्वे-" चतुर्ण्णाम्, चतुर्णाम्।

व्याख्याः रेफ और षकार से पर नकार को णकार हो–एक पद में। **चतुर्ण्णाम्-**चतुर्णाम्–'चतुर नाम्' यहां एक पद में होने के कारण रकार से पर नकार को णकार हुआ तो 'चतुर्णाम्' बना। तकारोत्तरवर्ती उकार से पर रेफ है, उससे पर यर् णकार को द्वित्व विकल्प से हुआ। द्वित्व पक्ष में–'चतुर्ण्णाम्' और अभाव पक्ष में 'चतुर्णाम्' रूप बने।

रोः सुपि 8.3.16

रोरेव विसर्गः सुपि। षत्वम्। षस्य द्वित्वे प्राप्ते।

व्याख्याः सप्तमी के बहुवचन सुप् परे रहते 'रु' के ही रेफ के विसर्ग होते हैं, अन्य रेफ के नहीं।

चतुर् शब्द से सप्तमी के बहुवचन में 'चतुर् सु' इस दशा में खर् सकार के पर होने से रकार को 'खरवसान–' सूत्र से विसर्ग प्राप्त हैं। उनका प्रकृत नियम से निषेध हो जाता है। क्योंकि यहां 'रु' का रेफ नहीं, स्वाभाविक रेफ है और सुप् परे रहते रु के रेफ को ही विसर्ग होते हैं यह नियम है। अतः यहां विसर्ग नहीं हुए।

षत्वमिति-तब इण् रकार से सकार को, 'आदेश–' सूत्र से मूर्धन्य षकार हुआ।

षस्येति-इसके अनन्तर 'चतुर्षु' ऐसी स्थिति बन जाने पर 'अचो रहाभ्यां द्वे' सूत्र से तकारोत्तरवर्ती उकार से पर रेफ से पर यर् षकार को द्वित्व प्राप्त हुआ।

शरोऽचि 8.4.49

अचि परे शरो न द्वे स्तः। चतुर्षु। इति रकारान्ताः। व्याख्याः अच्
परे रहते शर् को द्वित्व न हो।

'चतुर्षु' में शर् षकार से परे अच् उकार है। अतः प्राप्त द्वित्व का निषेध हो गया। रूप 'चतुर्षु' ही सिद्ध हुआ।

मकारान्त किम् शब्द

किमः कः 7.2.103

किमः कः स्याद् विभक्तौ। कः, कौ, के इत्यादि। शेषं सर्ववत्।

व्याख्याः 'किम्' शब्द को 'क' आदेश हो विभक्ति परे रहते।

विभक्ति आने के बाद सब से पहले 'किम्' शब्द को 'क' आदेश हो जाता है। उस से अकारान्त 'क' शब्द बनता है। सर्वदिगण में पाठ होने से 'किम्' शब्द सर्वनाम् है और स्थानिवद्भाव से तत्स्थानिक 'क' भी।

'इदम्' शब्द

इदोऽय पुंसि 8.2.111

इदम इदोऽय् सौ पुंसि। अयम् त्यादद्यत्वे-

व्याख्याः 'इदम्' शब्द के 'इद्' भाग को 'अय्' आदेश हो सु परे रहते पुंल्लिङ्ग में। **अयम्-**'इदम् + स्' यहां 'इद्' भाग को 'अय्' आदेश होने से 'अय् अम् स्' यह स्थिति बनी। इसमें 'हल्ङ्याब्भ्यः–' सूत्र से अपृक्त सकार का लोप होने से 'अयम्' रूप सिद्ध हआ।

त्यादाद्यत्व इति-द्विवचन में 'इदम् + औ' इस स्थिति में 'त्यदादीनामः' सूत्र से मकार को अकार हो गया। तब 'इद अ + औ' ऐसी स्थिति हुई।

अतो गुणे 6.1.97

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः।

पदान्तभिन्न ह्रस्व अकार से गुण (अ, ए, ओ) परे रहते पररूप एकादेश हो।

'इद अ + औ' यहां अपदान्त दकारोत्तरवर्ती अकार से गुण अकार परे होने से पूर्व पर के स्थान में पर अकार रूप एकादेश हुआ। तब 'इद + औ' यह स्थिति हुई।

दश्च 7.2.109

इदमो दस्य मः स्याद् विभक्तौ। इमौ, इमे। त्यादादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः।

व्याख्याः इदम् शब्द के दकार को मकार हो विभक्ति परे रहते।

इमौ-'इद+औ' इस स्थित में विभक्ति 'औ' परे होने से दकार को मकार हुआ। तब 'इम+औ' इस स्थिति के बन जाने पर 'वृद्धिरेचि' सूत्र से प्राप्त वृद्धि का 'प्रथमयोः–' सूत्र पूर्वसवर्णदीर्घ द्वारा बाध और 'नादिचि' सूत्र से पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध होने पर पुनः 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि होकर 'इमौ' रूप बना।

इमे-'इदम्+अस्' यहां 'त्यादादीनामः' सूत्र से मकार को अकार आदेश, 'अतो गुणे' सूत्र से दकारोत्तरवर्ती अकार और 'अम्' के अकार के स्थान में पर अकार रूप एकादेश, 'दश्च' सूत्र से दकार को मकार आदेश होने से 'इम+अस्' ऐसी स्थिति हो जाने पर अकारान्त बन जाने से अदन्त सर्वनाम 'इम' से परे 'जस्' को 'जसः शी' सूत्र से 'शी' आदेश शकार की इत्संज्ञा लोप अकार और ईकार के स्थान में एकार गुण एकादेश हो जाने से 'इमे' रूप सिद्ध हुआ

त्यादादेरिति-त्यादादियों का सम्बोधन नहीं होता, वह सामान्य नियम है अर्थात् सम्बोधन विभक्ति में त्यदादियों का प्रयोग नहीं होता। इसका कारण सामान्य ही है अर्थात् इनके द्वारा संबोधन असंभव[13] है। द्वितीया–इमम्, इमौ, इमान्। इनकी सिद्धि भी पूर्ववत् होगी। त्यदाद्यत्व से अकारान्त बन जाने पर 'सर्व' शब्द के समान सिद्धि होती है।

अनाप्यकः 7.2.112

अककारस्येदम इदोऽन् आपि विभक्तौ आबिति प्रत्याहारः। अनेन।

व्याख्याः ककार रहित 'इदम्' के 'इद्' भाग को 'अन्' आदेश हो टाप् (टा से लेकर सुप्) विभक्ति परे रहते। **आबिति-** 'टाप्' यह प्रत्याहार है। यह प्रत्याहार 'टा' से लेकर 'सुप्' तक है अर्थात् तृतीया विभक्ति से सप्तमी तक।

अनेन-'इदम्+टा' इस दशा में सबसे पहले 'त्यदादीनामः' से मकार को अकार हुआ। तब 'अतो गुणे' से पररूप। 'इद+टा' ऐसी स्थिति बन जाने पर 'दश्च' सूत्र से दकार को मकार प्राप्त हुआ। परन्तु प्रकृत सूत्र से टाप् विभक्ति

'टा' परे होने से 'इद्' भाग को 'अन्' आदेश हुआ। फिर 'अन+टा' इस स्थिति में अकारान्त होने से उसके आगे

'टा' को टाङसि–' सूत्र से 'इन' आदेश हआ। जब 'अन इन' इस स्थिति में गुण हो कर 'अनेन' रूप सिद्ध हुआ।

'भ्याम्' में मकार को त्यदाद्यत्व से अकार और पररूप करने पर 'इदं भ्याम् ऐसी स्थिति बनती है। यहां '276 दश्च' से दकार को मकार और उसको बाधकर '277 अनाप्यकः' से 'इद्' भाग को :अन' आदेश प्राप्त है।

हलि लोपः 7.2.113

अककारस्येदम इदो लोप आपि हलादौ। (प) नाऽनर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे।

ककाररहित 'इदम्' शब्द के 'इद्' भाग का लोप हो हलादि टाप् विभक्ति परे रहते।

(प) नाऽनर्थके इति-अभ्यास[14] विकार को छोड़कर अनर्थक में अलोऽन्त्य विधि की प्रवृत्ति नहीं होती अर्थात् जहां षष्ठीनिर्दिष्ट–षष्ठ्यन्तपदवाच्य अर्थवान् हो, वहीं अलोन्त्यपरिभाषा प्रवृत्त होती है अन्यत्र–निरर्थक–में नहीं। प्रकृत में अलोन्त्यपरिभाषा से अन्त्य अल् दकार का लोप होना चाहिये था, पर षष्ठ्यन्त पद 'इदः' से बोध्य 'इद्' अर्थवान् नहीं, क्योंकि यह न्याय है कि 'समुदायोऽर्थवान्, समुदायस्यैकदेशोऽनर्थकः' अर्थात् समुदाय अर्थवान् होता है, समुदाय का एकदेश–अवयव–तो निरर्थक ही रहता है। इसलिये समन्वय अकारादेश विशिष्ट 'इदम्' अर्थवान् है, 'इद्' भाग नहीं। अतः यहां अलोन्त्यपरिभाषा की प्रवृत्ति न होगी, सम्पूर्ण 'इद्' का लोप होगा। इस सूत्र के द्वारा विहित कार्य को ही व्यपदेशिवद्भाव कहते हैं।

---

[13]. क्योंकि सम्बोधन किसी को बुलाने के लिये किया जाता है, उसमें जिसको बुलाना हो उसको अच्छी तरह समझ में आ जाना चाहिये कि मुझे कहा जा रहा है। 'नाम' लेने में अच्छी तरह व्यक्ति समझ जाता है कि मुझे ही कहा जा रहा है। जोर से बुलाने पर दूर स्थित को भी अच्छी तरह बोध हो जाता है। यही सम्बोधन (अच्छी तरह समझाना) है। सम्बोधन का सम्बोधनत्व यही है। त्यदादियों के द्वारा अच्छी तरह समझाना सम्बोधन बिल्कुल असम्भव है। ये तो सर्वनाम है, सब का बोध कराते हैं, किसी व्यक्ति विशेष का नहीं। अतः कोई कैसे समझे कि मेरे लिये ही कहा जा रहा है। 'हे यह' 'हे कौन' कहने से सामान्यतः भी कोई नहीं समझ सकता कि मेरी बुलाहट है, अच्छी तरह समझना तो दूर की बात है। अतः असंभव होने से इनका सम्बोधन विभक्ति में प्रयोग नहीं होता।

[14]ए इसका फल है 'भृञामित्' सूत्र से 'पिपर्ति' में अभ्यास के अन्त्य ऋकार को इकार आदेश होना। अन्यथा वहां भी अलोन्त्यपरिभाषा का निषेध ही जाता और तब सम्पूर्ण अभ्यास को इकार आदेश होने लगता।

आद्यन्तवद् एकस्मिन् 1.1.21

एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात् 'सुपि च' दीर्घः-आभ्याम्।

व्याख्याः एक वर्ण पर जब कार्य करना हो तो उस वर्ण को आदि भी माना जाता है और अन्तिम भी। प्रकृत 'अभ्यास्' में केवल अकार है, पूर्व में अन्य वर्ण रहते हुए ही इसे अन्त्य कहा जा सकता है। पर इस न्याय से असहाय होने पर भी इसे आदि अन्त दोनों मानकर अदन्त अङ्ग कहा जायेगा। अतः 'सुपि च' से दीर्घ होकर 'आभ्याम्' रूप सिद्ध हुआ। यह व्यपदेशिवद्भाव लोकन्यायसिद्ध है। यथा–देवदत्तस्यैकः पुत्रः स एव ज्येष्ठः स एव कनिष्ठः' अर्थात् देवदत्त का एक पुत्र है, उसे ही ज्येष्ठ भी और कनिष्ठ भी कहा जाता है यद्यपि ज्येष्ठत्व तथा कनिष्ठत्व सापेक्ष है, तथापि अमुख्य में भी मुख्य व्यवहार यहां किया जाता है।

नेदमदसोरकोः 7.1.11

अककारयोरिदमदसो भिस ऐस् न। एभिः। अस्मै। एभ्यः। अस्मात्। अस्य। अनयोः। एषाम्। अस्मिन्। एषु।

व्याख्याः ककाररहित इदम् और अदस् से परे 'भिस्' को 'ऐस्' न हो।

एभिः-'इदम् + भिस्' इस दशा में त्यदाद्यत्व और पररूप होने पर हलादि विभक्ति 'भिस्' पर होने से 'हलि लोपः' सूत्र से 'इद्' भाग का लोप होकर 'अ भिः' यह स्थिति बनी। वहां पूर्ववद् व्यपदेशिवद्भाव से अकार को अदन्त अङ्क मान लेने प 'अतो भिस ऐस्' से 'भिस्' के स्थान में 'ऐस्' आदेश प्राप्त हुआ। उसका प्रकृत सूत्र से निषेध होने के अनन्तर झलादि बहुवचन भिस् परे होने से व्यपदेशिवद्भावेन अदन्त अङ्ग अकार के अन्त्य अकारको 'बहुवचने झल्येत्' से एकार तथा सकार को रुत्व विसर्ग कर देने से 'एभिः'' रूप बना।

अस्मै-'इदम्' +ङे इस दशा में त्यादाद्यत्व और पररूप करने पर अदन्त अङ्ग बन जाने से 'सर्वनाम्नः स्मै' से 'ङे' को 'स्मै' आदेश हुआ। 'स्मै' में 'ङे' का विभक्त्वि धर्म स्थानिवद्भाव से लाकर 'हलि लोपः' सूत्र से 'इद्' भाग का लोप हो जाने पर रूप सिद्ध हुआ।

एभ्यः-'इदम+भ्यस्' इस दशा में त्यादद्यत्व और पररूप होने पर 'इद्' भाग का लोप हुआ। तब व्यपदेशिवद्भाव से अदन्त अङ्ग के अकार को 'बहुवचने–' सूत्र से एकार तथा सकार के स्थान में रु और विसर्ग करने पर रूप सिद्ध हुआ।

अस्मात्-त्यदाद्यत्व, पररूप और ङसि के स्थान में स्मात् आदेश होने पर 'इद्' भाग का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

अस्य-त्यादाद्यत्व और पररूप होने पर अदन्त अङ्ग से पर 'ङस्' को 'स्व' आदेश हुआ तब 'इद्' भाग का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

अनयोः-ओस् से त्यादद्यत्व और पररूप होने पर 'अनाऽप्यकः' से अजादि विभक्ति ओस् परे होने से 'इद्' भाग को 'अन्' आदेश होकर 'अन ओस्' इस स्थिति में 'ओसि च' से अकार को एकार और उसको 'अय्' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

एषाम्-आम् में त्यादद्यत्व और पररूप करने पर अदन्त अङ्ग हो जाने से आम् को 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' से सुट् आगम हो गया, तब हलादि विभक्ति पर होने से 'इद्' भाग का 'हलि लोपः' सूत्र से लोप और झलादि बहुवचन 'साम्' परे होने से 'बहुवचने–' सूत्र से अकार को एकार आदेश हुआ। तब 'ए' साम्' इस दशा में

'आदेशप्रत्यययोः' से सकार को मूर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध हुआ। **अस्मिन्-**सप्तमी के एकवचन में और 'एषु' बहुवचन में पूर्वोक्त प्रकार से सिद्ध होंगे।

ध्यान रहे कि 'इदम्' शब्द में ङे, ङसि, ङस्, ङि और आम् की स्मै, स्मात्, स्य, स्मिन् आदेश और सुट् आगम के अनन्तर हलादि बन जाते हैं। इसलिये इनमें 'हलि लोपः' सूत्र से 'इद्' भाग का लोप हो जाता है, केवल अकार बचा रहता है। 'अनाऽप्यकः' सूत्र केवल 'टा' और 'ओस्' इन दो स्थानों पर लागू होता है। इन्हीं में 'अन् आदेश होता है।

नकारान्त शब्द, राजन् (राजा)

राजा-'राजन् स्' इस दशा में 'हल्ङ्याब्भ्यः' से सकार का लोप, नान्त उपधा को 'सर्वनामस्थाने–' से दीर्घ तथा नकार का 'न लोपः– से लोप होने पर यह रूप सिद्ध हुआ।

न ङि–सम्बुद्धयोः 8.2.8

नस्य लोपो न ङौ सम्बुद्धौ च। हे राजन्।

व्याख्याः नकार का लोप न हो ङि[15] और सम्बुद्धि परे रहते।

'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से प्राप्त नकारलोप का यह निषेध है। **हे राजन्-**यहां सम्बुद्धि होने के कारण प्रकृत सूत्र से नकार लोप का निषेध हुआ।

(वा) ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः। ब्रह्मनिष्ठः। राजानौ, राजानः। राज्ञः।

व्याख्याः उत्तर पद है परे जिसके, उस ङि के परे रहते नकारलोप का निषेध नहीं होता अर्थात् नकारलोप हो ही जाता है।

उत्तरपद समास के अन्त्य अवयव को ही कहते हैं-'उत्तरपदं समासचरमावयवे रूढम्'। **ब्रह्मनिष्ठः-**ब्रह्मणि निष्ठा यस्य स ब्रह्मनिष्ठः। यहां समास होने पर विभक्ति ङि का समास के नियम के अनुसार 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से लोप हो गया। प्रत्ययलक्षण से उसके लाने पर यहां प्राप्त नकारलोप का पूर्व सूत्र से निषेध प्राप्त था, उसका इस वार्तिक से निषेध हो जाने से नकार लोप हो ही गया। यहां उत्तरपद 'निष्ठा' परे है, यह समास का अन्त्य अवयव है।

राजानौ-'राजन् औ' यहां नान्त की उपधा को 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' सूत्र से दीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ। **राजानः-**यह जस् का रूप है, नान्तोपधा को दीर्घ हुआ।

राज्ञः-'राजन् शस् (अस्)' इस दशा में 'अल्लोपोऽनः' अन् के अकार का लोप और चवर्ग जकार के आगे होने से तवर्ग नकार को श्चुत्व ञकार होकर रूप सिद्ध हुआ। 'जञोर्ज्ञः' के अनुसार जकार और नकार के प्रयोग से 'ज्ञ' बन गया।

नलोपः सुप्–स्वर–संज्ञा–तुग्विधिषु कृति 8.2.2

सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धः, नात्यत्र–राजाश्व इत्यादौ। इत्यसिद्धत्वाद्–आत्वम्,

---

[15] . *यद्यपि ङि के अजादि प्रत्यय होने से उसके परे रहते पदान्त नकार वैसे तो कभी नही मिल सकता, पर वेद में 'सुपां सुलुक्–' सूत्र से लोप होने पर 'परमे व्योमन्' आदि स्थल इसके उदाहरण होंगे।*

एत्वम्, ऐस्त्वं च न। राजभ्याम्, राजभिः। राजभ्यः2। राज्ञि–राजनि। राजसु। यज्वा, यज्वानौ, यज्वानः।

व्याख्याः सुब्विधि, स्वरविधि, संज्ञाविधि और कृत् प्रत्यय परे रहते तुग्विधि के विषय में ही नकार का लोप असिद्ध होता है अन्यत्र नहीं।

यद्यपि 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' सूत्र से ही नकारलोप असिद्ध हो जाता है तथापि यह सूत्र 'सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्पते' अर्थात् सिद्ध कार्य के लिये पुनः विधान हो तो वह नियमार्थ होता है'– इस वचन के अनुसार नियम करता है कि 'नलोपो यद्यसिद्धो भवेत् तर्हि सुप्स्वरसंज्ञा–तुग्विधिष्वेव नान्यत्र' अर्थात् यदि नकार का लोप असिद्ध हो तो सुप्, स्वर, संज्ञा और तुग्विधि में ही हो, अन्यत्र नहीं! इसलिये 'राज्ञः अश्वो राजाश्वः' इत्यादि स्थलों में 'राजन् अश्वः, इस अवस्था में नकार लोप होने पर 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र के प्रति नलोप असिद्ध नहीं होता। क्योंकि यह सूत्र सुबादि विधियों में नहीं आता।

सुब्विधि से सुप् निमित्तक और सुप्स्थानिक दोनों प्रकार की विधियां ली जाती हैं। 'सुपि च' से दीर्घ सुप् परे रहते होता है, अतः यह सुप्निमित्तक है और 'अतो भिस् ऐस्' से सुप् भिस् के स्थान में 'ऐस्' आदेश का विधान है, अतः

यह सुप्स्थानिक विधि हैं 'वहवचने झल्येत्' भी सुप्निमित्तक विधि होने से सुप्विधि है। **इत्यसिद्धत्वादिति-** इस सूत्र से नकारलोप के असिद्ध होने से आत्व, एत्व और ऐस् आदेश नहीं होते। इसलिए 'न लोपः प्राति'–सूत्र से नकार के लोप होने पर 'राजभ्याम्' में 'सुपि च' से दीर्घ आकार, 'राजभिः' में 'अतो भिस् ऐस्' से भिस् को ऐस् और 'राजभ्यः' तथा 'राजसु' में बहुवचने झल्येत्' से अकार को एकार आदेश नहीं होते।

राज्ञि, राजनि-में 'विभाषा ङिश्योः' सूत्र से विकल्प से अन् के अकार का लोप हुआ। लोपपक्ष में-राज्ञि, अभाव पक्ष में-राजनि।

प्र. राजा राजानौ राजानः। च. राज्ञे राजभ्याम् राजभ्यः । सं. हे राजन् हे '' हे ''। . राज्ञः '' '' ।
द्वि. राजानम् '' राज्ञः। ष. '' राज्ञोः राज्ञाम् । तृ. राज्ञा राजभ्याम् राजभिः। स. राज्ञि राजनि ''
राजसु ।

'मघवन्' शब्द

मघवा बहुलम 6.4.128

मघवन् शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः। ऋ इत्।

'मघवन्' शब्द को 'तृ' अन्तादेश विकल्प से हो।

ऋ इत् इति-'तृ' आदेश का अन्त्य ऋकार इत् है।

ऋकार की इत्संज्ञा बताने का अभिप्रायः यह है कि 'तृ' आदेश अनेकाल् नहीं, क्योंकि 'नानुबन्धकृतम् अनेकाल्त्वम्– अर्थात् अनुबन्ध के द्वारा होने वाली अनेकाल्ता नहीं मानी जाती' इस परिभाषा से अनुबन्धकृत अनेकाल्त्व का निषेध हो जाता है। अतः 'तृ' आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान में नहीं होता, अपि तु अन्त्य के स्थान में होता है।

'मघवन्' शब्द के अन्त्य नकार को 'तृ' आदेश हो गया। तब 'मघवत्' शब्द बना और पक्ष में 'मघवन्' ही रहा। दोनों के अलग–अलग रूप बनेंगे।

उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः 7.1.70

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे। मघवान्, मघवन्तौ, मघवन्तः। हे मघवन्। मघवद्भ्याम् तृत्वाभावे। मघवा। सुटि राजवत्।

व्याख्याः धातुभिन्न उगित् (उक्–इ, उ, ऋ, लृ–जिसका इत् हो) और नकारलोपी (जिसके नकार का लोप हुआ हो) अञ्चु धातु को 'नुम्' आगम हो सर्वनामस्थान परे रहते।

मघवान्-यह प्रथमा के एकवचन का रूप है। यहां 'मघवत्' शब्द ऋकार–उक् के इत् होने से 'उगित्' है। प्रथमा के एकवचन सु सर्वनामस्थान परे रहते वकारोत्तरवर्ती अन्त्य अच् अकार के आगे 'नुम्' आगम हुआ। 'उम्' अनुबन्ध का लोप हुआ। तब 'मघवन् त् स्' इस अवस्था में पहले अपृक्त सकार का हल्ङ्यादि और फिर संयोगान्त पद के अन्त्य तकार का लोप होने पर 'सर्वनामस्थाने–' सूत्र से उपधा अकार को दीर्घ और 'न लोप–' से अन्त्य नकार का लोप होने से 'मघवा' रूप बना।

मघवन्तौ-'मघवन्+औ– इस दशा में प्रथम तृ अन्तादेश, तब 'उगिदचां' सूत्र से नुम् आगम होने से रूप सिद्ध हुआ। **हे मघवन्-**सम्बुद्धि में सकार का लोप होने पर तकार का संयोगान्त लोप होता है। नकार लोप का 'न ङि संबुद्ध्योः' सूत्र से निषेध हो जाता है।

प्र.	मघवा	मघवन्तौ	मघवन्तः।	च.	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः।
सं.	हे मघवन्	हे ''	हे '' ।	प.	''	मघवतः	'' ।
द्वि.	मघवन्तम्	''	मघवतः।	ष.	''	मघवतोः	मघवताम्।
तृ.	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः।	सं.	मघवति	''	मघवत्सु ।

इन रूपों में सर्वनामस्थान में 'नुम्' आगम हुआ। उसके आगे कोई विशेष कार्य नहीं होता। प्रक्रिया में इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि नकार को पहले 'नश्चापदान्तस्य–' सूत्र से अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य–' सूत्र से पुनः अनुस्वार को नकार होता है।

तृत्वाभावे इति-जब 'तृ' आदेश नहीं हुआ। तब जैसे रूप बनते हैं, वे यहां बताये जाते हैं।

मघवा-मघवन् शब्द को 'तृ' अन्तादेश जब न हुआ तब प्रथमा के एकवचन में 'मघवन्+सु' इस दशा में 'सर्वनामस्थाने......' सूत्र से उपधादीर्घ, अपृक्त सकार का हल्ङया से लोप होने पर 'न लोपः प्रातिपदिकातन्स्य' सूत्र से अन्त्य नकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

सुटीति-इस पक्ष में नकारान्त शब्द होने से नकारान्त राजन् शब्द के समान सुट् में (सु से औट् तक) रूप बनते हैं।

श्व–युव–मघोनामतद्धिते 6.4.133

अन्नन्तानां भानामेषामतद्धिते संप्रसारणम्। मघोनः। मघवद्भ्याम।

व्याख्याः श्वन् (कुत्ता), युवन् (युवा, जवान) और मघवन् (इन्द्र)–इन अन्नन्त भसंज्ञक अङ्गों को संप्रसारण हो तद्धितभिन्न प्रत्यय परे रहते।

मघोनः-मघवन् शब्द से शस में 'मघवन्+अस्' इस दशा में प्रकृत सूत्र से वकार यण् के स्थान में उकार संप्रसारण हुआ, 'सम्प्रसारणाच्च–' सूत्र से अग्रिम अकार का पूर्वरूप एकादेश होने पर 'मघ उन् अस्' ऐसी स्थिति बनी।

यहां अकार और उकार को ओकार गुण स को रुत्व विसर्ग होकर 'मघोन': रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार अन्य अजादि विभक्तियों में भी–जिनमें पूर्व की भसंज्ञा होती है–संप्रसारण आदि कार्य होकर रूप *बनेंगे और हलादि में 'राजन्' शब्द के समान रूप बनते हैं।*

1. *इस सूत्र के विषय में उक्तिप्रत्युक्ति रूप में एक रोचक सूक्ति प्रसिद्ध है, पूर्वार्ध में प्रश्न है और उत्तरार्ध में उत्तर–*

'कांचं मणिं कातुचनेमेकसूत्रे, ग्रथ्नासि बाले किमिदं विचित्राम्। विचारवान् पाणिनिरेकसूत्रो श्वानं युवानं मघवानमाह इति।। माला गूंथती हुई बाला से यह प्रश्न किया गया कि 'तुम कांच, मणि और सोने को एक सूत्र (तागे) में क्यों गूंथ रही हो! यह क्या गजब कर रही हो। वह उत्तर देती है-विचारवान् पाणिनि मुनि ने भी एक सूत्र में कुत्ते, युवा और इन्द्र को गूंथ दिया।

एवमिति-इसी प्रकार श्वन् और युवन् शब्द के भी रूप बनते हैं। श्वन् के शस् में–शुनः, टा–शुना, ङे–शुने, ङसि ङस्– शुनः, ओस्–शुनोः, आम्–शुनाम् ङि–शुनि।

'युवन्' शब्द में कुछ विशेष कार्य होता है उसे आगे बताया जा रहा है। 'युवन्' शब्द के विषय में शङ्का होती है कि यकार भी तो यण् है, इसको भी संप्रसारण होना चाहिये। यकार को प्राप्त संप्रसारण का अग्रिम सूत्र निषेध कर देता है।

न संप्रसारणे संप्रसारणम् 6.1.37

संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणं न स्यात्। इति यकारस्य मेत्वम्। अत एव ज्ञापकाद् अन्त्यस्य यणः पूर्वे संप्रसारणम् यूनः। यूना। युवभ्याम् इत्यादि। अर्वा हे अर्वन्

व्याख्याः संप्रसारण परे रहते पूर्व यण् को संप्रसारण न हो। **इति यकारस्येति-**
इसलिये यकार को इकार (संप्रसारण) नहीं हुआ।

'युवन्+अस्' इस स्थिति में वकार को संप्रसारण और पूर्व रूप होने पर 'यु उन् अस्' इस अवस्था में सवर्णदीर्घ करने पर 'यूनस्' इस स्थिति में यकार को संप्रसारण इकार प्राप्त होता है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। **अतएव इति-**इसी ज्ञापक (प्रमाण) से अन्त्य यण् को पहले संप्रसारण होता है।

इस कथन का आशय है कि यदि प्रत्यय यण् को पहले संप्रसारण कर दिया जाय तो कहीं भी पर संप्रसारण न मिलेगा, फिर इस सूत्र की प्रवृत्ति के लिये कोई स्थल नहीं रहेगा। अतः व्यर्थ होकर यह सूचित करता है कि-

'अन्त्य यण् को संप्रसारण पहले हो।' इस ज्ञापक (सूचना) के अनुसार पहले अन्त्य यण् वकार को संप्रसारण हो जायेगा और तब एक बार संप्रसारण हो जाने पर पूर्व यण् यकार को प्रकृत सूत्र से संप्रसारण का निषेध हो जायेगा। इस प्रकार सूत्र चरितार्थ होगा।

यूनः-'युवन्+शस्' इस दशा में पहले 'श्व–युव' सूत्र से वकार को संप्रसारण उकार होगा। तब यकार को प्राप्त संप्रसारण का 'न संप्रसारणे– इस प्रकृत सूत्र से निषेध हो जायेगा। पुनः 'यु, उ, न् अस्' इस स्थिति के बन जाने पर दोनों उकारों को सवर्णदीर्घ तथा सकार को रुत्व विसर्ग होने से रूप सिद्ध होगा। इसी प्रकार टा में–यूना, ङे–यूने, ङस्–यूनः, ओस्–यूनोः, आम्–यूनाम्, ङि–यूनि–ये रूप सिद्ध होंगे। **युवभ्याम्** युवन्+भ्याम्' इस स्थिति में पदान्त होने से नकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

पथिन् शब्द

पथिमथ्यृभुक्षामात् 7.1.85

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे

व्याख्याः पथिन् (मार्ग), मथिन् (मथनी, रई), ऋभुक्षिन्[1] (इन्द्र) इन शब्दों को आकार अन्तादेश हो सु परे रहते। पथिन् शब्द से सु परे रहते 'पथिन्+स्' इस दशा में नकार को आकार हो गया। 'पथि आ स्' ऐसी स्थिति बन गई।

इतोऽत् सर्वनामस्थाने 7.1.86

पथ्यादेरिकारस्याऽकारः सर्वनामस्थाने परे।

व्याख्याः पथिन् आदि के इकार को अकार हो सर्वनामस्थान परे रहते।

'पथि आ स्' इस स्थिति में 'पथिन्' के इकार को अकार हुआ। तब 'पथ आ स्' यह अवस्था हुई।

थो न्थः 7.1.87

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने। पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः।

व्याख्याः पथिन् और मथिन् शब्दों के थकार को 'न्थ' आदेश हो सर्वनामस्थाने परे रहते।

पन्थाः-प्रथमा के एकवचन में पूर्वोक्त प्रकार से 'पथ आ स्' ऐसी स्थिति बन जाने पर इस सूत्र से 'थ' को 'न्थ' आदेश हुआ। तब 'पन्थ् आ स्' यह दशा हुई। इस दशा में सवर्णदीर्घ और सकार को रुत्व तथा विसर्ग होकर पन्थाः रूप सिद्ध हुआ।

पन्थानौ और पन्थानः ये औ और जस् के रूप इसी प्रकार सिद्ध होगे। द्वितीया के एकवचन में-पन्थानम्, द्विवचन में पन्थानौ।

भस्य टेर्लोपः 7.1.88।

भस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः। पथः। पथा। पथिभ्याम्। एवम्–मथिन्। ऋभुक्षिन्।

व्याख्याः जसादि अजादि विभक्तियों में भ संज्ञा होती है, उनके परे रहते 'पथिन्' आदि की टि 'इन्' का लोप हो जाता है। **पथः-**'पथिन्+शस्' इस स्थिति में भसंज्ञक अङ्ग होने से 'पथिन्' की टि 'इन्' का लोप हो गया। तब 'पथ्+अस्'

ऐसी स्थिति बन जाने पर सकार को रुत्व विसर्ग करने से रूप सिद्ध हुआ। **पथाः-**'पथिन्+टा' इस दशा में सारे कार्य 'पथः' के समान होकर रूप सिद्ध होता है।

पथिभ्याम्-'पथिन्+भ्याम्' इस स्थिति में नकार का लोप 'न लोपः–सूत्र से होने पर रूप सिद्ध होता है।

1- 'आखण्डलः सहòाक्ष ऋभुक्षा' इत्यमरः।

2- ध्यान रहे 'मथिन्' शब्द से 'पथिन्' शब्द के बराबर ही सूत्र लगते हैं और ऋभुक्षिन् में 'थो न्थः' को छोड़कर शेष सब सूत्रा।

प्र.	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः	च.	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
स.	हे ''	हे ''	हे ''	पं.	पथः	''	''
द्वि.	पन्थानम्		पथः	प.	''	पथोः	पथाम्
तृ.	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः	स.	पथि	''	पथिषु

एवमिति-इसी प्रकार[2] मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्द के भी रूप बनेंगे। **मथिन्-**मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः। मन्थानम्, मन्थानौ, मथः इत्यादि।

ऋभुक्षिन्-ऋभुक्षाः, ऋभुक्षणौ, ऋभुक्षाणः। ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षः-इत्यादि।

दकारान्त शब्द

त्यद् (वह) तद् (वह) यद् (जो) एतद् (यह) शब्द[16]**।**

तदोः सः सावनन्त्ययोः 7.2.106

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात् सौ। स्यः, त्यौ त्ये। सः, तौ, ते। यः, यौ, ये। एषः, एतौ, एते, एतम्। अन्वादेशे–एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयोः।

व्याख्याः त्यद् आदियों के तकार और दकार, जो अन्तिम नहीं है, को सकार हो, सु परे रहते।

स्यः-त्यद् शब्द के सु में 'त्यद्+स्' इस दशा में सबसे पहले 'त्यदादीनामः' सूत्र से दकार को, अकार और 'अतो गुणे' सूत्र से पूर्व अकार को पररूप एकादेश होकर 'त्य+स्' यह स्थिति बनी, जिसमें 'त्यद्' अकारान्त शब्द बन गया। तब प्रकृत सूत्र से आदि तकार को सकार हुआ और सकार को रु और रकार को विसर्ग 'स्यः' रूप बना। त्यद्, तद्, यद् और एतद् इन चारों शब्दों में विभक्ति आने पर ही 'त्यदादीनामः' से दकार को अकार आदेश और पूर्व पर दोनों अकारों के स्थान में 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश करने पर त्य, त, य, और एत– इस रूप में अकारान्त बन जाते हैं। सर्वनाम भी ये हैं। अतः इसके रूप अकारान्त सर्वनाम 'सर्व' शब्द के समान बनते हैं।

त्य, त और एत में सु परे रहते प्रकृत सूत्र से तकार को सकार भी होता है। अतः–स्यः, सः और एषः ये रूप बनते हैं। 'एष' शब्द में स आदेश होने पर इण् एकार से परे होने के कारण 'आदेशप्रत्यययोः' सूत्र से मूर्धन्य षकार भी हुआ।

ध्यान रहे कि इन त्यद्, तद् यद् और एतद् शब्दों का त्यदादि होने से संबोधन विभक्ति में प्रयोग नहीं होता। **अन्वादेश इति-**'एतद्' शब्द को अन्वादेश में 'द्वितीया–' सूत्र से 'एन' आदेश होने से द्वितीया में., एनम्, एनौ, एनान्, टा–एनेन, ओस्–एनयोः–ये रूप 'इदम्' शब्द के समान ही बनते हैं।

युष्मद्[1] (तू) अस्मद् (मैं) शब्द।

इन दोनों शब्दों के रूप–साधक सूत्र एक ही हैं। इसलिए दोनों के रूप साथ–साथ सिद्ध किये जाते हैं।

यह भी ध्यान रहे कि मूल शब्दों से इनके सभी रूपों में पूर्णतः अन्तर पड़ जाता है। अतएव इनके सम्पूर्ण

[16] *. इन में त्यद् का प्रयोग प्रायः नहीं होता, पर शेष का प्रयोग बहुत अधिक होता है। अतः इनके रूप अच्छी तरह याद कर लेने चाहिये।*

रूप सिद्ध करने पड़ते हैं।

1- ये दोनों शब्द सर्वनाम है। परन्तु इनको अन्य कार्य हो जाने से सर्वनामसंज्ञा–प्रयुक्त विभक्ति कार्य प्रायः कोई नहीं होता। सर्वनाम होने का फल अकच् प्रत्यय होना है।

2- ध्यान रहे कि 'त्वम् और अहम्' रूपों में 'युष्मद्' और 'अस्मद्' का लेश भी नहीं दीखता। प्रायः सभी रूपों की यही दशा है।

ङे-प्रथमयोरम् 7.1.28

युष्मदस्मद्भ्यां परस्य 'ङे इत्येतस्य् प्रथमाद्वितीययोश्चाऽमादेशः।

व्याख्याः युष्मद् और अस्मद् से परे 'ङे' और प्रथमा तथा द्वितीया को 'अम्' आदेश हों

युष्मद् और अस्मद् से प्रथमा के एकवचन में 'युष्मद् सु' और 'अस्मद्+सु; इस अवस्था में 'सु' को 'अम्' आदेश हुआ। तब 'युष्मद्+अम्' और 'अस्मद्+अम्' यह स्थिति बनी।

त्वाऽहौ सौ 7.2.94

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाऽहौ आदेशौ स्तः।

व्याख्याः युष्मद् और अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त–युष्म् और अस्म्–भाग को क्रम से 'त्व' और 'अह' आदेश हों सु परे रहते।

'युष्मद्+अम्' और 'अस्मद्+अम्' इस स्थिति में मपर्यन्त भाग को 'त्व' और 'अह' आदेश हुए। तब 'त्व अद्+अम्' और अह अद्+अम् स्थिति हुई। इसमें 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप होकर 'त्वद्+अम्' और 'अहद्+अम्' बना।

शेषे' लोपः[1]7.2.90

एतयोष्टिलोपः। त्वम्। अहम्।

व्याख्याः (आत्व और यत्व की निमित्त विभक्ति से भिन्न विभक्ति परे रहते) इनकी 'टि' का लोप हो।

त्वम्[2]-'त्व अद् अम्' ऐसी स्थिति में 'अतो गुणे' से पर रूप हुआ और तब 'शेषे लोपः' सूत्र से टि अद् का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

अहम्-इसकी सिद्धि भी 'त्वम्' के समान ही होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसके मपर्यन्त भाग 'अस्म्' को 'अह' आदेश होता है। आत्व की निमित्त विभक्तियाँ-औ, द्वितीया और आदेश रहित हलादि हैं यथा यत्व की निमित्त–आदेश रहित अजादि विभक्तियां हैं। आत्व विधायक 'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्' 'द्वितीयायां च' और 'युष्मदस्मदोरनादेशे' ये तीन सूत्र हैं और यत्व का विधायक 'योऽचि; यह एक सूत्र है।

युवावौ द्विवचने 7.2.92

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ।

व्याख्याः द्वित्व संख्या विशिष्ट अर्थ के वाचक युष्मद् और अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त (युष्म्, अस्म्) भाग को क्रम से 'युव' और

'आव' आदेश हो विभक्ति परे रहते। इससे सभी द्विवचनों में 'युव' और 'आव' आदेश हो जायेंगे। औ और औट् का एक रूप तीनों 'भ्याम्' में एक और दोनों ओस् में एक रूप इस प्रकार तीन ही रूप यहां बनते हैं।

युवाम्, आवाम्-'युष्मद्+औ' और 'अस्मद्+औ' इस दशा में पहले 'ङे प्रथमयो–' सूत्र से औ को 'अम्' आदेश हुआ, तब मपर्यन्त युष्म् और अस्म् भाग को 'युव' और 'आव' आदेश हुए। फिर 'युव अद् अम' 'आव अद् अम' इस स्थिति के बन जाने पर 'अतो गुणे' से पररूप हुआ।

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् 7.2.88

ओङ्येतयोरात्वं लोके। युवाम्। आवाम्।

व्याख्याः औङ् परे रहते युष्मद् और अस्मद् शब्दों को आकार अन्तादेश हो लोक में।

'युवद् अम्' और 'आवद् अम्' इस स्थिति में अन्त्य दकार को आकार आदेश होने के अनन्तर वकारोत्तरवर्ती अकार के साथ आकार को सवर्णदीर्घ एकादेश होकर पुनः 'अम्' के साथ सवर्णदीर्घ हो युवाम् और आवाम् रूप सिद्ध हुए।

यहाँ आत्वनिमित्तक विभक्ति परे होने से 'शेषे लोपः' से टिलोप नहीं हुआ।

यूय–वयौ जसि 7.2.93

अनयोर्मपर्यन्तस्य। यूयम्। वयम्।

व्याख्याः इनके मपर्यन्त भाग को 'यूय' और 'वय' आदेश हो जस् परे रहते।

यूयम् वयम्-'जस्' को पहले 'ङे प्रथमयोः–' सूत्र से 'अम्' आदेश हुआ। तब मपर्यन्त भाग को 'यूय' और 'वय' आदेश होने पर 'यूय अद् अम' और 'वय अद् अम्' इस अवस्था में 'अतो गुणे' से पररूप होने पर 'यूयद् अम्' और 'वयद् अम्' इस स्थिति में 'शेषे लोपः' से 'टि' 'अद्'का लोप होकर यूयम् और वयम् रूप बने।

त्व-मावेकवचने 7.2.97

एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ।

व्याख्याः एकवचन अर्थ के वाचक युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को 'त्व' और 'म' आदेश हों विभक्ति परे रहते।

द्वितीया के एकवचन में 'युष्मद्+अम्' और 'अस्मद्+अम्' इस दशा में मपर्यन्त भाग को प्रकृत सूत्र से 'त्व' और 'म' आदेश होने पर 'त्व अद् अम्' और 'म अद्+अम्' यह स्थिति बनी। इसमें 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप होकर 'त्वद्+अम्' और 'मद्+अम्' यह अवस्था हुई।

द्वितीयायां च 7.2.87

अनयोरात् स्यात्। त्वाम्। माम्।

व्याख्याः युष्मद् और अस्मद् शब्द को आकार अन्तादेश हो द्वितीया विभक्ति परे रहते।

अन्त्य दकार को अकार आदेश होने पर 'त्व आ अम्' और 'म आ अम्' इस अवस्था में पहले पूर्व अकार और आकार को फिर 'अम्' के अकार के साथ सवर्णदीर्घ होने से 'त्वाम्' और 'माम्' रूप सिद्ध हुए।

शसो न 7.1.29

आभ्यां शसो न स्यात्। अमोऽपवादः। आदेः परस्य। संयोगान्तलोपः। युष्मान्। अस्मान्।

व्याख्याः युष्मद् और अस्मद् शब्द से परे शस् को नकार आदेश हो। **अम इति-**यह नकार आदेश 'ङेप्रथमयोः' सूत्र से प्राप्त 'अम्' आदेश का अपवाद (बाधक) है। **आदे इति-**पर को विहित होने से यह नकारादेश 'आदेः परस्य' सूत्र से पर के आदि को होगा।

युष्मान् अस्मान्'युष्मद्+अस्' और 'अस्मद्+अस्' इस अवस्था में पर अस् (शस्) के आदि अकार को नकार से 'युष्मद् न् स्' यह स्थिति हुई। यहां 'द्वितीयायाम्–' सूत्र से दकार को आकारादेश और सवर्णदीर्घ होकर 'युष्मान् स्' और 'अस्मान् स्' इस दशा में संयोगान्त सकार का 'संयोगान्तस्य' सूत्र से लोप होने पर 'युष्मान्' और 'अस्मान्'

रूप सिद्ध हुए।

योऽचि 7 2 89 . . अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशऽजादौ परतः। त्वया।

मया।

व्याख्याः युष्मद् और अस्मद् शब्दों को यकार आदेश हो अनादेश-जिसका कुछ आदेश न हुआ हो-अजादि विभक्ति परे रहते।

अलोन्त्यपरिभाषा से यकारादेश अन्त्य के स्थान में होगा।

त्वया, मया-युष्मद् और अस्मद् शब्दों के तृतीया के एकवचन में 'युष्मद्+आ' और 'अस्मद्+आ' इस दशा में

'त्वमा–' से मपर्यन्त आ को 'त्व' और 'म' आदेश, और 'अतो गुणे' से पररूप होने पर 'त्वद्+आ' और 'मद्+आ'

इस स्थिति में दकार को यकार आदेश हुआ। तब 'त्वया' और 'मया' ये रूप सिद्ध हुए।

युष्मदस्मदोरनादेशे 7.2.86

अनायोरात् स्याद् अनादेशे हलादौ विभक्तौ। युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। युष्माभिः। अस्माभिः।

व्याख्याः युष्मद् और अस्मद् अङ्ग को आकार हो अनादेश हलादि विभक्ति परे रहते। अलोऽन्त्य परिभाषा से आकार अन्त्य को ही होता है।

युवाभ्याम्, आवाभ्याम्-'भ्याम्' विभक्ति में 'युवावौ–' से मपर्यन्त भाग को 'युव' और 'आव' आदेश और 'अतो गुणे' से पररूप होने पर 'युवद् भ्याम्' और 'आवद्+भ्याम्' इस स्थिति में आदेश रहित हलादि विभक्ति 'भ्याम्' परे रहते दकार को आकार आदेश हुआ। तब सवर्णदीर्घ होकर युवाभ्याम् और आवाभ्याम् रूप सिद्ध हुए।

युष्माभिः अस्माभिः-यहां 'युष्मद्+भिस्' और 'अस्मद् + भिस्' इस स्थिति में दकार को आकार, सवर्णदीर्घ और रुत्व विसर्ग होते हैं।

तुभ्यमह्यौ ङयि7.2.95

अनयोर्मपर्यन्तस्य। टिलोपः। तुभ्यम्। मह्यम्।

व्याख्याः इसके मपर्यन्त भाग को 'तुभ्य' और 'मह्य' आदेश हो ङे परे रहते।

तुभ्यम्, मह्यम्-चतुर्थी के एकवचन में 'युष्मद्+ङे' इस दशा में पहले 'ङे प्रथमयोः' सूत्र से 'ङे' को 'अम्' आदेश हुआ। तब मपर्यन्त भाग को 'तुभ्य' ओर 'मह्य' आदेश और 'अतो गुणे' से पररूप होने पर 'तुभ्यद् अम्' और 'मह्यद् अम्' इस अवस्था में 'शेषे लोपः' से टि 'अद्' का लोप होने पर तुभ्यम् और मह्यम सिद्ध हुए।

भ्यसोऽभ्यम् 7.1.30

आभ्यां परस्य। युष्मभ्यम्। अस्मभ्यम्।

व्याख्याः इन दोनों–युष्मद् और अस्मद्–से परे 'भ्यस्' को 'अभ्यम्' आदेश हो।

युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम्-चतुर्थी के बहुवचन में 'युष्मद्+भ्यस्' और अस्मद्+भ्यस्' इस अवस्था में 'भ्यस्' को 'अभ्यम्' आदेश हुआ। तब युष्मद्+अभ्यम्' और 'अस्मद्+अभ्यम्' इस स्थिति में 'शेषे लोपः' सूत्र से टि 'अद्' का लोप होने से युष्मभ्यम्[17] और अस्मभ्यम् रूप सिद्ध हुए।

यहाँ विभक्ति का होने से 'न विभक्तौ' सूत्र से मकार के लोप का निषेध हो जाता है।

एकवचनस्य च 7.1.32

आभ्यां ङसेरत्। त्वत्। मत्।

व्याख्याः इन दोनों–युष्मद् और अस्मद्–से परे पचंमी के एकवचन ङसि को 'अत्' आदेश हो।

त्वत् मत्-पचंमी के एकवचन में 'युष्मद्+ङसि' और 'अस्मद्+ङसि' इस अवस्था में मपर्यन्त भाग को 'त्वमावेक–' से 'म' आदेश तथा 'अतो गुणे' से पररूप करने के अनन्तर 'ङसि' को प्रकृत सूत्र से 'अत्'आदेश हुआ, तब 'त्वद्+अत्' और 'मद्+अत्' इस स्थिति में शेष लोपः' सूत्र से टि 'अद्' का लोप होकर त्वत् और मत् रूप बने।

पंचम्या अत् 7.1.31

आभ्यां पंचम्या भ्यसोऽत् स्यात्। युष्मत्। अस्मत्।

व्याख्याः इन दोनों–युष्मद् और अस्मद्– से परे पंचमी के 'भ्यस्' को 'अत्' आदेश हो।

युष्मत्, और अस्मत्-पचंमी के बहुवचन में 'युष्मद्+भ्यस्' 'अस्मद्+भ्यस्' इस दशा में 'भ्यस्' को 'अत्' आदेश हुआ। तब 'शेषे लोपः' सूत्र से टि 'अद्' का लोप होकर युष्मत् और अस्मत् रूप सिद्ध हुए।

यहाँ 'भ्यस्' को अत् आदेश हो जाने से अनादेश विभक्ति न होने के कारण 'युष्मदस्मदोः' से आत्व नहीं हुआ। अत एव आत्व निमित्तक विभक्ति न होने से 'शेषे लोपः' से टि का लोप हुआ।

तवममौ ङसि 7.2.96

---

[17] . *यहाँ पर जान लेना आवश्यक है कि 'शेषे लोपः' सूत्र के अर्थ के विषय में दो पक्ष हैं। एक पक्ष तो यह है कि 'अन्त्य' का लोप होता है और दूसरा पक्ष 'शेषे' में सप्तमी की षष्टी के अर्थ में मानकर 'शेषस्य' मपर्यन्त भाग से अवशिष्ट भाग का अर्थात् टि 'अद्' मात्र का लोप होता है। अन्त्यलोप पक्ष में ही अकारान्त बन जाने से 'सुट्' मात्र का लोप होता है। अन्त्यलोप पक्ष में ही अकारान्त बन जाने से 'सुट्' की प्राप्ति है। उसी भावी 'सुट्' के निवारण के लिये 'साम्' कहा गया है। टिलोप पक्ष में 'अद्' का लोप होने से ये अकारान्त नहीं बनते, हलन्त ही रहते हैं। उसमें सुट् की प्राप्ति बाद को भी नहीं। अतः उस पक्ष में 'सुट्सहित' निर्देश की आवश्यकता नहीं।*

इसी प्रकार 'भ्यसोऽभ्यम्' में 'भ्यस्' को 'अभ्यम्'आदेश विधान टिलोप पक्ष में किया गया हैं अन्त्यलोप पक्ष में 'भ्यस्' आदेश से ही कार्य सिद्ध हो जाता है।

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि।

व्याख्याः इन दोनों–युष्मद् और अस्मद–के मपर्यन्त भाग को 'तव' और 'मम' आदेश हो 'ङस्' परे रहते। इस सूत्र से 'तव' और 'मम' आदेश होने के अनन्तर 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप होकर 'तवद्+ङस्'और 'ममद्+ङस्' यह स्थिति हुई।

युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् 7.2.97

तव। मम। युवयोः। आवयोः।

व्याख्याः युष्मद् और अस्मद् शब्दों से ङस् (षष्ठी के एकवचन) को 'अश्' आदेश हो। **तव, मम-**'ङस्' को 'अश्' आदेश होने पर 'तवद् अ' और 'ममद् अ' इस स्थिति में 'शेषे लोपः' सूत्र से 'टि' 'अद्' का लोप होकर तव और मम रूप बने।

यहाँ भी 'ङस्' को 'अश्' आदेश होने से विभक्ति के अनादेश न मिलने के कारण 'योऽचि' सूत्र से यत्व नहीं हुआ। अतएव, विभक्ति के यत्व निमित्तक न होने से 'शेषे लोपः' से टि का लोप हुआ।

युवयोः, आवयोः-'ओस्' में पहले 'युवावौ–' सूत्र से मपर्यन्त भाग को 'युव' और 'आव' आदेश हुए। तब 'अतो गुणे' से पररूप होने के अनन्तर 'युवद्+ओस्' और 'आवद्+ओस्' इस स्थिति में अनादेश अजादि विभक्ति ओ परे रहते दकार को 'योऽचि' सूत्र से यकार आदेश हुआ। रकार को रुत्व विसर्ग होकर युवयोः आवयोः रूप सिद्ध हुए।

साम आकम् 7.1.33

आभ्यां परस्य साम आकम् स्यात्। युष्माकम्। अस्माकम्। त्वयि। मयि। युवयोः। आवयोः। युष्मासु। अस्मासु।

व्याख्याः इन दोनों–युष्मद् और अस्मद्–से परे 'साम्' को 'आकम्' आदेश हो।

'आम्' को सुट् आगम होने से 'साम्' बनता है। सुट सहित 'आम्' को आकम् आदेश का इसमें विधान है। परन्तु 'युष्मद्' और 'अस्मद्' शब्द हलन्त हैं। इनसे परे 'आम्' को सुट् की प्राप्ति ही नहीं। अतः सुट् सहित 'आम्' के न होने से सूत्र में 'साम्' यह सकार सहित पढ़ना व्यर्थ है। इस आशङ्का का निवारण यों होता है कि यदि 'आम्' को ही 'आकम्' कर दिया जाय तो 'शेषे लोपः' से अन्त्यलोप' पक्ष में दकार का लोप होने पर ये शब्द अकारान्त बन जायेंगे और 'सुट्' होने लगेगा। उस भावी 'सुट्' की निवृत्ति के लिये सुट् 'आम्' को 'आकम्' का विधान किया है। अतः 'आकम्' होने के अनन्तर 'सुट्' नहीं होता।

युष्माकम्, अस्माकम्-षष्ठी के बहुवचन में 'युष्मद्+आम्' और 'अस्मद्+आम्' इस दशा में 'आम्' को 'आकम्' आदेश हुआ। तब 'शेषे लोपः' सूत्र से अन्त्यलोप पक्ष में दकार का लोप होकर 'युष्म+आकम्' और 'अस्म्+आकम्' इस स्थिति के बन जाने पर सवर्णदीर्घ होकर रूप सिद्ध हुए।

टिलोप पक्ष में 'अद्' टि का लोप होकर ही रूपसिद्ध हो जाते है सवर्णदीर्घ की आवश्यकता नहीं रह जाती।

त्वयि मयि-सप्तमी के एकवचन में 'युष्मद्+ङि' और 'अस्मद्+ङि' इस स्थिति में 'त्वमावे' सूत्र से मपर्यन्त भाग को 'त्व' और 'मम' आदेश और 'अतो गुणे' से पररूप होकर 'तवद्+इ' और 'मद्+इ' इस स्थिति में 'योऽचि' सूत्र से दकार को यकार होने से 'त्वयि' और 'मयि' रूप सिद्ध हुए।

युष्मासु, अस्मासु-बहुवचन में 'युष्मद्+सु' और 'अस्मद्+सु' इस अवस्था में 'युष्मदस्मदोः–' सूत्र से दकार को आकार होने के अनन्तर सवर्णदीर्घ होकर 'युष्मासु' और 'अस्मासु' रूप सिद्ध हुए। इन सब रूपों पर ध्यान

देने से पता लग जाता है कि केवल शस्, भिस् भ्यस् और सुप् इन वचनों के अतिरिक्त 'युष्मद्' और 'अस्मद्' शब्द का कुछ अंश भी नहीं रहता। बिल्कुल नया ही आकार हो जाता है। पूर्वोक्त बहुवचनों में 'युष्म' और 'अस्म' अंश रहता है।

युष्मदस्मदोः षष्ठी-चतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वानावौ 8.1.20

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठयादिविशिष्टयोः 'वाम्' 'नौ' इत्यादेशौ स्तः।

व्याख्याः षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्तियों से युक्त युष्मद् और अस्मद् शब्द जब किसी पद से परे हों,परन्तु पाद (श्लोक या ऋचा के चरण) के आदि में न हो तो, इनको क्रमशः 'वाम्' और 'नौ' आदेश होते हैं। 'युष्मद्' को 'वाम्' और 'अस्मद्' को 'नौ' होता है।

यह सूत्र यद्यपि तीनों विभक्तियों के सभी वचनों में सामान्य रूप से आदेश विधान करता है। तथापि अग्रिम तीन सूत्रों से बाध होने के कारण केवल द्विवचन में ही ये आदेश होते हैं।

बहुवचनस्य वस्नसौ 8.1.21

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नौ स्तः।

व्याख्याः पद से पर, पाद के आदि में न होने पर षष्ठ्यादि बहुवचनान्त युष्मद और अस्मद शब्दों को क्रम से 'वस्' और 'नस्' आदेश हों।

'युष्मद्' को 'वस्' और 'अस्मद्' को 'नस्' आदेश होता है सकार के रुत्व विसर्ग हो जाते है ये वस्, नस् आदेश

'वाम्' और 'नौ' आदेश के अपवाद (बाधक) हैं। सभी विभक्तियों के द्विवचन में 'वाम्' और 'नौ' तथा बहुवचन में 'वस्' और 'नस्' आदेश होते हैं।

एकवचन में सभी के समान आदेश नहीं होते। द्वितीया के एकवचन में 'त्वा' और 'मा' तथा चतुर्थी और षष्ठी के एकवचन में 'त' और 'मे' आदेश होते हैं।

तेमयावेकवचनस्य 8.1.22

उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः।

व्याख्याः पद से परे, पाद के आदि में न होने पर षष्ठी और चतुर्थी के एकवचन में युष्मद् और अस्मद् शब्दों को 'ते' और 'मे' आदेश हो।

1- 'नः पायादेकरदनः-गणेश हम सबकी रक्षा करें'—इस पद्यखण्ड में 'नः' का आदेशपाद के आदि में किया गया है। इसलिये यह चिन्त्य है।

2- वाक्य का परिष्कृत लक्षण यह है-एक तिङन्तार्थमुख्यविशेष्यक बोधजनकत्वम् अर्थात् वाक्य में एक तिङन्त का अर्थ मुख्य विशेष्य रहना चाहिए इसीलिए 'पश्य' मगृो धावति' यह भी एक वाक्य है। क्योंकि 'दौड़ते हुए मगृ को देखो' इस प्रकार यहां 'पश्य' इस एक तिङन्त का अर्थ ही मुख्य विशेष्य है।

3- इसी प्रकार 'योऽग्निर्हव्यवाट्, तस्मै ते नमः।' यहां द्वितीय वाक्य में अन्वादेश होने के कारण वाक्य में अन्वादेश होने से 'ते' आदेश हुआ है।

त्वामौ द्वितीयायाः 8.1.23

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः। श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात् ते मेऽपि शर्म सः। स्वामी ते मेऽ पि स हरिः, पातु वामपि नौ विभुः।। सुखं वांनौ ददात्वीशः, पतिर्वामपि नौ हरिः। सोऽव्यात् वो नः शिवं, वो नो, दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः।

व्याख्याः पूर्वोक्त प्रकार से युष्मद् और अस्मद् शब्द जब द्वितीया के एकवचन में हों तब उनको क्रम से 'त्वा' और 'मा' आदेश हो।

श्रीश इति-(इह) इस संसार में (श्रीशः) लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु (त्वा) तुम्हें (अवतु) पाले (मा अपि) मुझे भी। (स) वह (ते) तेरे लिये (मे) मेरे लिये (शर्म) कल्याण (दत्तात्) देवे। (स हरिः) वह भगवान् विष्णु (ते) तुम्हारा (मेऽपि) और मेरा भी (स्वामी) स्वामी है। (विभुः) व्यापक भगवान् (वाम्) तुम दो की (नौ अपि) हम दो की भी (पातु) रक्षा करे। (ईशः) सर्वशक्तिमान् परमात्मा (वाम्) तुम दो को (नौ) हम दो को (सुखम्) सुख (ददातु) देवे। (हरिः) भगवान् (वाम्) तुम दो का (नौ अपि) हम दो का भी (पतिः) स्वामी है। (सः) वह भगवान् (वः) तु सब की (नः) हम सब की (अव्यात्) रक्षा करे और (वः) तुम सब को (नः) हम सबको (शिवम्) कल्याण (दद्यात्) देवे। (अत्रा) इस संसार में (सः) वह भगवान् (वः) तुम सबका (नः) हम सब का (सेव्यः) सेवनीय है। इन दो पद्यों में उक्त चार सूत्रों के उदाहरण आ गये हैं। पहले तीनों विभक्तियों के एकवचन के, फिर द्विवचन के और अन्त में बहुवचन के उदाहरण दिये हैं। आदेशों के नीचे रेखा दे दी गई है ताकि वे पृथक् मालूम हो सकें।

ध्यान देने से प्रतीत होगा कि ये आदेश पद से पर को किये गये हैं और चरण[18] के आदि में नहीं किये गये हैं। जैसे पहला पद 'त्वा' द्वितीया का एकवचन है। वह 'श्रीशः' पद से पर है और पाद के आदि में नहीं। इसी प्रकार अन्य आदेश भी हैं।

इन आदेशों के विषय में कुछ थोड़े से नियम आगे और बताये जाते हैं। उनको भी ध्यान में रखना चाहिये।

(वा) एकवाक्ये युष्मद्स्मदादेशा वक्तव्याः।

एकतिङ् वाक्यम्। तेनेह न-ओदनं पच, तत्र भविष्यति। इह तु स्यादेव-शालीनां ते ओदनं दास्यामि।

व्याख्याः युष्मद् और अष्मद् शब्दों को ये आदेश होते हैं, एकवाक्य में ही हों।

एकतिङ् इति-एक[2] तिङन्त जिसमें हो उसे वाक्य कहते हैं अर्थात् वाक्य में एक ही तिङन्त पद रहता है। इसलिए यहां नहीं हुआ–'ओदनं पच, तव भविष्यति=भात, पका, तव (यह) तुमहारा हो जायेगा।' इसमें दो तिङन्त पद हैं

'पच' और 'भविष्यति'। इसलिए यह एक वाक्य नहीं, दो वाक्य हैं–'ओदनं पच' और तव भविष्यति'। पहले वाक्य 'पच' पद से परे द्वितीय वाक्य के 'तव' पद को 'ते' आदेश नहीं हुआ। क्योंकि कहा गया है कि ये आदेश एक ही वाक्य में होते हैं।

इह तु इति-यहां तो आदेश होगा ही–'शालीनां ते ओदनं दास्यामि–तुम्हें चावलों का भात दूंगा।' यह एक वाक्य है। क्योंकि इसमें 'दास्यामि' यह एक ही तिङन्त पद है। अतः 'शालीनाम्' इस पद से परे होने के कारण युष्मद् शब्द के चतुर्थ्यन्त पद 'तुभ्यम्' के स्थान में 'तेमयावेकवचनस्य' से 'ते' आदेश हुआ।

(वा) एते वांनावादयोऽनन्वादेशे वा वक्तव्याः।

---

[18] . *यह अर्थ 'पदाङ्गधिकारे तस्य च तदन्तस्य च् और 'निर्दिश्यमानस्यादेशाः भवन्ति' इन परिभाषाओं के अनुसार हुआ है। इनका सारा रहस्य 'जराया जरसन्यतरस्याम्' सूत्र मे स्पष्ट किया गया है। यहां परिभाषाओं के द्वारा सिद्ध अर्थ ही लिख दिया है।*

अन्वादेशे तु नित्यं स्युः। (अनन्वादेशे) धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तब भक्तोऽस्ति वा। (अन्वादेशे) तस्मै ते नमः। सुपात्, सुपाद्। सुपादौ।

व्याख्याः ये 'वाम्' 'नौ' आदि आदेश अनवादेश के अभाव मे विकल्प में हों। **अन्वादेशे इति-**(इसका फलितार्थ हुआ कि) अन्वादेश में नित्य हों।

अनन्वादेशे 'धाता से भक्तोऽस्ति'-अनवादेश का उदाहरण है। यहाँ अन्वादेश नहीं, क्योंकि पहले ही इसकी चर्चा की जा रही है। इस वाक्य में विकल्प से 'ते' आदेश होगा अतः यहां 'धाता तव भक्तोऽस्ति' 'ते' आदेश रहित यह वाक्य भी प्रयुक्त किया जा सकता है। **अन्वादेशे–तस्मै³ ते नमः'-**अन्वादेश का उदाहरण है। इस वाक्य में अन्वादेश है। क्योंकि 'धाता' ते वा तव भक्तोऽस्ति' इस प्रथम वाक्य में पहले इसकी चर्चा हो चुकी है। नमस्कार के लिये उसका पुनः विधान है।

चकारान्त शब्द प्राच् (पूर्व दिशा, काल और देश)

प्र उपसर्ग पूर्वक 'अंच्' धातु से 'ऋत्विग्–सूत्र से क्विन् प्रत्यय करने से यह शब्द बनता है। 'क्विन्' का सर्वापहार लोप होता है।

अनिदितां हल उपधाया क्ङिति 6.4.24

हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति। नुम्। संयोगान्तलोपः। नस्य कुत्वं न ङः। प्राङ्, प्रांचौ, प्रांचः।

व्याख्याः हलन्त अनिदित् (जिसके ह्रस्व इकार की इत् संज्ञा न हुई हो) अङ्ग के उपधा नकार का लोप हो कित् और ङित् प्रत्यय परे रहते। क्विन् प्रत्यय कित् है, उसके परे रहते हलन्त अङ्ग 'प्र अ न् च्' के उपधा नकार का लोप हो जाता है। तब शब्द का रूप 'प्र अ च्' रहता है।

नुम्-'प्र अच् स्' इस दशा में 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' सूत्र से नुम् आगम होता है।

संयोगान्तलोप इति-'प्र अ न् च् स्' इस दशा में अपृक्त सकार का हल्ङ्यादि लोप होने पर चकार पदान्त बन जाता है। वह संयोगान्त पद के अन्त में होने से 'संयोगान्तस्य' इस सूत्र के द्वारा होने वाले लोप का विषय बन जाता है।

नस्य इति-'प्र अ न्' इस स्थिति में नकार के स्थान में 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' सूत्र से कवर्ग ङकार आदेश हुआ। इन तीनों वचनों के द्वारा 'प्राङ्' की सिद्धि के लिये अपेक्षित विशेष कार्य बताये हैं।

प्राङ्-'प्रांच्' शब्द के प्रथमा के एकवचन में 'प्र अच्+स' इस अवस्था में 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' सूत्र से नुम् आगम हुआ तब 'प्रा न् च् स्' इस स्थिति में 'हल्ङ्याब्भ्यः' सूत्र से अपृक्त सकार का लोप हुआ। तब पदान्त बन जाने से संयोगान्त 'प्रा न् च्' पद के अन्त्य चकार का लोप हुआ। तब 'प्रान्' इस दशा में 'क्विन्प्रत्ययस्य–' सूत्र से नकार को कवर्ग ङकार होकर प्राङ् रूप बना।

'औ' 'जस्' 'अम्' और 'औट्' ये चारों भी 'सु' के समान सर्वनामस्थान प्रत्यय हैं। इनके परे रहते 'उगिदचां–' सूत्र से 'नुम्' आगम होता है और नकार को श्चुत्व से ञकार होकर औ में–प्रांचौ, जस् में–प्रांचः, अम् में प्रांचम् और औट् में–प्रांचौ रूप बनते हैं।

'शस्' से आगे अजादि विभक्ति परे रहते अङ्ग की भसंज्ञा भी होती है। शस् में भी भसंज्ञा हुई।

अचः 6.4.138

लुप्तनकारस्य अंचतेर्भस्याऽकारस्य लोपः।

व्याख्याः लुप्ताकार (जिसके नकार का लोप हुआ हो) भसंज्ञक अंचु के अकार का लोप हो।

'प्र अच्+इस' इस दशा में 'अंचु के नकार का लोप हुआ है और सर्वनामस्थान भिन्न अजादि शस् विभक्ति परे रहने से यह भसंज्ञक भी है। अतः इसके अकार का लोप हुआ। तब 'प्र च् अस' यह दशा हुई।

चौ 6.3.138 **लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः। प्राचः। प्राचा। प्राग्भ्याम्। प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ। प्रतीचः। प्रत्भ्याम्। उदङ् उदञ्चौ।**

व्याख्याः जिस अञ्चु के नकार और अकार का लोप हुआ हो, उसके परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ हो। **प्राचः-**'प्र च् अस्' इस दशा में लुप्ताकार नकार अञ्चु धातु 'च्' के परे रहते पूर्ण अण् 'प्र' के अकार को दीर्घ होकर प्राचः रूप सिद्ध हुआ।

टा आदि अजादि विभक्तियों के रूप शस् के समान अकार लोप और पूर्व अण् को दीर्घ करने से बनेंगे। हलादि विभक्तियों में भसंज्ञा न होने से अकार का लोप न होगा। किन्तु उस अकार का उपसर्ग के अकार के साथ सवर्णदीर्घ होगा, चकार को पदान्त होने से पहले जश्त्व जकार होगा और उसको 'चोः कुः' से कवर्ग गकार। सुप् में 'प्राक् सु' इस दशा में प्रत्यय के सकार को 'आदेशप्रत्यययोः' से मूर्धन्य षकार होकर प्राक्षु रूप बनता है।

तकारान्त महत् (बड़ा) शब्द।

उगित्वादिति-उगित् होने से नुम् ('उगिदचां सर्वनामस्थाने–' सूत्र से) हुआ।[19]

सान्त–महतः संयोगस्य 6.4.10

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारः, तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। महान्, महान्तौ, महान्तः। हे महन्। महद्भ्याम्।

व्याख्याः सान्त[1] इति-सकारान्त[20] संयोग और महत् शब्द का जो नकार उसकी उपधा का दीर्घ हो सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते।

महान्-'महत् स्' इस दशा में उगित् होने से नुम् आगम हुआ। तब 'मह् न् त् स्' इस स्थिति में हल्ङ्यादि लोप और संयोगान्तलोप हुए। तदनन्तर' 'महन्' इस दशा में नकारान्त उपधा को दीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ। **महान्तौ-**औ में नुम् और उपधादीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ। **महान्तः-**जस् में पूर्वोक्त प्रकार से रूप बना।

सर्वनामस्थान प्रत्ययों में नुम् और दीर्घ होता है, सम्बुद्धि में नहीं। शसादि अजादि विभक्तियों में कोई विशेष कार्य नहीं होता। हलादि विभक्तियों में जश्त्व दकार होता है। सुप् में खर् परे होने से चर् होता है।

---

[19]. अष्टाध्यायी में द्वित्वप्रकरण दो हैं एक छठे अध्याय में और दूसरा आठवें में। छठे अध्याय में पहले पाद के पहले सूत्रा 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' से और आठवें अध्याय में भी पहले पाद के पहले सूत्र 'सर्वस्य द्वे' से प्रारम्भ होता है। इनमें छठे अध्यायवाले द्वित्व प्रकरण में ही 'अभ्यस्तसंज्ञा होती है।

प्र.	महान्	महान्तौ	महान्तः	च.	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
सं.	हे महन्	हे ''	हे ''	पं.	महतः	''	''
द्वि.	महान्तम्	''	महतः	ष.	''	महतोः	महताम्
तृ.	महता	महद्भ्याम	महद्भिः	स.	महति	''	महत्सु

धीमत् (बुद्धिमान्) शब्द

अत्वसन्तस्य चाऽधातोः 6.4.14

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नाऽसन्तस्य चाऽसम्बुद्धौ सौ परे। उगित्वात् नुम्-धीमान् धीमन्तौ, धीमन्तः। हे धीमन्। शसादौ महद्वत्। भातेर्डवतुः। डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भवान्, भवन्तौ भवन्तः। शत्रन्तस्य–भवन्।

व्याख्याः 'अतु'[3] अन्त की उपधा को दीर्घ हो और धातुभिन्न जो अस्, तदन्त की उपधा को भी, असम्बुद्धि सु परे रहते।

'अतु से 'मतुप्' 'वतुप्' 'डवतु' आदि प्रत्ययों का ग्रहण होता है। 'धीमत्'[4] शब्द भी 'अत्वन्त' है।

धीमान्-प्रथमा के एकवचन में 'नुम्' आगम 'सु' के अपृक्त सकार का 'हल्–' से और तकार का 'संयोगान्तस्य–' से लोप होने पर 'धीमन्' यह स्थिति हुई। तब उपधा अकार को दीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ। 'सु' का लोप हो जाने पर भी प्रत्यय लक्षण कार्य उपधा दीर्घ 'प्रत्ययलोपे प्रत्यलक्षणम्' सूत्र के बल से हो जाता है। सम्बुद्धि में दीर्घ का निषेध होने से हे धीमन् और सर्वनामस्थान विभक्तियों में दीर्घ विधान न होने से **'धीमन्तौ, धीमन्तः, धीमन्तम्, धीमन्तौ'** ये रूप होते हैं।

शसादि विभक्तियों में महत् शब्द के समान ही रूप बनेंगे।

सकारान्त विद्वस् (विद्वान्) शब्द।

विद्वस् शब्द [21]वसुप्रत्ययान्त है। 'वसु' प्रत्यय के उकार के इत्संज्ञक हाोने के कारण यह उगित् है। अतः इनको सर्वनामस्थान परे रहते 'उगिदचां–' सूत्र से नुम् आगम होता है। **विद्वान्-**प्रथमा के एकवचन में नुम्, 'हल्ङ्यादि' लोप और संयोगान्त लोप होने पर 'विद्वन् स्' इस स्थिति में 'संयागान्त' लोप के असिद्ध होने के कारण 'सर्वनामस्थाने–' सूत्र से दीर्घ की प्राप्ति न होने से सकारान्त संयोग होने से 'सान्तमहतः–' सूत्र से दीर्घ होकर विद्वान् रूप बना।

अन्य सर्वनामस्थान प्रत्ययों में इसी प्रकार नुम् और दीर्घ होकर रूप बनेंगे। **हे विद्वन्-**सम्बुद्धि में दीर्घ के निषेध होने से हे विद्वन् रूप सिद्ध होता है।

वसोः संप्रसारणम् 6.4.131

वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणं स्यात्। विदुषः। 'वसुस्रंसु-' इति दः-विद्वद्भ्याम्

व्याख्याः वसुप्रत्ययान्त भसंज्ञक अङ्ग को संप्रसारण हो।

---

21 . *'उशना भार्गवः कविः' इत्यमरः।*

शस् से लेकर अजादि विभक्तियों से परे रहते भसंज्ञा होती है। अतः उन सब अजादि विभक्तियों में संप्रसारण हो। **विदुषः-**शस् में 'विद्वस्+अस्' इस दशा में संप्रसारण हुआ। 'संप्रसारणाच्च' सूत्र से अकार का पूर्वरूप होने पर 'विद्वस् अस्' इस स्थिति में सकार को रुत्व विसर्ग और उकार इण् से पर प्रत्यय 'वसु' के अवयव सकार को

'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र से मूर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध हुआ। सभी अजादि विभक्तियों में इसी प्रकार रूप सिद्धि होती है।

विद्वद्भ्याम् 'भ्याम्' में 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' सूत्र से सकार को दकार होकर विद्वद्भ्याम् रूप सिद्ध हुआ।

प्र.	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः	च.	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
सं.	हे विद्वन्	हे ''	हे ''	पं.	विदुषः	'	''
द्वि.	विद्वांसम्	''	विदुषः	ष.	''	विदुषोः	विदुषाम्
तृ.	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः	स.	विदुषि	''	विद्वत्सु

पुंसोऽसुङ् 7.1.89

सर्वनामस्थाने विवक्षितेऽसुङ् स्यात्। पुमान्, हे पुमन्। पुमांसौ। पुंसः। पुम्भ्याम्। पंसु। 'ऋदुशनस्-' इत्यनङ्- उशन्, उशनसौ।

व्याख्याः सर्वनामस्थान की विवक्षा में 'पुंस्' शब्द को असुङ् आदेश हो।

'असुङ्' में उकार और ङकार इत्संज्ञक है अतएव ङित् होने से यह अन्त्य सकार के स्थान में होता है। **पुमान्-**प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में 'पुंस्' के सकार को असुङ् आदेश हाने पर 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' से अनुस्वार भी अपने पूर्वरूप मकार में परिणत हुआ। तब 'पुम् स्' इस दशा में 'उगिदचां' सूत्र से नुम् आगम और अपृक्त सकार का 'हल्ङयादि–' लोप तथा 'पुमन् स्' इस स्थिति में सान्तमहतः–' सूत्र से सान्त संयोग की उपधादीर्घ होकर **पुमान्** रूप सिद्ध हुआ।

अन्य सर्वनामस्थानों में भी इसी प्रकार असुङ् आदेश, नुम् आगम और उपधादीर्घ होकर रूप बनते हैं। **हे पुमन्-**सम्बुद्धि में दीर्घ निषेध होने से **हे पुमन्** रूप बनता है। **पुंसः-**यह 'शस्' का रूप है। यहां कोई विशेष कार्य नहीं होता। इसी प्रकार अन्य अजादि विभक्तियों के भी रूप बनते हैं। **पुम्भ्याम्-**'भ्याम्' में सकार का 'संयोगान्त–' लोप होने पर 'मकार' को पुनः 'मोनुऽस्वारः–' से अनुस्वार और उसको परसवर्ण मकार होकर रूप सिद्ध हुआ। **पुंसु-**यहां स् का लोप और मकार को अनुस्वार हुआ। यय् परे न होने से परसवर्ण नहीं हुआ।

प्र.	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः	च.	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भयः
सं.	हे पुमन्	हे ''	हे ''	पं.	पुंसः	''	''
द्वि.	पुमांसम्	''	पुंसः	ष.	''	पुंसोः	पुंसाम्

तृ.	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः	स. पुंसि	''	पुंसु

अदस् (वह) शब्द।

अदस औ सुलोपश्च 7.2.107

अदस औत् स्यात् सौ परे, सुलोपश्च। 'तदोः सः-' इति सः-असौ। त्यादाद्यत्वम् पररूपत्वम् वृद्धि।

व्याख्याः 'अदस्' शब्द को औकार (अन्तादेश) हो सु परे रहते और 'सु' का लोप भी हो।

असौ-अदस् शब्द के सकार को 'त्यादादीनामः' सूत्र से अकार आदेश प्राप्त था। उसका यह सूत्र अपवाद है। अदस् + सु' यहां प्रकृत सूत्र से सकार को 'औ' आदेश और 'सु' का लोप हो गया। तब 'अद् औ' इस स्थिति में पूर्व आकार अवर्ण और अच् औकार के स्थान में 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि 'औ' एकादेश होने पर 'अदौ' इस दशा में 'तदोः सः-' सूत्र से अदस् के अनन्त्य दकार को सकार होकर असौ रूप सिद्ध हुआ।

त्यादाद्येति-'अदस्+ औ' यहां सब से पहले 'त्यदादीनामः' सूत्र से सकार को अकार हुआ। इसी के लिये 'त्यदाद्यत्वम्' तब 'अतो गुणे' से पररूप –हुआ। 'अद + औ' इस स्थिति में '33वृद्धि रेचि' सूत्र से प्राप्तवृद्धि का 'प्रथमयोः–' सूत्र के पूर्वसवर्णदीर्घ से बाध हुआ। इसका 'नादिचि' से निषेध, तब पुनः वृद्धि होकर 'अदौ' स्थिति बनी।

अदसोऽसेर्दादु दो मः8.2.80

अदसोऽसान्तस्य दात् परस्य उदूतौ, दस्य मश्च। आन्तरतम्याद् ह्रस्वस्य उः, दीर्घस्य ऊः। अमू। जसः शी, गुणः।

व्याख्याः असान्त (जिसके अन्त में सकार न हो) अदस् शब्द के दकार से पर वर्ण को उकार और ऊकार हो और दकार को मकार भी हो। जहाँ 'त्यदादीनामः' लगेगा, वहां अन्त में सकार न रहेगा, अतः वहीं इस सूत्र की प्रवृत्ति होगी।

यह सूत्र उकार और मकार आदेश रूप दो कार्य करता है। अत एव इस सूत्र का विधेय दोनों कार्यों को मिलाकर 'मुत्व' या 'मुभाव' कहा जाता है।

आन्तरतम्यादिति-परिणामरूप सादृश्य से ह्रस्व वर्ण को ह्रस्व उकार और दीर्घ वर्ण को दीर्घ ऊकार होगा। **अमू-**यहां पूर्वोक्त प्रकार से सिद्ध हुई 'अदौ' इस स्थिति में दकार से पर 'औ' वर्ण दीर्घ है। अतः उसको प्रकृत सूत्र से दीर्घ ऊकार हुआ और दकार को मकार। तब अमू रूप सिद्ध हुआ।

जसः शीति-जस् में त्याद्यत्व और पररूप होने पर अकारान्त बन जाने से अदन्त सर्वनाम से पर जस् को ' जसः शी' सूत्र से 'शी' आदेश हुआ। **गुण इति-**शकार के लोप होने पर गुण एकादेश हुआ। तब 'अदे' यह स्थिति हुई।

एत ईद् बहुवचने 8.1.81

अदसो दात् परस्यैत ईद्, दः च मो बह्वर्थोक्तौ। अमी। 'पूर्वत्रासिद्धम' इति विभक्तिकार्यं प्राक्, पश्चादुत्वमत्वे। अमुम्, अमू, अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां 'ना भावः।

व्याख्याः अदस् शब्द के दकार से परे 'एकार' को ईकार और दकार को मकार आदेश हो, बहुवचन में। **अमी-**यही पूर्व प्रदर्शित रीति से सिद्ध हुई 'अदे' इस स्थिति में 'अदे' बहुवचन है। अतः प्रकृत सूत्र से एकार को 'ई' कार और दकार को मकार होकर अमी रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार शस् को छोड़कर अन्य बहुवचनों में भी 'बहुवचने झल्येत्' से एत्व करने पर तब उत्व और मत्व होंगे। **पूर्वत्रासिद्धमिति-**उत्व मत्व के त्रिपादीस्थ होने से 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' के द्वारा असिद्ध होने के कारण पहले विभक्ति कार्य होंगे पीछे उत्व मत्व होंगे। सभी रूपों में उत्व मत्व अन्त में होंगे। **अमुम्-**'अम्' में त्यदाद्यत्व और पररूप तथा '135 अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करनेपर 'अद्' बना। यहां उत्व और मत्व हुआ तब अमुम् रूप बना। **अमून्-**शस् में त्यादाद्यत्व और पररूप करने पर 'अद अस्' इस अवस्था में '146 प्रथमयोः–' सूत्र से पूर्वसवर्णदीर्घ और तब सकार को '137 तस्माच्छसो–' सूत्र से नकार होकर 'अदान्' बन जाने पर उत्व और मत्व होकर अमून् रूप सिद्ध हुआ। दीर्घ होने से 'आ' कार को दीर्घ ही ऊकार हुआ।

मुत्वे कृते-'टा' में त्यादाद्यत्व और पररूप करने पर 'अद + टा' इस अवस्था में मुत्व–उकार और मकार आदेश–हुआ तो 'अमु + टा' यह स्थिति हुई। यहां 'शेषो ध्यसखि' सूत्र से ह्रस्व उकारान्त होने से घिसंज्ञा हुई और 'आङो ना–' सूत्र से 'टा' को 'ना' आदेश होने पर अमुना रूप सिद्ध हुआ।

यहां आशङ्का होती है कि 'आङो नाऽस्त्रियाम्7.3.120 इस सपादसप्ताध्यायीस्थ के प्रति '357 अदसोऽसेर्दादु दो मः 8.2.80। त्रिपादीस्थ मुभाव–उकार और मकार आदेश के असिद्ध होने के कारण ह्रस्व उकार के न मिलने से घिसंज्ञा की प्रवृत्ति न होगी और तब 'टा' को 'ना' कैसे हो सकता है तथा 'ना' आदेश करने पर भी मुभाव के असिद्ध होने से अदन्त अङ्ग के मिल जाने से 'सुपि च 7.3.102 से दीर्घ भी प्राप्त होता है। इस आशङ्का के निवारण के लिये अग्रिम सूत्र दोनों दशाओं में असिद्ध का निषेध करता है।

न मु ने 8.2.3।

'ना' भावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः। अमुना। अमूभ्याम्। अमीभिः। अमुष्मै। अमीभ्यः। अमुष्मात्। अमुष्य। अमुयोः। अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमीषु। इति सकारान्ताः। इति हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम्।

व्याख्याः 'ना' भाव करना हो अथवा कर लिया हो–इन दोनों अवस्थाओं में 'मु' भाव असिद्ध नहीं होता।

अमुना-अतः 'अमु + टा' इस दशा में जब ना भाव करने में मुभाव असिद्ध न हुआ तो ह्रस्व उकारान्त मिल जाने से घिसंज्ञा होकर 'ना' आदेश हो गया और 'ना' आदेश किये जाने पर भी मुभाव के असिद्ध न होने से अङ्ग के अदन्त न मिलने से दीर्घ भी नहीं हुआ। अतः अमुना रूप बना। **अमूभ्याम्-**'भ्याम्' में त्यदाद्यत्व और पररूप होने पर अङ्ग के अदन्त मिल जाने से 'सुपि च' सूत्र से दीर्घ होकर 'अदाभ्याम्' पहले बन गया। तब मुत्व होकर अमूभ्याम् रूप सिद्ध हुआ। दीर्घ होने से आकार के स्थान में दीर्घ ही ऊकार आदेश हुआ।

अमीभिः-'भिस्' में त्यदाद्यत्व और पररूप होने पर पूर्ववत् अङ्ग के अदन्त बन जाने से 'बहुवचने–' सूत्र से एकार होकर 'अदेभिः' बना। यहां '358 एतईद् बहुवचने' सूत्र से एकार को ईकार और दकार को मकार होने पर अमीभिः रूप सिद्ध हुआ। त्यदाद्यत्व और पररूप होने पर 'अद + भिस्' स दशा में अदन्त अङ्ग होने से '142 अतो भिस ऐस्' से 'भिस्' के स्थान में 'ऐस्' आदेश प्राप्त हुआ। पर उसका 'नेदमदसोरकोः' सूत्र से निषेध हो गया। **अमुष्मै-**'ङे' में त्यदाद्यत्व और पररूप करने पर 'अद ङे' इस दशा में अदन्त होने से 'ङे' को 'सर्वनाम्नः–' सूत्र से 'स्मै' आदेश होने पर 'अदसो–' सूत्र से मुत्व हुआ। तब इण् इकार से 'स्मै' (स्थानिवद्भाव से) प्रत्यय से सकार को 'आदेश प्रत्यययोः'

सूत्र से मूर्धन्य षकार होकर अमुष्मै रूप सिद्ध हुआ।

अमीभ्यः-की सिद्धि पूर्ववत् 'अदेभ्यः' बनाकर पश्चाद् 'एतईद ्' सूत्र से मत्व और ईकार करने से होती है। **अमुष्मात्-** 'ङसि' में त्यदाद्यत्व और पररूप करने पर 'अद ङसि' इस दशा में अदन्त होने से 'ङसिङ्यो–' सूत्र से 'ङसि' को 'स्मात्' आदेश होने पर 'अदसो–' सूत्र से मुत्व हुआ। तब 'अमु स्मात्' इस स्थिति में 'स्मात' (स्थानिवद्भाव से) प्रत्यय के सकार को 'आदेश–' सूत्र से मूर्धन्य षकार आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

अमुष्य-'ङस्' में त्यदाद्यत्व और पररूप करने पर 'अद् + ङस्' इस दशा में अङ्ग के अदन्त होने से 'टाङसि–' सूत्र से 'ङस्' को 'स्य' आदेश हुआ। तब मुत्व होने पर 'अमुस्य' इस दशा में 'स्य' (स्थानिवद्भाव से) प्रत्यय के सकार को मूर्धन्य षकार होकर अमुष्य रूप बना।

अमुयोः-'ओस्' में पूर्ववत् 'अद + ओस्' इस स्थिति के बन जाने पर अङ्ग के अदन्त होन से 'ओसि च' सूत्र से अकार को एकार और एकार को '22 एचोऽयवा–' सूत्र से 'अय्' आदेश हुआ। तब 'अदयोः' इस अवस्था में मुत्व होकर अमुयो' रूप सिद्ध हुआ।

अमीषाम्-'आम्' में पूर्ववत् 'अद + आम्' इस स्थिति के बन जाने पर अदन्त सर्वनाम होने से 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' सूत्र से 'आम्' को 'सुट्' आगम हुआ। तब झल् सकार आदि बहुवचन परे मिलने से 'बहुवचने–' सूत्र से अकार को एकार होकर 'अदसाम्' यह स्थिति हुई। यहां '38 एत ईद–' सूत्र से एकार को ईकार और दकार को मकार होने पर सकार को मूर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

अमुष्मिन्-'ङि' में 'अद + ङि' इस अवस्था में 'ङसिङ्योः' सूत्र से 'ङि' को स्मिन् आदेश हुआ। तब 'अद स्मिन्' इस दशा में मुत्व होने पर सकार को मूर्धन्य षकार होकर अमुष्मिन् रूप बा।

अमीषु-पूर्ववत् 'अदेसु' बन जाने पर 'एत ईद–' से एकार को ईकार और दकार को मकार होने पर सकार को मूर्धन्य षकार करने पर अमीषु रूप सिद्ध हुआ। सकारान्त शब्द समाप्त।

(हलन्त पुंल्लिङ्गप्रकरण समाप्त।)

3.3.2 हलन्त स्त्रीलिंग

चतुर् (चार)शब्द को 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृ–चतसृ' सूत्र से 'चतसृ' आदेश होता है, तब इसके रूप अजन्त 'तिसृ' शब्द के समान ही बनते हैं। **चतसृ-**जस् और शस् में प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घ को बाधकर 'अचि र ऋतः' सूत्र से ऋकार को रेफ आदेश और सकार को रुत्व विसर्ग होकर रूप सिद्ध हुआ।

चतसृणाम्-आम् में नुट् होने पर 'नामि' से प्राप्त दीर्घ का 'न तिसृ–चतसृ' से निषेध हो जाता है। णत्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

चतसृभिः, चतसृभ्यः 2, चतसृषु इन में कोई विशेष कार्य नहीं होता।

मकारान्त किम् शब्द।

का इति-किम् शब्द को 'किमः कः' सूत्र से 'क' आदेश होता है। तब अकारान्त होने से स्त्रीत्वविवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् प्रत्यय होकर 'का' यह आकारान्त शब्द बन जाता है, सर्वनाम यह है ही, अतः 'सर्वा' शब्द के समान ही इस के रूप बनते हैं।

इदम् (यह) शब्द।

यः सौ 7.2.110 इदमो दस्य यः इयम्। त्यदाद्यत्वम्, पररूपत्वम्, टाप्, 'दश्च' इति मः-इमे, इमाः। इमाम्। अनया। हलि लोपः-आभ्याम् आभिः। अस्यै। अस्याः। अनयोः। आसाम्। अस्याम्। आसु। त्यदाद्यत्वम्, टाप्, स्या,-त्ये, त्याः। एवम-तद्, एतद्। वाक्, वाग्। वाचौ। वाग्भ्याम्। वाक्षु। 'अप्' शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। 'अप्तनृ-' इति दीर्घः-आपः। अपः।

व्याख्याः इदम् शब्द के दकार को यकार हो सु परे रहते स्त्रीलिङ्ग में।

[22]**इयम्-**'इदम् स्' इस अवस्था में दकार को यकार हुआ। 'सु' का हल्ङ्यादि लोप होकर सिद्ध हुआ। **त्यदाद्यत्वमिति-**यह 'औ' आदि अजादि विभक्तियों के रूपों की साधन प्रक्रिया दिखाई है। **इमे-**'इदम् + औ' इस दशा में त्यदाद्यत्वेन मकार को अकार होने पर दकारोत्तरवर्ती अकार का उसके साथ 'अतो गुणे' से पररूप हुआ। तब 'इद औ' इस स्थिति में दकार को मकार हुआ। अकारान्त होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में यहां भी टाप् (आ) प्रत्यय होगा। तब सवर्णदीर्घ होने पर 'इ मा + औ' इस दशा में आबन्त से परे होने के कारण 'औ' को 'औङः शी' से 'शी' आदेश हुआ। तदनन्तर गुण होकर इमे रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार जस् में इमाः, अम् में इमाम् रूप सिद्ध होते है औट् में–इमे, शस् में–इमाः।

त्यदाद्यत्व, पररूप और टाप् करने पर यह इदम् शब्द आकारान्त 'इदा' बन जाता है। तब 'सर्वा' शब्द के समान ही रूप बनते हैं। 'टा' और 'ओस्' में 'इद्' भाग को 'अनाप्यकः' से 'अन्' आदेश होता है और हलादियों में 'हलि लोपः' से 'इद्' भाग का लोप होकर 'आ' मात्र शेष रहता है। ङित् वचन और आम् प्रत्यय स्याट् तथा सुट् आगम होने से हलादि बन जाते हैं। अतः उनमें भी 'इद्' भाग का लोप हो जाता है। रूप इसके मूल मे ंप्रायः सब आ गये हैं।

सकारान्त अदस् शब्द

असौ-अदस् शब्द के स्त्रीलिंङ्ग में सु परे होने पर पुंल्लिंग के समान ही असौ रूप बनता है। 'अदस औ सुलोपश्च' से सकार को औ और सु का लोप, 'तदोः सः–' सूत्र से दकार को सकार और वृद्धि होकर रूप सिद्ध हुआ। ध्यान रहे कि अदस् शब्द के स्त्रीलिङ्ग में 'सु' को छोड़कर सभी विभक्तियों में त्यदाद्यत्व, पररूप स्त्रीत्व विवक्षा के कारण टाप् प्रत्यय और सवर्ण दीर्घ होकर 'अदा' शब्द बन जाता है। तब आबन्त बन जाने से सर्वा शब्द के समान रूप बना लेने के अनन्तर मुत्व करना चाहिये। जहां दीर्घ आकार रहेगा, वहां ऊकार दीर्घ होगा। ङिद् वचनों में ह्रस्व हो जाने से उकार भी ह्रस्व होगा। इस प्रक्रिया को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेना चाहिए। **अमू-**'औ' में त्यदाद्यत्व और पररूप होने के अनन्तर अकारान्त बन जाने से स्त्रीलिङ्ग में '1245 अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् होकर 'अदा + औ' इस दशा में वृद्धि होकर 'अदौ' बन जाने पर '357 अदसोऽसेः–' से उत्व और मत्व होकर अमू रूप सिद्ध हुआ।

अमूः-जस् में भी पूर्ववत् 'अदा + अस्' ऐसी स्थिति बन जाने पर पूर्वसवर्णदीर्घ होने से 'अदाः' ऐसी दशा में मुत्व होकर अमूः रूप सिद्ध हुआ। **अमुया-**'टा' में पूर्ववत् 'अदा + आ' ऐसी स्थिति बन जाने पर 'आङि चापः' सूत्र से प्रातिपदिक के आकार को एकार आदेश और एकार को 'एचोऽय–' सूत्र से 'अय्' आदेश होने पर 'अदया' यह स्थिति बनी। इसमें मुत्व करने पर अमुया रूप सिद्ध हुआ।

अमूभिः-भिस् में पूर्ववत् 'अदाभिः' बन जाने पर मुत्व करने से अमूभिः रूप सिद्ध हुआ।

अमुष्यै-'ङे' में पूर्ववत् 'अदा + ए' बन जाने पर आबन्त सर्वनाम होने से 'सर्वनाम्नःस्याड् ह्रस्वश्च्' सूत्र से 'स्याट्'

---

[22] . *यहां त्यदाद्यत्व नहीं होता, क्योंकि उसको बाध कर 'इदमो मः' से मकार को मकार ही हो जाता है।*

आगम और आबन्त को ह्रस्व तथा 'स्या' के उत्तरवर्ती आ और ङे के ए को वृद्धि होकर 'अदस्यै' बन गया। तब मुत्व होने से 'अमुस्यै' इस दशा में उकार इण् से पर प्रत्ययावयव सकार को 'आदेश–' सूत्र से मूर्धन्य आदेश होकर अमुष्यै रूप सिद्ध हुआ। **अमूभ्यः-**'अदाभ्य'' बन जाने पर मुत्व होकर रूप सिद्ध हुआ। **अमुष्याः-**ङसि और ङस् में 'अदा + अस्' इस दशा में स्याट् आगम और अकार को ह्रस्व तथा सवर्णदीर्घ हाकर

'अदस्याः' इस स्थिति के बन जाने पर मुत्व और षत्व होकर अमुष्याः रूप सिद्ध हुआ। **अमुयोः-**'अदा + ओस्' इस दशा में 'आङि चापः' सूत्र से अकार को एकार और एकार को 'अय्' आदेश होने पर बनी हुई 'अदयोः' इस स्थिति में मुत्व होकर अमुयोः रूप बना। **अमूषाम्-**'अदा + आम्' यहां 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' से सुट् का आगम होने पर बनी हुई 'अदासाम्' इस स्थिति में मुत्व और षत्व होकर अमूषाम् रूप बना। **अमुष्याम्-**'अदस्याम्' बन जाने पर मुत्व और षत्व होकर अमुष्याम् रूप सिद्ध हुआ। **अमूषु-**सुप् में 'अदासु' इस स्थिति के बन जानेपर मुत्व और षत्व होकर अमूषु रूप सिद्ध हुआ।

(हलन्तस्त्रीलिंङ्गप्रकरण समाप्त।)

3.3.3 हलन्त नपुंसकलिंग

स्वमोर्लुक्, दत्वम्-स्वनडुत्, स्वनडुद्। स्वनडुही। 'चतुरनडुहोः–' इत्यात्वम्–स्वनड्वांहि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। वाः, वारी, वारि। वार्भ्याम्। चत्वारि। किम्, के, कानि। इदम्, इमे, इमानि।

व्याख्याः स्वमोर्लुक्-नपुंसक लिङ्ग होने से 'स्वमोर्नपुसंकात्' सूत्र से सु और अम् का लोप होता है

यह प्रक्रिया इस प्रकरण में सामान्य रूप से सभी शब्दों के लिये है, यद्यपि यहां 'स्वनडुह्' शब्द के लिए ही उल्लेख की गई–सी मालूम पड़ती है।

दत्वम्-सु और अम् का लोप होने पर 'स्वनडुह्' शब्द के हकार को पदान्त होने से 'वसुस्रंसु–' सूत्र से दकार आदेश होता है।

हकारान्त स्वनडुह्-(अच्छे बैलवाला, कुल आदि) शब्द के 'सु' और 'अम्' का –स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से लोप होने पर पदान्त बन जाने से हकार को 'वसुस्रंसु–' सूत्र से दकार और उसको 'वाऽवसाने' से वैकल्पिक तकार होकर दो रूप सिद्ध हुये **स्वनडुत्** और **स्वनडुद्।**

स्वनडुही-औ को 'नपुंसकाच्च' सूत्र से शी आदेश हुआ। शकार की इत्संज्ञा और लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

स्वनड्वांहि-जस् को 'जश्शसोः शिः' सूत्र से 'शि' आदेश और उसकी 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थान संज्ञा होने पर 'चतुर–नडुहोः–' सूत्र से अन्त्य अच् डकारोत्तरवर्ती उकार के आगे आम् आगम, उकार को यण् वकार और 'नपुंसकस्य झलचः' से अन्त्य अच् आकार के आगे नुम आगम तथा नकार को 'नश्चापदान्तस्य झलि' से अनुस्वार होकर **स्वनड्वांहि** रूप सिद्ध हुआ।

पुनरिति-फिर उसी प्रकार अर्थात् द्वितीया के रूप भी प्रथमा के सामन ही बनते हैं क्योंकि 'सु' के समान 'अम्' का भी लोप हो जाता है और जश् के समान शस् को भी शि आदेश होता है। औ और औट् तो सर्वथा समान है। फलितार्थ यह हुआ कि नपुंसक में प्रथमा और द्वितीया के एक जैसे रूप बनते हैं।

शेषमिति-शेष–तृतीया आदि के रूप –पुंल्लिङ्ग[23] के समान बनते हैं। अर्थात् पुंल्लिङ्ग 'अनडुह्' शब्द के समान ही बनेंगे।

वाः-रकारान्त वार् (जल) शब्द के आगे सु का लोप और रकार को विसर्ग हुए। **वारी-**औ को शी आदेश हुआ।

वारि-जस् को 'शि' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

यही रूप द्वितीया के भी बनेंगे। तृतीया आदि के रूपों में नपुंसकलिङ्गकृत कोई विशेषता नहीं होती, अतः साधारण नियम से रूप बनेंगे। **चत्वारि-**चतुर् शब्द से पर जस् और शस् को 'शि' आदेश और उसकी सर्वनामस्थान संज्ञा होने पर '259

चतुरनडुहोः–' सूत्र से आम् आगम तथा उकार् को यण् वकार होकर **चत्वारि** रूप सिद्ध होता है। शेष रूप साधारण नियम से पुंल्लिङ्ग के समान ही बनेंगे।

किम्-मकारान्त किम् शब्द के सु और अम् का लोप होकर किम्[24] यही रूप बन गया।

के-'औ' में 'किमः कः' से 'क' आदेश होने पर अदन्त शब्द बन गया, तब अदन्त शब्द के समान औ को शी आदेश और गुण एकादेश होकर रूप सिद्ध होगा।

कानि-'जस्' और 'शस्' में 'क' आदेश होने पर पूर्ववत् रूप सिद्ध होगा। शेष रूप पूर्ववत् पुंल्लिङ्ग के समान बनेंगे।

[25]**इदम्-**सु का लोप हुआ और रूप बन गया।

इमे-त्यदाद्यत्व, पररूप, 'औ' को शी आदेश, गुण और 'दश्च' दकार को मकार होकर रूप सिद्ध हुआ। **इमानि-**त्यदाद्यत्व, पररूप, शि आदेश, उसकी सर्वनामस्थानसंज्ञा, अकारान्त होने से नुम् आगम, उपधादीर्घ और दकार को मकार होकर रूप बना।

इसी प्रकार द्वितीया के रूप बनेंगे। शेष रूप पुंल्लिङ्ग के समान बनेंगे।

(वा) अन्वादेशे नपुंसके एनद् वक्तव्यः। एनत्, एनद्। एने। एनानि। एनेन। एनयोः अहः। विभाषा ङिश्योः- अह्नी, अहनी। अहानि।

व्याख्याः अन्वादेश में नपुंसकलिङ्ग में 'इदम्' और 'एतद्' शब्द को 'एनद्' आदेश हो।

यह वार्तिककार का वचन है। इसके आगे भाष्य में कहा है 'एनदिति नपुंसकैवचने' अर्थात् 'एनद्' यह आदेश नंपुसक के एकवचन सु अम् में हो। अतः एकवचन सु अम् में ही यह आदेश होता है, अन्यत्र तो 'एन' आदेश ही होता है।

---

23. अजन्तनपुंसकलिङ्ग प्रकरण में बताया जा चुका है कि प्रथमा और द्वितीया के एक समान रूप होते हैं। शेष रूप भी पुंल्लिङ्ग के समान ही होते हैं। अतः एव सिद्ध हुआ कि यहां केवल प्रथमा के रूप ही सिद्ध करने होते हैंµ उन्हीं में अन्तर पड़ता है। इनमें भी विशेष रूप से द्विवचन और बहुवचन में। एकवचन में तो 'सु' और 'अम्' का लोप हो जाने से कोई विशेष कार्य नहीं होता। अतः यहां केवल प्रथम तीन रूपों की सिद्धि प्रायः आयेगी, बल्कि दो की ही द्विवचन और बहुवचन की। एकवचन में तो जैसा शब्द का रूप होता है प्रायः वैसा ही होगा। इसमें प्रत्ययलक्षण कार्य भी नहीं होता, 'न लुमताङ्गस्य' के निषेध होने से।

24. विभक्ति पर न होने से 'क' आदेश नहीं हआ। 'न लुमताङ्गस्य' के निषेध होने से प्रत्ययलक्षण से भी नहीं हो पाता।

25. विभक्ति के लुक् हो जाने से त्यदाद्यत्व नहीं हो पाता। प्रत्ययलक्षण से भी नहीं होता क्योंकि 'न लुमताङ्गस्य' से उसका निषेध हो जाता है। '272 इदमो मः' सूत्र से भी त्यदाद्यत्व का बाध होता है।

एनत्-'सु' 'अम्' के लोप होने पर 'इदम्' को 'एनद्' आदेश हुआ। तब वैकल्पिक चर्त्व होने से दो रूप बने।

एने-आदि शेष स्थलों में 'एन' आदेश ही हुआ।

शकृत्, द्-तकारान्त शकृत् (विष्ठा, मल) शब्द के सु का लोप होने पर तकार को 'झलां जशः–' से जश् दकार और उसको अवसान होने के कारण विकल्प से चर् तकार होकर शकृत्, शकृद् रूप बनते हैं।

शकृती-औ को शी आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

शकृन्ति-जस् को शि आदेश, उसकी सर्वनामस्थानसंज्ञा, झलन्त होने से नुम्, अनुस्वार और परसवर्ण होकर रूप की सिद्धि हुई। द्वितीया के रूप प्रथमा के समान और शेष का पुंल्लिङ्ग 'महत्' के समान बनेंगे।

ददत्-(देता हुआ) शब्द के सु और अम् में ददद् और औ औट् में ददती रूप पूर्ववत् सिद्ध होते हैं।

वा नपुंसकस्य 7.1.79

अभ्यस्तात् परो यः शता, तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने। ददन्ति, ददति। तुदत्।

व्याख्याः अभ्यस्त से परे जो शतृ प्रत्यय, तदन्त नपुंसकलिङ्ग शब्द को विकल्प से नुम् आगम हो सर्वनामस्थान परे रहते।

ददन्ति, ददति-जस् को शि आदेश और उसकी सर्वनामस्थानसंज्ञा होने पर प्रकृत सूत्र से विकल्प से नुम् हुआ, क्योंकि ददत् की 'उमे अभ्यस्तम्' सूत्र से अभ्यस्त संज्ञा होती है। अतः उक्त दो रूप बने। शस् का भी यही रूप बनेगा।

शेष रूप पूर्ववत् पुंल्लिङ्ग 'महत्' शब्द के समान बनेंगे। **तुदत्-**(पीड़ा पहुंचाता हुआ) शब्द के सु और अम् का लोप होकर पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ।

[6]आच्छी[6]नद्योर्नुम्[26] 7.1.80

अवर्णान्ताद् अङ्गात् परो यः शतुरवयवः, तदन्तस्य अङ्गस्य नुम् वा शीनद्योः। तुदन्ती, तुदती। तुदन्ति।

व्याख्याः अवर्णान्त अङ्ग से परे जो शतृ का अवयव तदन्त अङ्ग को नुम् आगम विकल्प से हो शी और नदी 'ङीप् प्रत्यय के ईकार' परे रहते।

तुदन्ती, तुदती-तुदत्1 शब्द में अवर्णान्त अङ्ग 'तुद्' है, उससे परे शतृ का अवयव तकार है तदन्त 'तुदत्' अङ्ग को शी परे रहते विकल्प से नुम् होकर दो रूप बने **तुदन्ती, तुदती।**

तुदन्ति-जस् और शस् का रूप है, उनको 'शि' आदेश होने पर यहां 'नपुंसकस्य झलचः' से नित्य नुम् होकर रूप सिद्ध हुआ। शेष रूप पुंल्लिङ्ग के समान बनेंगे।

[6]शप्श्यनोर्नित्यम्[1] 7.1.81

शप्श्यनोरात् परो यः शतुरवयवः, तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः। पचन्ती। पचन्ति। दीव्यन्ती। दीव्यन्ति। धनुः। धनुषी। 'सान्त-' इति दीर्घः, 'नुम्विसर्जनीय-' इति षः धनूंषि। धनुषा। धनुर्भ्याम्। एवम्-चक्षुर्हविरादयः। पयः,

---

[26]. *तुद् धातु से शतृ प्रत्यय होने पर धातु से श हुआ। तब 'तुद् अ अत्' इस दशा में श के अकार और शतृ के अकार को पररूप एकादेश होने पर 'तुदत्' यह शब्द बना है।*

पयसी, पयांसि। पयसा। पयोभ्याम्। सुपम्, सुपुंसी, सुपुमांसि।

व्याख्याः शप् और श्यन् के अकार[27] से परे जो शतृ का अवयव, तदन्त को नित्य नुम् को शी और नदी [28] (ङीप् का ईकार) परे रहते।

यह नित्य विधान पूर्वोक्त विकल्प का बाधक है। **पचन्ती-**पच् धातु से शतृप्रत्यय करने पर बीच में शत् होने से 'पच् अ अत्' इस दशा में पररूप होकर पचत् शब्द बनता है। इसमें शप् का अकार 'अन्तादिवच्च' के अतिदेश से है, उससे पर शतृ का अवयव तकार है। तदन्त पचत् शब्द को शी परे रहते नुम् नित्य हुआ। तब **'पचन्ती'** यह रूप सिद्ध हुआ। **पचन्ति-**जस् शस् में तुदन्ति के समान ही सिद्ध होता है। शेष रूप पुंल्लिङ्ग के समान ही बनते हैं।

दीव्यत्-(खेलता हुआ आदि) शब्द के रूप पचत् के समान ही बनते हैं। इस में श्यन् प्रत्यय होने से शी परे रहते नित्य ही नुम् होता है। **दीव्यन्ती-**'दीव्यत् + औ' इस स्थिति में 'औ' को शी आदेश होने पर श्यन् से शतृ प्रत्यय का अवयव तकार है, अतः तदन्त दीव्यत् शब्द को 'शप्श्यनोर्नित्यम्' सूत्र से नित्य नुम् आगम होगा। नुम् आगम 'मिदचोऽन्त्यात्परः' इस परिभाषा के बल से अन्त्य अच् रकारोत्तरवर्ती अकार के आगे और उसी का अवयव होकर आयेगा। इस प्रकार इस रूप की सिद्धि होती है। **दीव्यन्ति-**जस् और शस् में यह रूप बनता है। इसकी सिद्धि उपर्युक्त प्रकार से ही होती है

इति हलन्तनपुंसकलिंग

3.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. 'लिट्' शब्दसिद्धि में 'ह्' के स्थान पर 'ढ्' आदेश किस सूत्र से होता है?
2. सम्प्रसारण संज्ञा विधायक सूत्र का निर्देश कीजिए।
3. 'रषाभ्यां नो णः' सूत्र का क्या कार्य है
4. 'किम्' के स्थान पर 'क' आदेश किस सूत्र से होता है?
5. 'मम' यह किस विभक्ति एवं वचन का रूप है?
6. नुम् विधायक सूत्र का उल्लेख कीजिए।
7. 'शप्श्यनोर्नित्यम्' इस सूत्र से आप क्या समझते हैं?
8. 'चतुर्' शब्द को स्त्रीलिङ्ग में 'चतसृ' आदेश किस सूत्र से होता है?

---

[27]. अवर्णान्त अङ्ग से परे शतृ का अवयव भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि इन चार गणों में मिलता है। भ्वादि और चुरादि में शप् के, दिवादि में 'श्यन्' के यकारोत्तरवर्ती तथा तुदादि में श के अकार से अङ्ग अवर्णान्त बनता है। अतः शप् और श्यन् के स्थल में नित्य नुम् विधान होने से भ्वादि, दिवादि तथा चुरादि धातुओं के शतृप्रत्ययान्त शब्दों से 'औ' को शी आदेश होने पर नित्य नुम् होता है, तुदादिगण की धातुओं से सिद्ध शतृप्रत्ययान्त शब्दों से विकल्प से शेष गणों की धातुओं से निष्पन्न शब्दों से होता ही नहीं क्योंकि उनमें 'शप' नहीं होता, अतः इन दोनों सूत्रों की प्रवृत्ति वहां होती ही नहीं।

[28]. शतृप्रत्ययान्त शब्दों के उगित् होने से स्त्रीत्वविवक्षा में 'उगितश्च' से ङीप् प्रत्यय होता है। ङीप् का ई शेष रहता है। दीर्घ ई होने से इसकी नदी संज्ञा होती है। भ्वादि, दिवादि और चुरादि गण के शतृप्रत्ययान्तों से नित्य, और तुदादि के शतृप्रत्ययान्त शब्दों से विकल्प से नुम् होता है तथा अन्य गण वालों से नहीं होता। जो रूप शी में बनता है। वही स्त्रीलिङ्ग में भी, समान नियम होने से। यदि शी में नुम् नित्य होगा, तो स्त्रीलिङ्ग में भी नित्य ही होगा और यदि विकल्प से होगा तो स्त्रीलिङ्ग में भी विकल्प से ही होगा तथा यदि शी में नहीं होगा तो स्त्रीलिङ्ग में भी नहीं होगा। यथा–शी–पचन्ती स्त्री–पचन्ती, शी–तुदन्ती, तुदती, स्त्री–तुदन्ती, तुदती। शी–मुष्णती, स्त्री–मुष्णती। इसी प्रकार अन्यत्र समझना चाहिये।

3.5 निष्कर्ष

प्रस्तुत इकाई में ऐसे सुबन्त शब्दों को रखा गया है जो प्रकृत्या हलन्त है। भाषा की दृष्टि से सभी शब्दों से परिचय आवश्यक है। इसलिए लिह्, दुह् जैसे दुरुह शब्दों को भी पढाया गया, जिससे कोई शास्त्रीय पक्ष रहे नहीं। युष्मद्, अस्मद् शब्दों को भी सुगमता से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है, यद्यपि इनकी प्रक्रिया अन्य शब्दों की अपेक्षा थोड़ी जटिल है। किम्, इदम्, अदस् जैसे शब्दों को भी सभी लिङ्गों में प्रकृति प्रत्ययपूर्वक विश्लेषण किया गया है, जो कि समझने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। इसके अन्तर्गत जो आद्यन्तवत् इत्यादि परिभाषाएं एवं सम्प्रसारण आदि संज्ञाएं आती हैं उनका स्वरूप एवं अनुप्रयोग भी सरलता से समझाया गया है।

3.6 पदविश्लेषण

1. सम्प्रसारण– यण् के स्थान पर प्रयुज्यमान जो इक् है उसकी सम्प्रसारण संज्ञा होती है।
2. आप्– आप् यह प्रत्याहार है। यह प्रत्याहार टा से लेकर सुप् तक है अर्थात् तृतीया विभक्ति से सप्तमी विभक्ति तक।
3. बहुलम्– क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद् विधानं, क्वचिदन्यदेव। विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।। कहीं पर प्रवृत्ति हो जाना, कहीं पर प्रवृत्ति न होना। कहीं पर विकल्प प्रसक्ति एवं कहीं कुछ और ही। विद्वानों ने 'बहुलम्' को चार प्रकार से परिभाषित किया है।
4. अनन्त्य– जो अन्तिम नहीं है।
5. शेष– जो बच गया है।
6. उपधा– अन्तिम अल् (वर्ण) से पूर्ववर्ती वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।
7. नित्यम्– अनिवार्य रूप से हमेशा प्रवृत्त होने वाले को व्याकरण में नित्य कार्य कहते हैं।
8. भाषायाम्– लोक में (लौकिक व्यवहार में)

3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. हो ढः
2. इग्यणः सम्प्रसारणम्
3. णत्व विधान
4. किमः कः
5. अस्मद् शब्द, षष्ठी विभक्ति, एकविचन
6. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः
7. शप् और श्यन् के अकार से परे जो 'शतृ' का अवयव, तदन्त को नित्य 'नुम्' आगम हो, शी और नदी (ङीप् का ईकार) परे रहते।
8. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ।

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'दुह्' के 'ह्' को 'घ्' आदेश किस सूत्र से होता है?
2. 'विश्वौहः' यहां पर 'वाह्' के स्थान पर 'ऊठ्' आदेश किस सूत्र से होता है?
3. 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से आप क्या समझते हैं?
4. 'इदमो मः' सूत्र क्या करता है?
5. 'मघवा बहुलम्' सूत्र से 'बहुलम्'पद की उपयोगिता बतायें।
6. 'त्वम्' यहां पर 'अद्' भाग का लोप किस सूत्र से होता है।
7. 'इयम्' यहां पर 'द' के स्थान पर 'य' आदेश किस सूत्र से होता है।
8. 'तुदन्ती' यहां पर नुम् आगम किस सूत्र से होता है।

3.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

लघुसिद्धान्त कौमुदी वरदराज आचार्यकृत

टीकाएं

भीमसेन शास्त्री (भैमीव्याख्या)

धरानन्द शास्त्री

ईश्वर सिंह

डॉ. सत्यपाल सिंह

इकाई – 4

समास प्रकरण

4.1 परिचय

4.2 उद्देश्य

4.3 समास

4.3.1 केवल समास

4.3.2 अव्ययीभाव समास

4.3.3 तत्पुरुष समास

4.3.4 बहुव्रीहि समास

4.3.5 द्वन्द्व समास

4.4 अपनी प्रगति जांचिये

4.5 निष्कर्ष

4.6 पदविश्लेषण

4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

4.1 परिचय

'समास' संस्कृत व्याकरण का एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण है। वैयाकरणों ने समास का लक्षण निम्न प्रकार से किया है–

विभक्तिर्लुप्यते यत्र तदर्थस्तु प्रतीयते।

पदानां चैकपद्यं च समासः सोऽभिधीयते।।

अर्थात् जहां विभक्ति का लोप हो जाता है लेकिन उसका अर्थ प्रतीत होता है। जहां अनेक पद भी एक पद में परिवर्तित हो जाते हैं उसे समास कहा जाता है। समास शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी की जा सकती है– समसनं समासः, इसका अभिप्राय है एक साथ या पास–पास रखना। समास में मुख्य तत्व यही होता है। समास में दो या दो से अधिक पदों को साथ रखते हैं तो उनकी विभक्ति का तो लोप होकर के एक पद बन जाते हैं परन्तु विभक्ति का अर्थ बना रहता है। इस प्रकार इन पदों की स्वतन्त्र सत्ता समाप्त होकर एक नया पद अस्तित्व में आ जाता है। इन समस्यमान पदों की अपनी विभक्तियां, जिन्हें अन्तर्वर्त्तिनी विभक्ति भी कहा जाता है, उनके लोप हो जाने से समास में कुछ संक्षिप्तता भी आ जाती है, समास का एक अर्थ संक्षेप भी होता है।

प्रस्तुत इकाई में समास प्रकरण पर विस्तृत चर्चा की गयी है। वरदराज ने समास के पांच प्रकारों की चर्चा की है– केवल समास, अव्ययीभाव समास, तत्पुरुष समास, बहुव्रीहि समास एवं द्वन्द्व समास। यहां पर इन सभी पांच प्रकार के समासों की परिभाषा, विधायक सूत्र, उनकी व्याख्या, शास्त्रीय उदाहरणों के साथ साथ लौकिक उदाहरणों के माध्यम से सरलतापूर्वक समझया जायेगा।

4.2 उद्देश्य

1. प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से समास का स्परूप स्पष्ट होगा।
2. 'समर्थः पदविधिः' सूत्र का अर्थ एवं उसका अनुप्रयोग समझ पायेंगे।
3. समस्त पदों की रूपसिद्धि की प्रक्रिया को जान पायेंगे।
4. अव्ययीभाव समास के स्वरूप एवं प्रयोग को समझ पायेंगे।
5. तत्पुरुष समास के सभी भेदों का सोदाहरण बोध होगा।
6. बहुव्रीहि समास की विशेषताएं समझ सकेंगे।
7. द्वन्द्व समास के प्रयोग को जान पायेंगे।
8. 'च' शब्द के सभी अर्थों एवं उनमें स्पष्ट अन्तर को समझ सकेंगे।

4.3 समास

4.3.1 केवल समास

समासःपंचधा। तत्र समसनं समासः।

स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः। प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः। प्रायेणोत्तरपदार्थ–प्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः तत्पुरुषभेदःकर्मधारयः, कर्मधारय–भेदो द्विगुः। प्रायेणाऽन्यपदार्थ–प्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः। प्रायेणोभयपदार्थ–प्रधानो द्वन्द्वः पंचमः।

व्याख्याः समास इति–समास पांच प्रकार का होता है। **तत्रेति** समसन–संक्षेपको समास कहते हैं।

अनेक पदों का एक पद बन जाना समसन होता है। समास का शब्दार्थ है संक्षेप, अनेक पदों का एक पद बन जाना संक्षेप ही है। अब समास के पाचों प्रकारों के नाम और लक्षण क्रमशः बताये जाते हैं।

स चेति वह समास विशेष नाम से रहित केवल–समास नामक प्रथम है अर्थात् जिस समास का कोई विशेष नहीं कहा गया, उसे केवल समास कहते हैं, यह समास का पहला प्रकार है। जैसे–भूतपूर्वः (जो पहले हो चुका)–यहां 'सह सुपा 2.1.4' से समास हुआ है। वह किसी विशेष समास के अधिकार में नहीं है, इसलिये केवल समास है।

प्रायेणिति–जिसमें प्रायः पूर्व पद का अर्थ प्रधान हो, वह अव्ययीभाव समास कहा जाता है, वह समास का दूसरा भेद है।प्रधानता का निर्णय अग्रिम पदार्थ से अन्वय के द्वारा किया जाता है। जिस अर्थ का अन्वय अग्रिम पदार्थ के साथ होगा, वह प्रधान माना जाएगा। जैसे–अधिहरि (हरि में)–यहां पूर्व पद अधि का अर्थ 'में' प्रधान है क्योंकि उसी का नाम अन्य पदार्थों से अन्वय होता है, इसलिये यह अव्ययीभाव समास है। प्रायः कहने से–उन्मत्ता गङ्गा यत्र स उन्मत्तगङ्गो नाम देशः–जहां गङ्गा उन्मत्त है वह उन्मत्तगङ्ग नाम देश है– यहां उन्मत्तगङ्ग मे ंपूर्व पद का अर्थ प्रधान नहीं, अपितु देश का रूप अन्य पद का अर्थ प्रधान है,

पर अव्ययी भाव के अधिकार में होने से यह भी अव्ययीभाव समास है। 'प्रायेण' यदि न कहा जाय तो इसकी अव्ययी भाव संज्ञा न हो सकेगी।

प्रायेणोत्तरेति—जिसमें प्रायः उत्तरपद का अर्थ प्रधान हो, वह तत्पुरुष समास कहा जाता है। यह समास का तीसरा पद है। जैसे—राजपुरुषः (राजा का आदमी, सरकारी आदमी) यहां उत्तरपद पुरुष का अर्थ प्रधान है, क्योंकि उसी का अन्वय आगे आने वाले पदार्थों से होता है—इसलिये यह तत्पुरुष समास है।

प्रायः कहने से जहां 'पंचानां तन्त्राणां समाहारः'पाच तन्त्रों का समाहार' इस विग्रह में समाहार अर्थ में तत्पुरुष होता है, वहां भी लक्षण घट जाय, अन्यथा समाहार अन्य पद का अर्थ है, उत्तरपद का अर्थ नहीं। प्रायः कहने से इसकी भी तत्पुरुष संज्ञा हो जाती है।

तत्पुरुषभेद—इति—तत्पुरुष का ही एक भेद कर्मधारय है। जहां विशेष्य और विशेषण का समास होता है, उसे कर्मधारय कहते हैं। यह तत्पुरुष का ही विशेष प्रकार है, क्योंकि यहां उत्तरपद का अर्थ प्रधान होता है। जैसे—नीलोत्पलम् (नीलं च तत् उत्पलं च—नीला कमल)—यहां नील विशेषण और उत्पल विशेष्य का समास होता है। अतः यह कर्मधारय समास है।

कर्मधारयेति—कर्मधारय का एक प्रकार द्विगु है। विशेष्य और विशेषण के समास में यदि विशेषण संख्यावाचक हो तो उसे द्विगु कहते हैं। जैसे—**पंचगवम्—पंचानां गवां समाहारः** पांच गौओं का समाहार—यहां विशेषण पंच संख्यावाचक है, इसलिये यह द्विगु समास है

प्रायेणान्येति—जिस समास में प्रायः अन्य पद का अर्थ प्रधान हो, वह बहुव्रीहि होता है, यह चौथा समास है। जैसे—**लम्बकर्णः** लम्बे कानवाला—यहां लम्ब और कर्ण—इस समास के अन्तर्गत पदों से भिन्न पद का अर्थ प्रधान है, क्योंकि उसी अर्थ का और पदार्थों के साथ अन्वय होता है, इसीलिए यह बहुव्रीहि समास है। प्रायः कहने का फल यह है कि बहुव्रीहि के अधिकार में आये हुए कुछ 'द्वित्राः' (दो या तीन) आदि समास भी बहव्रीहि कहे जाते हैं, अन्यथा उभय पदार्थ प्रधान होने के कारण उसे बहुव्रीहि न कहा जा सकेगा। **प्रायेणोभयेति**—जिस समास में प्रायः दोनों पदों का अर्थ प्रधान न हो, वह पांचवां द्वन्द्व समास है। जैसे—**रामलक्ष्मणौ**(राम और लक्ष्मण)—यहां दोनों पदों का अर्थ प्रधान है, अतः यह द्वन्द्व समास है। प्रायः कहने का तात्पर्य यह है कि समाहार द्वन्द्व में समाहार अर्थ के अन्य पदार्थ होने पर भी संज्ञा हो जाती है। इन पांच समासों में बहुव्रीहि और द्वन्द्व अनेक पदों के भी होते हैं, शेष दो—दो पदों के होते हैं।

1. इन समासों के नाम नीचे लिखी द्व्यर्थक सूक्ति में बड़े सुन्दर ढंग से आये हैं—

द्वन्द्वोऽस्मि द्विगुरहं गृहे च मे सततमव्ययीभावः।

तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः।।

कोई व्यक्ति किसी मजदूर को अपने यहां नौकरी करने के लिये कह रहा है (शायद युद्ध का ही जमाना होगा, नौकर मिलते न होंगे—हे पुरुष, मैं द्वन्द्व हूं अर्थात् पति—पत्नी दो हैं—तुम्हें काम कम करना होगा, मैं द्विगु हूं अर्थात् मेरे पास केवल दो बेल अथवा गौ हैं—इसलिये पशुओं का कार्य भी कम है। मेरे घर में सदा अव्ययीभाव है अर्थात् कम खर्च किया जाता है, खर्च अधिक तब होता है जब कार्य अधिक हो। इसलिए तुम कर्म धारय अर्थात् नौकरी स्वीकार कर लो, जिससे में बहुव्रीहि—अर्थात् बहुत धान्यवाला हो जाऊं, मेरे पास बहुत धान्य हो जाय।

समर्थः पदविधि 2.1.1

पदसम्बन्धो यो विधिः, स समर्थाश्रितो बोध्यः।

व्याख्याः पद सम्बन्ध की जो विधि हो, वह समर्थ पदों की ही होती है अर्थात् जहां सामर्थ्य होगा, वहीं पदविधि होती है। पद अर्थात् सुबन्त को उद्देश्य बनाकर जो विधि होती है, उसे पदविधि कहते हैं। समास आदि विधियां पदविधियां हैं क्योंकि ये पदों को उद्देश्य करके ही होती है। सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है, सुबन्द पद होता है, इसलिये समास पदविधि है। पदविधि होने से समास उन्हीं पदों का होगा, जिनका परस्पर सामर्थ्य होगा।

सामर्थ्य का अर्थ है जिन पदों की समास आदि वृत्ति होती हो, उनके अर्थों का परस्पर साकाङ्क्ष होना। सामर्थ्य दो प्रकार का होता है। 1. व्यपेक्षा और 2. एकाऽर्थीभाव। आकाङ्क्षा आदि के कारण पदों का जो परस्पर संबंध होता है उसे व्यपेक्षा कहते हैं, वह वाक्य में होती है। जैसे–'राज्ञः पुरुषः' यहां दोनों पदों का परस्पर संबंध है, इसलिए यहां व्यपेक्षा–रूप सामर्थ्य है। जहां पदार्थों की एक साथ उपस्थिति होती है, पृथक्पृथक् नहीं, वह एकार्थीभाव रूप सामर्थ्य होता है। यह पदार्थों की एक साथ उपस्थिति 'राजपुरुषः' इत्यादि वृत्त (समास आदि) में ही होती है।

वृत्ति किसे कहते है और कितने प्रकार की होती है? यह सब आगे इसी प्रकरण में मूल में ही बताया जाएगा।

प्राक् कडारात् समासः 2.1.3

'कडाराः कर्मधारये' 2.2.38 इत्यतः प्राक् 'समासः' इत्यधिक्रियते।

व्याख्याः 'कडाराः कर्मधारये' द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद के इस अन्तिम सूत्र से पूर्व सूत्र तक 'समास' इसका अधिकार है अर्थात् उस सूत्र से पूर्व तक सब सूत्र समास का विधान करते हैं।

सह सुपा 2.1.4

सुप् सुपा सह वा समस्यते समासत्वात् प्रातिपदिकत्वने सुपो लुक्। परार्थाऽभिधानं वृत्तिः। कृत्–तद्धित–समासकैशेष–सनाद्यन्तधातु–रूपाः पंच वृत्तयः। वृत्यर्थाऽवोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा–तत्र 'पूर्वं भूतः' इति लौकिकः। :पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिकः। भूतपूर्वः। 'भूत–पूर्वे चरड्' इति निर्देशात् पूर्व–निपातः। (वा) इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च। वागर्थौ इव–वागर्थाविव। इति केवलसमासः प्रथमः।

व्याख्याः सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है।

इस सूत्र में सुबामत्रिते पराङ्वत् स्वरे 2.2.2' इस पूर्व सूत्र से 'सुप्' इस प्रथमान्त पद की अनुवृत्ति आती है। तृतीयान्त 'सुपा' पद है। प्रत्यय होने के कारण 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' इस परिभाषा के बल से तदन्त का ग्रहण होता है।

समासत्वादिति–समास होने से प्रातिपदिक संज्ञा होगी। इससे 'सुपो धातु–प्रातिपदिकयोः 2.4.71' सूत्र से लोप हुआ।

परार्थेति–परार्थ के बोधन कराने को वृत्ति कहते हैं।प्रत्यय या अन्य पद के अर्थ को साथ लेकर जो विशिष्ट अर्थ प्रतीत होता है, उसे परार्थ कहते हैं। वृत्ति से उसी परार्थ का बोध होता है

कृत्तद्धितेति–कृत्, तद्धित, समास, एकशेष और सनाद्यन्त धातु–ये पांच वृत्तियां होती हैं। कृत् प्रत्यय कृदन्त प्रकरण में बताए गए है। तद्धित प्रकरण में आगे बताये गए हैं। समास और एकशेष–यहां बताये जा रहे हैं। सनाद्यन्त धातुरूप वृत्ति नामधातु प्रकरण में आती है, सन् क्यच् आदि प्रत्यय इस वृत्ति के कार्य हैं।

वृत्त्यर्थेति–वृत्ति के अर्थ का बोध करानेवाले वाक्य को विग्रह कहते हैं। जैसे–**राजपुरुषः** यह समास वृत्ति है,

इसका अर्थ 'राज्ञःपुरुषः' इस वाक्य के द्वारा प्रतीत होता है—इसलिये यह विग्रह है। इसी प्रकार 'पुत्रीयति' इस सनाद्यन्त धातुरूप वृत्ति का विग्रह 'पुत्रमानम् इच्छति' यह वाक्य है। स चेति—वह विग्रह दो प्रकार का होता है—1. लौकिक और 2. अलौकिक।

लौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक में प्रयोग किया जाता है। जैसे—'राजपुरुषः' का 'राज्ञःपुरुषः'। इसका लोक में प्रयोग होता है।

अलौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता। जैसे—'राजपुरुषः' का 'राजन् ङस् पुरुष सु'। इसका लोक में प्रयोग नहीं होता, इसीलिये इसे अलौकिक कहा जाता है, इसकी तो व्याकरण शास्त्र की प्रक्रिया के लिये कल्पना की गई है।

'भूतपूर्वः' इस प्रकृत समास वृत्ति के लौकिक और अलौकिक विग्रह यहां मूल में दिये गये हैं। 'पूर्वं भूतः, पहले हुआ' यह प्रयोग के योग्य होने से लौकिक विग्रह है और 'पूर्व अम् भूत सु' यह प्रयोग के योग्य न होने से अलौकिक है।

भूतपूर्वः (जो पहले हुआ)—यहां 'पूर्वं भूतः' इस लौकिक और 'पूर्व अम् भूत सु' इस अलौकिक विग्रह में 'सह सुपा' इस प्रकृत सूत्र से सुबन्त 'पूर्वम्' का 'भूतः' इस सुबन्त के साथ समास हुआ। तब समास होने के कारण'कृत्तद्धित—समासाश्च 1.2.46' इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा हुई और —सुपो धातुप्रातिपदिकयो : 2.4.71' से सुप् 'अम' और 'सु' का लोप हुआ। तब 'पूर्वभूत' यह प्रातिपदिक बना। 'भूतपूर्वे चरट्' इस पाणिनि सूत्र के प्रमाण से 'भूत' शब्द को पहले रखा गया, यद्यपि उसे 'पूर्वं भूतः' इस विग्रह में बताये गये क्रम के अनुसार 'पूर्व' शब्द के बाद आना चाहिये था। इस प्रकार सिद्ध हुए 'भूतपूर्व' प्रातिपदिक के प्रथमा के एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।

(वा) इवेनेति—'इव' इस अव्यय पद के साथ सुबन्त का समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता। समास के तीन फल हैं—1. एक पद बन जाना, 2. विभक्ति का लोप, 3. एक पद बन जाने से एक स्वर होना। इव के समास में विभक्ति के लोप का निषेध कर दिया गया है, इसलिये संभवतः एक पद भी समझा जाए। परन्तुएक स्वर होना फल फिर भी है। इसी फल के लिये यहां समास का विधान किया गया है। **वागर्थाविव**—यहां 'वागर्थौ' का समास 'इव' के साथ हुआ है तथा विभक्ति का लोप नहीं हुआ।

केवल समास समाप्त

4.3.2 अव्ययीभाव

अव्ययीभावः 2.1.5

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात्

व्याख्याः 'अव्ययीभाव' इस सूत्र का 'तत्पुरुषः 2.1.22' इस आगे आने वाले सूत्र से पूर्व के सूत्रों तक अधिकार है अर्थात् तत्पुरुष के पूर्व जितने सूत्र समास करते हैं, उन सब में यह सूत्र पहुंचता है और उन सूत्रों के द्वारा किये हुए समासों की अव्ययीभाव संज्ञा करता है।

अव्ययं विभक्ति—समीप—समृद्धि—व्यृद्ध्यर्थाऽभावाऽत्यया—संप्रति—शब्दप्रादुर्भाव—पश्चाद्—यथानुपूर्व्य—यौगपद्य—सादृश्य—संपत्ति—साकल्याऽन्त—वचनेषु 2.1.6

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते। प्रायेणाऽविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणाऽस्वपदविग्रहो

वा। विभक्तौ–'हरि ङि अधि' इति स्थिते।

व्याख्याः अव्ययीभाव इति–1. विभक्ति, 2. समीप, 3. समृद्धि, 4. समृद्धि का नाश, 5. अभाव, 6. नाश, 7. अनुचित, 8. शब्द की अभिव्यक्ति, 9. पश्चात्, 10. यथा, 11. क्रमशः, 12. एक साथ, 13. समानता, 14. संपत्ति, 15. सम्पूर्णता और अन्त तक–इन 16 सोलह अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है।

प्रायेणेति–प्रायः जिस समास का विग्रह न हो उसे नित्य समास कहते हैं अथवा प्रायः जिसका अपने पदों से विग्रह नहीं होता अर्थात् जिन शब्दों का समास हुआ हो उन शब्दों के द्वारा जिसका विग्रह न हो, वह नित्यसमास होता है।

यहां विग्रह से तात्पर्य लौकिक विग्रह का है, अलौकिक विग्रह तो 'सभी समासों का होता है। लौकिक विग्रह में समास के सभी अवयव आयें तो भी नित्यसमास होता है।

यदि समास का कोई अवयव विग्रह में आ जाए तो भी नित्य समास होता है। जैसे–'अधिहरि' यह समस्त पद है। 'अव्ययं विभक्ति–' सूत्र से यहां विभक्त्यर्थ में समास हुआ है। यह नित्यसमास है। इसका लौकिक विग्रह है–हरौ। यहां समास का अवयव 'हरि' शब्द विग्रह में आ गया है, पर अधि शब्द नहीं आया, इसलिये समास के अवयव सभी पदों के विग्रह में न आने के कारण यह नित्य समास है। अधिहरि शब्द नित्य समस्त रूप में ही प्रयुक्त हो सकता है। अधि शब्द वाक्य में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त नहीं हो सकता।

अधिहरि (हरि में)–यहां लौकिक विग्रह है–'हरौ' और अलौकिक विग्रह है–'हरि ङि अधि'। इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ है। 'अधि' अव्यय सप्तमी विभक्ति के अर्थ अधिकरण का वाचक वर्तमान है। 'हरि ङि' यह सुबन्त है। इसके साथ 'अधि' अव्यय का प्रकृत सूत्र से समास होता है। समास होने पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि किस शब्द को पहले रखा जाए। इस प्रश्न का समाधान करने के लिए अग्रिम सूत्र है।

प्रथमा–निर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 1.2.43

समास–शास्त्रे प्रथमा–निर्दिष्टम् उपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः प्रथमेति–समास शास्त्र में अर्थात् समास करने वाले सूत्र में जो पद प्रथमान्त पढ़ा गया हो, उस के द्वारा विग्रह वाक्य में स्थित जिस पद का बोध हो वह उपसर्जन–संज्ञक हो। जैसे प्रकृत में समासशास्त्र है पूर्वोक्त 'अव्ययं विभक्ति–' इत्यादि सूत्र, इसमें 'अव्ययम्' पद प्रथमान्त आया है। इसके द्वारा 'हरि ङि' इस अलौकिक विग्रह वाक्य में स्थित 'अधि' पद का ज्ञान होता है, अतः इसकी उपसर्जन संज्ञा हुई।

उपसर्जनं पूर्वम् 2.2.30

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्। इति 'अधेः' प्राक् प्रयोगः सुपो लुक्, एकदेश–विकृतस्याऽनन्यत्वात् प्रातिपदिक–संज्ञाया स्वाद्युत्पत्तिः, अव्ययीभावश्च' इत्यव्ययत्वात् सुपो लुक्–अधिहरि।

व्याख्याः उपसर्जनमिति–समास में उपसर्जन का पहले प्रयोग हो। इस सूत्र के द्वारा उपर्युक्त उदाहण में उपसर्जन संज्ञक 'अधि' पद का पूर्व निपात अर्थात् पहले प्रयोग हुआ। पूर्व सूत्र से जो उपर्सन संज्ञा होती है, उसका फल है पूर्व–निपात अर्थात् पद का पहले रखा जाना। पहले यह देखना चाहिये कि किस सूत्र से समास होता है उस सूत्र में प्रथमान्त पद कौन है। इसके बाद अलौकिक विग्रह में ढूंढिये कि समासशास्त्रस्थ प्रथमान्त पद से किसका ग्रहण होता है, बस उस पद को पहले रखिए। हिन्दी में समासशास्त्रों का अर्थ करते समय प्रायः प्रथमान्त का अर्थ सम्बन्धकारक जोड़कर किया जाता है और तृतीयान्त का 'साथ' शब्द

जोड़कर। जैसे—प्रकृत 'अव्ययं विभक्ति'—सूत्र में प्रथमान्त पद 'अव्यय' है उसका अर्थ किया जाता है—'अव्यय पद का' और 'सुपा' की अनुवृत्ति आती है, वह पद तृतीयान्त है, उसका अर्थ किया जाता है 'सुबन्त के साथ'। हिन्दी में अर्थ करते हुए जिस शब्द के साथ सम्बन्ध—कारक का 'का— चिह्न जोड़ा जाता है, उस शब्द से अलौकिक विग्रह वाक्य के जिस पद का ग्रहण होना हो, उसको समास में पहले रखना चाहिए।

सुप इति—सुप् का लुक् हुआ अर्थात् 'अधि हरि ङि' यहां अधि का पूर्वनिपात होने पर प्रातिपदिक के अवयव सुप् ङि का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः 2.4.71' से लोप हो गया। तब 'अधिहरि' यह शब्द बना।

एकदेशेति—एकदेश जिसका विकृत होता है, वह अन्य नहीं होता अर्थात् एकदेशविकृत न्याय से 'अधिहरि' की प्रातिपदिक संज्ञा है ही। कहने का अभिप्रायः यह है कि सुप् का लोप होने पर प्रातिपदिक विकृत हो गया। परन्तु एकदेशविकृत न्याय से उसे प्रातिपदिक ही मानकर सु आदि किये गये। **अव्ययीभावश्चेति**—'अव्ययीभावश्च 1.1.41।।' इस सूत्र से 'अधिहरि' इस समस्त पद का अव्ययीभाव होने के कारण अव्यय संज्ञा हुई और इसीलिए पुनः समस्त पद से आये हुए सुप् का 'अव्ययादाप्सुपः 2.4.28।।' से लोप हुआ। इस प्रकार 'अधिहरि' रूप सिद्ध हुआ।

अव्ययीभावश्च 2.4.18

अयं नपुंसकं स्यात्। गाः पातीति गोपास्तस्मिन्निति—अधिगोपम्।

व्याख्याः अव्ययीभावश्चेति—अव्ययीभाव समास नपुंसकलिङ्ग होता है।

यहां इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि 'अव्ययीभावश्च' इस प्रकार एक आकार होने पर भी अव्ययीभाव समास की अव्यय संज्ञा और नपुंसकलिङ्ग विधान करनेवाले दो भिन्न सूत्र हैं। अव्यय संज्ञा करनेवाला सूत्र (1.1.41) पहले अध्याय के पहले पद का इक्तालीसवां सूत्र है और नपुंसक विधान करनेवाला (2.4.18) दूसरे अध्याय के चतुर्थ पाद का अठारहवां।

अधिगोपम् (ग्वाले में)—'गोपि' इस लौकिक विग्रह और 'गोपा ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्ति—' इत्यादि सूत्र से विभक्ति सप्तमी के अर्थ में वर्तमान अधि—अव्ययम् प्रथमान्त पद के द्वारा बोध्य होने से 'अधि' की 'प्रथमा—निर्दिष्टं समास उपसर्जनम 1.2.43' इस सूत्र के द्वारा उपसर्जन संज्ञा होने के कारण पूर्व प्रयोग हुआ। फिर प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् ङि का लोप होकर 'अधिगोपा' शब्द बना। अव्ययीभाव होने से प्रकृत सूत्र से वह नपुंसकलिङ्ग हुआ। तब 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व होने पर 'अधिगोप' शब्द बना और प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

915 **नाऽव्ययीभावादिति**—अदन्त अव्ययीभाव से पर सुप् का लोप न हो, उसके स्थान में अम् आदेश हो, पंचमी विभक्ति को छोड़कर।

तृतीया—सप्तम्योर्बहुलम् 2.4.84

अदन्ताद् अव्ययीभावात् तृतीया—सप्तम्योबर्हुलम् 'अम्' भावः स्यात्। उप—कृष्णम्, उप—कृष्णेन। मद्राणां समृद्धिः, सु—मद्रम्। यवनानां व्यृद्धिः—दुर्यवनम्। मक्षिकाणाम् अभावः—निर्मक्षिकम्। हिमस्याऽत्ययः—अति—हिमम्। निद्रा संप्रति न युज्यत इति—अति—निद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाशः—इति—हरि। विष्णोःपश्चाद्—अनुविष्णु। योग्यता—वीप्सा— पदार्थाऽनतिवृत्ति— सादृश्यानि यथार्थः—रूपस्य योग्यमनुरूपम, अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्, शक्तिमनतिक्रम्य—यथाशक्ति।

व्याख्याः तृतीयेति—अदन्त अव्ययीभाव से पर तृतीया और सप्तमी को बहुलता से 'अम्' आदेश हो। इस प्रकार अदन्त

अव्ययीभाव शब्द के पचंमी में सदा और तृतीया तथा सप्तमी में विकल्प से रूप बनते हैं, शेष [29]विभक्तियों को 'अम्' आदेश होने से विभक्त्यन्त रूप नहीं बनते।

2 **उपकृष्णम्, उपकृष्णेन**–'कृष्णस्य समीपम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'कृष्ण ङस् इस अलौकिक विग्रह में समीप अर्थ में वर्तमान उप अव्यय का 'कृष्ण ङस्' इस सुबन्त के साथ 'अव्यय विभक्ति–' से समास हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टम्–'से उप का पूर्व निपात होने पर सुप् का लोप हुआ। तब 'उपकृष्ण' शब्द बना। तृतीय आने पर प्रकृत सूत्र से उसे' अम्' आदेश विकल्प से हुआ। इस प्रकार उपर्युक्त दो रूप बने।

अव्ययं विभक्ति सूत्र के उदाहरण क्रमशः दिये जा रहे हैं। 'अधिहरि' और 'अधिगोपम' विभक्त्यर्थ के और 'उपकृष्णम्' समीप अर्थ का उदाहरण है। आगे क्रमशः अन्य उदाहरण दिये जा रहे हैं।

3 **समृद्धि**–मद्राणां समृद्धि। सु मद्रम् (मद्रदेश के लोगों की समृद्धि)–यहां समृद्धि अर्थ में वर्तमान सु अव्यय का 'मद्राणाम्' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

4 **व्यृद्धि**–यवनानां व्यृद्धिः दुर्यवनम् (यवनों की ऋद्धि का अभाव)–यहां व्यृद्धि अर्थ में वर्तमान दुर् अव्यय का 'यवनानाम्' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

5 **अभाव**–मक्षिकाणाम् अभावो **निर्मक्षिकम्** (मक्खियों का अभाव, सुनसान)–यहां अभाव अर्थ में वर्तमान निर् अव्यय का 'मक्षिकाणाम्' सुबन्त के साथ समास हुआ। 'निर्मक्षिका' बन जाने पर नपुंसक होने के कारण इसे ह्रस्व हो जाता है। इस प्रकार 'निर्मक्षिक' अकारान्त शब्द बनता है। फिर सुप् को अम् आदेश होकर रूप सिद्ध होता है।

'निर्मक्षिकम्' शब्द का प्रयोग 'सुनसान–जहां कोई न हो' अर्थ में होता है।

6 **अत्यय** (विनाश)–हिमस्यात्ययः अति–हिमम् (बर्फ का नाश)–यहां नाश अर्थ में वर्तमान अति अव्यय का समास हुआ।

7 **अ–संप्रति**–(अनौचित्य) निद्रा संप्रति न युज्यते इति–अति–निद्रम् (इस समय निद्रा उचित नहीं)–यहां असंप्रति अर्थ में वर्तमान 'अति' अव्यय का 'निद्रा' इस सुबन्त के साथ समास होने पर ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व होकर पूर्वोक्त प्रकार से रूप सिद्ध हुआ।

8 **शब्द–प्रादुर्भाव**–हरिशब्दस्य प्रकाश इति–हरि (हरि शब्द का प्रादुर्भाव) यहां प्रकाश अर्थ में वर्तमान 'इति' अव्यय का 'हरेः' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

9 **पश्चात्–विष्णोः** पश्चाद् अनु–विष्णु (विष्णु के पीछे)–यहां पश्चात् अर्थ में वर्तमान पश्चाद्' अव्यय का 'विष्णो' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

10 **यथा** शब्द के चार अर्थ हैं–1. योग्यता, 2. वीप्सा–बार बार होना, 3. पदार्थ का अतिक्रमण न होना, 4. सादृश्य इन चारों अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है। **क्रमशः** उदाहरण ये हें–1. **योग्यता–रूपस्य योग्यम्**–अनुरूपम्(रूप के योग्य)–यहां यथा का योग्यता अर्थ में वर्तमान 'अनु' अव्यय का समास हुआ 2. **वीप्सा**–अर्थमर्थं प्रति **प्रत्यर्थम्** (प्रति अर्थ)–यहां यथा का वीप्सा में वर्तमान 'प्रति' अव्यय का सुबन्त 'अर्थ' के साथ समास हुआ। 3 **पदार्थानतिवृत्ति**–शक्तिमनतिक्रम्य **यथाशक्ति** शक्ति का अतिक्रमण न करके अर्थात् जितनी शक्ति है। यहां पदार्थानऽतिवृत्ति अर्थ में वर्तमान 'यथा' अव्यय का समास हुआ।

---

[29] - *इस नियम को ध्यान में रखने से 'प्रत्येकस्य इस प्रकार अशुद्ध प्रयोग से बचा जा सकता है। 'प्रत्येक' अव्ययीभाव है–इससे परे विभक्ति को 'अम्' आदेश होकर षष्ठी में भी 'प्रत्येकम्' ही रूप बनेगा।*

अव्ययीभावे चाऽकाले 6.3.81

सहस्य सः स्याद् अव्ययीभावे, न तु काले। हरेः सादृश्यम्–सहरि। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण–इति–अनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत्–सचक्रम्।सदृशः सख्या–स–सखि। क्षत्त्राणां सपंत्तिः। तृणमप्यपरित्यज्य–सतृणम् अत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते–साग्नि।

व्याख्याः अव्ययीभावे इति–सह को 'स' आदेश हो अव्ययीभाव समास में, परन्तु काल अर्थ में न हो।

4 **सादृश्य**–हरेः सादृश्यम् सहरि (हरि की समानता) यहां यथा के अर्थ सादृश्य मे वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त'हरेः' के साथ समास हुआ। तब 'सह' को प्रकृत रूप से 'स' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

11 **आनुपूर्व्य**–ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण इति **अनुज्येष्ठम्** (ज्येष्ठ के क्रम से)–यही आनुपूर्व्य अर्थ में वर्तमान 'अनु' अव्यय का 'ज्येष्ठस्य' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

12 **योगपद्य** (एक साथ।) चक्रेण युगपत् सचक्रम (चक्र के एकदम साथ)–यहां यौगपद्य अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का समास हुआ और सह को 'स' आदेश।

ससखि–'सदृशः सख्या' इस लौकिक विग्रह में तथा 'सखि टा 'सह' इस अलौकिक विग्रह में सादृश्य अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त 'संख्या' के साथ समास होने पर सुप् का लुक् तथा प्रकृत सूत्र से सह को स आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

14 **संपत्ति**–क्षत्राणां संपत्तिः **सक्षत्त्रम्** (क्षत्रियों की संपत्ति)–यहां संपत्ति अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का

'क्षत्राणाम्' सुबन्त के साथ समास और 'सह' को 'स' आदेश हुआ।

15 **साकल्य–सम्पूर्णता।** तृणमप्यपरित्यज्य सतृणम् अत्ति। (तृण को भी न छोडक़र अर्थात् सब खा जाता हे)–यहां साकल्य अर्थ में वर्तमान सह अव्यय का 'तृणम्' सुबन्त के साथ समास हुआ और 'सह' को 'स' आदेश।

16 **अन्त**–अग्निग्रन्थ–पर्यन्तम् साग्नि (अग्नि–चयन ग्रन्थ तक पढ़ता है)–यहां अन्त अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त 'अग्निना' के साथ समास हुआ और 'सह' को 'स' आदेश। यहां अग्नि शब्द अग्नि का चयन जिस ग्रन्थ में आया है उसके अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

इस प्रकार 'अव्ययं विभक्ति–' सूत्र के सारे उदाहरण आ गये। समास होने पर प्रातिपादिक संज्ञा, अव्यय का पूर्व प्रयोग, सुप् का लोप आदि कार्य सब में होते हैं।

नदीभिश्च 2.1.20

नदीभिः सह संख्या समस्यते। (वा) समाहारे चाऽयमिष्यते। पंच–गङ्गम्। द्वियमुनम्।

व्याख्याः नदीभिश्चेति–नदी–विशेष के वाचक के साथ संख्यावाचक का समास होता है।

(वा) **समाहार**–यह समाहार में होता है अर्थात् समस्त पद का अर्थ समाहार होता है।

पंच–गङ्गम् (पांच गङ्गाओं का समाहार)–यहां पंचन् संख्यावाचक का नदी–विशेषवाचक गङ्गा शब्द के साथ प्रकृत सूत्र से समास हुआ। तब प्रथमानिर्दिष्ट होने से संख्यावाचक का पूर्व निपात होने पर सुप् का लोप हुआ। 'नकार' का 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इस सूत्र से लोप हुआ और अव्ययीभाव होने के कारण नपुंसक होने से ह्रस्व होकर 'पंचगङ्ग शब्द बना। सुप् का अम् आदेश होने पर रूप बना।

इसी प्रकार–द्वियमुनम् (द्वयो यमुनयोः समाहारः–दो यमुनाओं का समाहार) की भी सिद्धि होती है।

तद्धिताः 4.1.76

आ पंचमसमाप्तेरधिकारोऽयम्।

व्याख्याः तद्धिता इति–पांचवें अध्याय की समाप्ति तक तद्धित का अधिकार है अर्थात् इस सूत्र से आगे पांचवें अध्याय तक जितने सूत्र हैं, उनके द्वारा जिन प्रत्ययों का विधान होता है उन सभी प्रत्ययों को तद्धित कहा जाता है। तद्धित संज्ञा का फल तदन्त शब्दों की 'कृत्–तद्धित–समासाश्च 1.2.46' सूत्र से प्रातिपादिक संज्ञा होना है।

अव्ययीभावे शरत् प्रभृतिभ्यः 5.4.107

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे। शरदः समीपम् उपशरदम्। प्रतिविपाशम्। (ग.सू.) जराया जरस्। उपजरसमित्यादि।

व्याख्याः अव्ययीभावे इति–शरद् आदि शब्दों से टच् प्रत्यय समासान्त हो अव्ययीभाव समास में।

टच् के टकार और चकार इत् संज्ञक हैं। केवल अकार बचा रहता है। टच् की तद्धित संज्ञा पूर्व सूत्र से होती है। तब प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सु आदि विभक्ति की उत्पत्ति होती है।

उपशरदम् (शरदः समीपम् शरद् के समीप)–यहां समीप अर्थ में वर्तमान 'उप' अव्यय का 'शरदः' इस सुबन्त के साथ 'अव्ययं' विभक्ति–' इस सूत्र से समास हुआ। प्रकृत सूत्र से तद्धित संज्ञक समासान्त प्रत्यय टच् होने पर'उपशरद' अकारान्त शब्द बना। फिर सुप् को अम् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्रतिविपाशम् (विपाशाया अभिमुखम्–विपाशा व्यास नदी की ओर)–यहां 'लक्षणेनाभि–प्रती आभिमुख्ये 2.1.14'' सूत्र से आभिमुख्य–ओर–अर्थ में प्रति निपात का सुबन्त विपाशः के साथ समास हुआ। प्रकृत सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होकर पूर्वोक्त प्रकार से रूप सिद्ध हुआ।

(ग. सू.) **जराया इति**–समास में जरा शब्द की जरस् आदेश और समासान्त टच् प्रत्यय हो।

यह शरदादि गण का सूत्र है। इसके द्वारा टच् समासान्त के साथ जरा शब्द के स्थान में जरस् आदेश का भी विधान किया गया है।

उपजरसम्(जरायाः समीपम्, बुढ़ापे के निकट)–यहां समीप अर्थ में वर्तमान अव्यय 'उप' का 'जरायाः' सुबन्त के साथ समास होने पर प्रकृत गणसूत्र से जरा शब्द को जरस् आदेश और समासान्त टच् प्रत्यय होने पर अकारान्त 'उपजरस्' शब्द बना। फिर सुप् और उसको अम् आदेश होकर रूप बना।

अनश्च 5.4.10

अन्नन्ताद् अव्ययीभावात् टच् स्यात्।

व्याख्याः अनश्चेति–अन्नन्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् प्रत्यय हो।

नस्तद्धिते 6.4.144

नाऽन्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्।

व्याख्याः नस्तद्धिते इति–नान्त भसंज्ञक टि का लोप हो तद्धित प्रत्यय परे रहते।

उपराजम् (राजा के समीप)–'राज्ञः समीपम्' यह लौकिक और 'राजन् ङस् उप' यह अलौकिक विग्रह है।

यहां 'अव्ययं विभक्ति–' से समीप अर्थ में वर्तमान 'उप' अव्यय का सुबन्त 'राज्ञः' के साथ समास हुआ। समासशास्त्र में स्थित प्रथमान्त 'अव्ययम्' पद से योग्य होने के कारण उपसर्जन संज्ञा हाने पर 'उप' का पूर्वनिपात हुआ। फिर सुप् का लोप होने पर अन्नन्त अव्ययीभाव 'उप राजन्' से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ और टि अन् का 'नस्तद्धिते' से लोप होकर 'उपराज' अकारान्त शब्द बना। सुप् को अम् होने पर रूप सिद्ध हुआ।

अध्यात्मम् (आत्मा के विषय में)–'आत्मनि' इस लौकिक और 'आत्मन् ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में विभक्ति सप्तमी के अर्थ में वर्तमान 'अधि' का 'आत्मनि' इस सुबन्त के साथ समास हुआ। फिर अधि का पूर्वनिपात सुप् का लुक् होने पर 'अनश्च' से समासान्त टच् प्रत्यय और 'नस्तद्धिते' से टि का लोप हुआ। तब 'अध्यात्म' इस अकारान्त प्रातिपदिक से सुप् आया, उसे 'अम्' आदेश हुआ।

नपुंसकाद् अन्यतरयाम् 5.4.101

अन्नन्तं यत् क्लीबम् तदन्ताद् अव्ययीभावात् टज् वा स्यात्। उपचर्मम्, उपचर्म।

व्याख्याः नपुंसकादिति–अन्नन्त जो नुंसकलिङ्ग शब्द, तदन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय हो विकल्प से।

उपचर्मम्, उपचर्म (चर्म के समीप)–'चर्मणः समीपम्' इस लौकिक और 'चर्मन् ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में अव्यय 'उप' का सुबन्त 'चर्मणः' के साथ समास होने पर 'उप' का पूर्वनिपात और सुप् का लोप होकर उपचर्मन् यह रूप बना। यहां अन्नन्त नपुंसकलिङ्ग 'चर्मन्' है। तदन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय विकल्प से हुआ। टच् पक्ष में 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप होने पर अकारान्त शब्द बना और तब सुप् को अम् आदेश होने पर रूप सिद्ध हुआ। अभावपक्ष में नान्त ही शब्द रहेगा और उसी प्रकार रूप बनेंगे।

झयः 5.4.111

झयन्ताद् अव्ययीभावत् टच् वा स्यात्। उपसमिधम्, उपसमित्।

व्याख्याः झय इति–झयन्त अव्ययीभाव से टच् विकल्प से हो।

उपसमिधम्, उपसमित्(समिध के समीप)–यहां भी पूर्ववत् समास आदि होते है प्रकृत सूत्र से टच् प्रत्यय विकल्प से हुआ। टच्पक्ष में अकारान्त शब्द बन जाने पर सुप् को अम ्आदेश होकर पहला रूप बना। अभावपक्ष में धकारान्त ही शब्द रहने से हलन्त नपंसकलिङ्ग शब्द के जैसे रूप बनते हैं, प्रथमा के एकवचन का ऊपर रूप दिया गया है।

अव्ययीभाव समाप्त

4.3.3 तत्पुरुषसमास

तत्पुरुषः 2.1.22

अधिकारोऽयम् प्राग् बहुव्रीहेः।

व्याख्याः तत्पुरुष इति–यह अधिकार 'शेषो बहुव्रीहिः' इस सूत्र से पहले तक है अर्थात् बहुव्रीहि के पूर्व समास विधान करने वाले सूत्रों में इसका अधिकार है, उनसे जो समास होता है, वह तत्पुरुष होता है।

द्विगुश्च 2.1.23

द्विगुरपि तत्पुरुष–संज्ञक–स्यात्।

व्याख्याः द्विगुरिति–द्विगु भी तत्पुरुष–संज्ञक हो।

तत्पुरुष में उत्तरपद का अर्थ प्रधान रहता है, उसी का अन्वय अन्य पदार्थों में होता है, यह पहले कहा जा चुका है।

यह भी बताया जा चुका है कि तत्पुरुष समास दो पदों का होता है। उन दो पदों में पहला पद प्रथमान्त को छोड़कर अन्य–विभक्त्यन्त होता है और उत्तरपद के अर्थ के प्रधान होने के कारण आगे अन्वित होने से अर्थानुसार उसमें विभक्ति रहती है। परन्तु समास करते समय उसे प्रायः प्रथमान्त रखा जाता है, प्रथमान्त से ही विग्रह किया जाता है। जब आगे तत्पुरुष समास करनेवाले सूत्र आते हैं। वे क्रमशः द्वितीयान्त आदि पदों का समास विधान करते हैं। उनमें पहले द्वितीयान्त का समास विधान करने वाला सूत्र दिया जाता है।

द्वितीया–श्रिताऽतीत–पतित–गताऽत्यस्त–प्राप्तापन्नैः 2.1.24

द्वितीयान्तं श्रितादि–प्रकृतिकैः सुबन्तैः सह समस्यते वा, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः–कृष्णश्रितः इत्यादि।

व्याख्याः द्वितीयेति–द्वितीयान्त पद का श्रित, अतीत (बीता हुआ), पतित, गत, अत्यस्त (फेंका हुआ), प्राप्त और आपन्न, इन प्रातिपदिकों से बने हुए सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है और उसकी तत्पुरुष संज्ञा होती है।

कृष्णश्रितः (कृष्ण के आश्रित)–'कृष्णं श्रितः' इस लौकिक विग्रह और 'कृष्ण अम् श्रित सु' इस अलौकिक विग्रह में द्वितीयान्त 'कृष्णम्' का श्रित शब्द से बने 'श्रितः' इस सुबन्त के साथ प्रकृत सूत्र से समास हुआ। समासशास्त्र 'द्वितीया–' इस प्रकृत सूत्र में प्रथमान्त पद है 'द्वितीया', उससे बोध होता है विग्रह में स्थित 'कृष्णम्' पद का उसकी'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 1.2.43'' से उपसर्जन संज्ञा होती है और 'उपसर्जनं पूर्वम् 2.3.30' से उसका पूर्व प्रयोग। फिर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः 2.4.71' से सुप् 'अम्' और 'सु' का लोप होने पर 'कृष्णश्रित' यह समस्त प्रातिपदिक बना। इससे सु आदि की उत्पत्ति हुई। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार–आशाम् अतीतः–**आशाऽतीतः** (जो आशा को पार कर गया हो अर्थात् आशा से अधिक हो) नरक पतितः–**नरक–पतितः** (नरक में पड़ा हुआ), स्वर्ग गतः–**स्वर्ग–गतः** (स्वर्ग को गया हुआ), कूपमत्यस्तः–**कूपाऽत्यस्तः** (कूप में फेंका हुआ), सुखं प्राप्तः–**सुख–प्राप्तः** (सुख को प्राप्त हुआ), संकटमापन्नः–**संकटापन्नः** (संकट में पड़ा हुआ)–इत्यादि अन्य उदाहणों की भी सिद्धि होती है।

तृतीया तत्कृताऽर्थेन गुण–वचनेन 2.1.30

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनाऽर्थेन च सह वा प्राग्वत् शङ्कुलया खण्डः–शङ्कुला–खण्डः। धान्येनार्थः–धान्याऽर्थ 'तत्कृत' इति किम्–अक्ष्णा काणः।

व्याख्याः तृतीयेति–तृतीयान्त के अर्थ से किए हुए गुणवाचक शब्द का अर्थ शब्द के साथ समास होता है।

शङ्कुला–खण्डः (सरौते से किया हुआ टुकड़ा)–'शङ्कुलया खण्डः' यह लौकिक विग्रह है। यहां उत्तरपद खण्ड गुणवाचक है, यह तृतीयान्तार्थ शङ्कुला से किया हुआ है। इसलिये 'शङ्कुला टा खण्ड सु' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ। समासशास्त्र में स्थित प्रथमान्त 'तृतीया' पद से बोध्य विग्रह में स्थित शङ्कुला शब्द की उपसर्जन संज्ञा होने से पूर्वनिपात हुआ। सुप् का लोप होने पर 'शङ्कुला–खण्ड' प्रातिपदिक बना। इससे सु आदि की उत्पत्ति हुई, तब प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

धान्यार्थः (धान्य से प्रयोजन)–यहां 'धान्येन अर्थः' यह लौकिक विग्रह। 'धान्य टा अर्थ सु' इस अलौकिक

विग्रह में तृतीयान्त का 'अर्थ' शब्द के साथ समास हुआ। और तब समास निमित्तक विभक्तिलोप आदि कार्य करने पर रूप सिद्ध हुआ।

तत्कृत इति—शङकुलया खण्डः' यहां पर 'कर्तृकरणे कृता बहुलम् 2.1.32' से समास हो जाता 'तृतीयान्तार्थ कृत—तृतीयान्तार्थ से किए हुए गुणवचन से इतना कहने से क्या आवश्यकता थी।

अक्ष्णा काण इति—'तत्कृत' ग्रहण करने से अर्थ होगा यदि तृतीयान्त का गुणवचन से समास हो तो तृतीयान्तार्थ कृत से ही हो। इस नियम से अक्ष्णा काणः यहां समास नहीं होगा, क्योंकि तृतीयान्त अक्ष्णा से काणत्व नहीं हुआ अर्थात् आंख से काना नहीं हुआ बल्कि रोगादि से आंख कानी हो गई, अतः यहां समास नहीं हुआ।

कर्तृ—करणे कृता बहुलम् 2.1.32

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रातः—हरित्रातः। नखैर्भिन्नः—नखभिन्नः। (प.) कृद्ग्रहणे गति—कारकपूर्वस्याऽपि ग्रहणम्। नख—निर्भिन्नः।

व्याख्याः कर्तृ—करणे इति—कर्ता और करण में जो तृतीया, तदन्त पद का कृदन्त के साथ बहुलता से समास होता है। **हरि—त्रातः**(हरि से रक्षा किया हुआ)—'हरिणा त्रातः' यह लौकिक विग्रह है। 'हरि टा त्रात सु' इस अलौकिक विग्रह में तृतीयान्त 'हरिणा' का उत्तरपद 'त्रातः' के साथ समास होकर रूप बना। यहां 'हरिणा' में तृतीया कर्ता में हुई है। **नख—भिन्नः** (नखों से फाड़ा हुआ)—'नखैर्भिन्नः' यह लौकिक विग्रह है। 'नखैः' यहां तृतीया करण में है। इसलिये 'नख भिस् भिन्न सु' इस औकिक विग्रह में समास होने पर पूर्वोक्त रीति से रूप बना।

चतुर्थी तदर्थाऽर्थ—बलि—हित—सुख—रक्षितैः 2.1.36

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्, तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् यूपाय दारु—यूपदारु। तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः, तेनेह न रन्धनाय स्थाली। (वा) अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। द्विजार्थः—सूपः। द्विजार्था—यवागू। द्विजार्थम्—पयः। भूत—बलिः। गो—हितम्। गो—सुखम्। गो—रक्षितम्।

व्याख्याः चतुर्थीति—चतुर्थ्यन्त के अर्थ के निमित्त जो वस्तु हो, उसके वाचक पद के साथ तथा अर्थ (के लिये), बलि (उपहार), हित (कल्याण) सुख और रक्षित (रखा हुआ)—इन पदों के साथ चतुर्थ्यन्त का समास होता हैं

यूप—दारु (यज्ञ स्तम्भ के लिए लकड़ी)—'यूपाय दारु' यह लौकिक विग्रह है। यहां दारु (लकड़ी) चतुर्थ्यन्तार्थ यूप के लिये है इसलिए प्रकृत सूत्र से समास और तदनुसार अन्य कार्य होकर रूप बना।

तदर्थेनेति—सूत्र में पढ़े हुए 'तदर्थ' शब्द का अभिप्रायः प्रकृतिविकृतिभाव है अर्थात् चतुर्थ्यन्त का अर्थ विकार और उत्तरपद का अर्थ प्रकृति होना चाहिये, तभी इस सूत्र से समास होगा। दारु से यूप बनता है, इसलिये दारु प्रकृति और यूप उसका विकार है, इस प्रकार इनमें प्रकृतिविकृतिभाव है। अतः यहां समास हो गया।

रन्धनाय स्थाली (रांधने—पकाने के लिये डेगची)—यहां स्थाली और रन्धन में प्रकृतिविकृतिभाव नहीं। स्थाली से रन्धन नहीं बनता। रन्धन असत्वभूत क्रिया है, द्रव्य नहीं, प्रकृतिविकृतिभाव दो द्रव्यों में होता है द्रव्य और क्रिया में नहीं, स्थाली द्रव्य है और रन्धन क्रिया। अत एव यहां समास नहीं होता।

(वा) **अर्थेनेति**—अर्थ शब्द के साथ नित्यसमास होता है और समस्त पद का लिङ्ग विशेष्य के अनुसार। **द्विजाऽर्थः सूपः** (ब्राह्मण के लिये सूप्—दाल)—नित्य समास होने से यहां लौकिक विग्रह 'द्विजाय अयम्' इस प्रकार अस्वपद होता है। 'द्विज ङे अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ। विशेष्य 'सूप' पुंल्लिङ्ग है, अतः समस्त पद भी तदनुसार पुंल्लिङ्ग हुआ। इसी प्रकार द्विजाय इयम्—द्विजार्था यवागूः ब्राह्मण के

लिये लप्सी और द्विजाय इदम्–द्विजार्थं पयः (ब्राह्मण के लिये दूध)–इनमें प्रकृत वार्तिक से अस्वपदविग्रह नित्यसमास और विशेष्य के अनुसार लिङ्ग हुआ।

भूतेभ्यो बलिः–भूत–बलिः (भूतों के लिए उपहार), **गोभ्यो हितम्–गो–हितम्** (गौओं के लिए हितकर), **गोभ्यः सुखम्–गो–सुखम्** (गौओं को सुखकर) और **गोभ्यो रक्षितम्–गो–रक्षितम्** (गौओं के लिये रखा हुआ)–इनमें प्रकृत सूत्र से समास हुआ।

पंचमी भयेन 2.1.37

चोराद् भयम्–चोरभयम्।

व्याख्याः पंचमीति–पंचम्यन्त का भयवाचक शब्द के साथ समास होता है।

चारोद्–भयम्–चोर–भयम् (चोर से भय)।यहां 'चोराद्' इस पंचन्यन्त का 'भयम्' सुबन्त के साथ समास हुआ।

स्तोकाऽन्तिक–दूरार्थ–कृच्छ्राणि क्तेन 2.1.39

व्याख्याः स्तोकेति–स्तोक (थोड़ा), अन्तिक (समीप) और दूर के अर्थ के वाचक और कृच्छ्र (कष्ट)–इन सुबन्तों का क्तप्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समास होता है।

पंचम्याः स्तोकादिभ्यः6.3.2

अलुग् उत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।

व्याख्याः पंचम्या इति–स्तोक आदि शब्दों से पर पंचमी विभक्ति का लुक् न हो, उत्तरपद परे रहते।

"**उत्तर–पदं समास–चरमाऽवयवे रूढम्**–उत्तरपद समास के अन्तिम अवयव में रूढ़ है" अर्थात् उत्तरपद कहने से समास का अन्तिम अवयव ही लिया जाता है।

विभक्ति के लोप के न होने पर समास का फल एक पद बन जाना और एक स्वर होना है।

स्तोकान्मुक्तः (थोड़े से मुक्त), **अन्तिकादागतः** (पास से आया हुआ), **अभ्याशादागतः** (पास से आया हुआ), **दूरादागतः** (दूर से आया हुआ) और **कृच्छ्रादागतः** (कष्ट से आया हुआ)–इनमें पूर्व सूत्र से समास हुआ और प्रकृत सूत्र से पंचमी का अलुक् हुआ।

एक पद होने से स्तोकान्मुक्तस्य अपत्यं **स्तौकान्मुक्तिः**–यहां तद्धित प्रत्यय होने पर आदि अच् को वृद्धि हुई। समास का अन्त उदात्त होता है और शेष अच् अनुदात्त होते हैं।

षष्ठी 2.2.8

सुबन्तेन प्राग्वत। राज–पुरुषः।

व्याख्याः षष्ठीति–षष्ठ्यन्त का सुबन्त के साथ समास हो।

राजपुरुषः–(राजा का आदमी, सरकारी आदमी)–'राज्ञः' इस षष्ठ्यन्त का 'पुरुषः' इस सुबन्त के साथ समास हुआ और तब समास निमित्तक कार्य सुप् का लुक् आदि होकर रूप सिद्ध हुआ। 'राजपुरुषः' इस समस्त पद का लौकिक विग्रह 'राज्ञः पुरुषः' और अलौकिक विग्रह 'राजन् ङस् पुरुष सु' है।

पूर्वाऽपराऽधरोत्तरम् एकदेशिनैकाऽधिकरणे 2.2.1

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते, एकत्वसंख्या विशिष्टश्चेद् अवयवी। षष्ठीसमासाऽपवादः। पूर्वं कायस्य–पूर्व–कायः। अपर–कायः। एकाऽधिकरणे किम्–पूर्वश्छात्राणाम्।

व्याख्याः पूर्वापरेति–'पूर्व (आगे का), अपर (पीछे का), अधर (नीचे का) और उत्तर (ऊपर)–इन अवयव–वाचक शब्दों का अवयवीवाचक शब्द के साथ समास होता है, यदि अवयवी एकत्व–संख्या–युक्त हो अर्थात् एकवचनान्त हों एकदेश अवयव को कहते हैं और एकदेशी अवयवी को। इसलिए सूत्रस्थ एकदेशिना–पद का अर्थ वृत्ति में 'अवयविना' किया गया है। अधिकरण अर्थ को कहते हैं, इसलिये सूत्रस्थ 'एकाऽधिकरण' पद का अर्थ वृत्ति में किया गया है, एकत्वसंख्या–विशिष्ट अर्थात् एकत्वसंख्या जब अर्थ हो।

षष्ठीसमासेति–अवयवी का अवयव पूर्व आदि के साथ इस सूत्र से समास विधान षष्ठीसमास का बाधक है। यदि षष्ठी समास हो तो षष्ठ्यन्त का पूर्व प्रयोग हो जाएगा। इस एकदेशिसमास के करने पर समासशास्त्र में प्रथमान्त पद पूर्व आदि अवयव–वाचक शब्द हैं, उनसे बोध्य पद पूर्व आदि हैं उनका पूर्व प्रयोग होता है। पूर्व प्रयोग के लिये ही यह एकदेशिसमास किया गया है।

पूर्व–कायः (शरीर का अगला भाग)–'पूर्वं कायस्य' यह लौकिक विग्रह है। 'पूर्व अम् काय ङस्' इस अलौकिक विग्रह मे प्रकृत सूत्र से समास हुआ क्योंकि काय अवयवी है वह एकवचनान्त है, और 'पूर्व' शब्द अवयव–वाचक है। समासशास्त्रस्थ प्रथमान्त पद बोध्य होने के कारण पूर्व शब्द का पूर्वनिपात हुआ। इसी प्रकार–अपरं कायस्य–**अपरकायः** (शरीर का पिछला भाग)–इसमें भी समास होता है।

एकाधिकरणे इति–अवयवी एकत्व–संख्याविशिष्ट अर्थात् एकवचनान्त हो, ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि **पूर्वश्छात्राणाम्–**यहां समास न हो। वहां अवयवी 'छात्राणाम्' बहुत्वसंख्याविशिष्ट है, एकत्वसंख्याविशिष्ट नहीं, इसलिये समास नहीं हुआ।

यहां तत्पुरुष होने पर भी पूर्वपद का अर्थ प्रधान है, उसी का अन्य पदार्थों के साथ अन्वय होता है। इसीलिये समासप्रकरण के प्रारम्भ में दिये गये तत्पुरुष के लक्षण में प्रायः पद रखा गया है ताकि उत्तरपद के अर्थ के प्रधान न होने पर भी तत्पुरुष के अधिकार के अन्तर्गत होने से तत्पुरुष संज्ञा हो।

अर्धं नपुंसकम् 2.2.2

समांशवाची–अर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्याः–अर्ध–पिप्पली।

व्याख्याः अर्धमिति–बराबर आधे भाग का वाचक जो नित्य नपुंसक अर्धशब्द है, उसका सुबन्त के साथ समास होता है।

यह भी पूर्व सूत्र के समान षष्ठीसमास का बाधक है। 'अर्थ' शब्द का पूर्वनिपात इस सूत्र का फल है। षष्ठीसमास होने पर पिप्पली शब्द का प्रयोग पहले होता।

अर्धपिप्पली (आधी पिपली)–'अर्धं पिप्पल्याः' इस लौकिक तथा 'अर्ध' अम् पिप्पली ङस्' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ। समास शास्त्रस्थित प्रथमान्त 'अर्धम्' पद के द्वारा बोध्य विग्रह में स्थित अर्ध शब्द का पूर्वनिपात हुआ। तब सुब्लुक् आदि कार्य होने पर रूप सिद्ध हुआ।

यहां भी पूर्वपद का अर्थ प्रधान है।

सप्तमी शौण्डैः 2.1.40

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्। अक्षेषु शौण्डः–अक्षशौण्डः। इत्यादि।

'द्वितीया'–'तृतीया' इत्यादियोगविभागाद् अन्यत्राऽपितृतीयादि–विभक्तीनां प्रयोगावशात् समासो ज्ञेयः।

व्याख्याः सप्तमीति–सप्तम्यन्त पद का शौण्ड आदि शब्दों के साथ समास होता है।

अक्ष–शौण्डः (पासे खेलने में प्रवीण)–'अक्षेषु शौण्डः' इस लौकिक और 'अक्ष सुप् शौण्ड सु' इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ। सप्तम्यन्त का पूर्वनिपात हुआ। तब सुब्–लुक् आदि कार्य होने पर रूप सिद्ध हुआ। **द्वितीया–तृतीयेति**–द्वितीयाः, तृतीया आदि का योगविभाग करने से अन्यत्र भी द्वितीयादि विभक्तियों का प्रयोगवश समास समझना चाहियें कहने का तात्पर्य यह है कि सूत्रों के द्वारा द्वितीयान्त आदि का पतित आदि पदों के साथ समासविधान किया गया है। परन्तु पतित आदि से भिन्न पदों के साथ भी समास मिलता है, उनकी सिद्धि के लिये 'द्वितीया' आदि को पृथक् योग–सूत्र बना लिया जाएगा। जिसका अर्थ सामान्य रूप से होगा 'द्वितीयान्त का अन्य समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है' इसमें पतित आदि का संबंध नहीं रहेगा। अतः इस योगविभाग से पतित आदि से भिन्न पदों के साथ समास सिद्ध हो जाएगा।

यहां तक विभक्त्यन्तों का समास हुआ। इन समासों को व्यधिकरण तत्पुरुष कहते हैं, क्योंकि इनमें पूर्वपद और उत्तरपद का अर्थ भिन्न–भिन्न होता है।

दिक्संख्ये संज्ञायाम् 2.1.50

पूर्वेषुकाशमी। सप्तर्षयः। 'संज्ञायाम् एव'इति नियमाऽर्थं' सूत्रम्, तेनेह न–उत्तरा वृक्षाः, पंच ब्राह्मणाः।।

व्याख्याः दिक्संख्ये इति–दिशावाचक और संख्यावाचक सुबन्तों का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है संज्ञा में।

पूर्वेषुकामशमी–यह प्राचीन समय के गांव का नाम है। इसका 'पूर्वः इषुकामशमी' यह लौकिक विग्रह है। **सप्तर्षयः**–भी सात ऋषियों–वशिष्ट आदि की संज्ञा है। यहां संख्यावाचक का प्रकृत सूत्र से समास होता है।'सप्त च ते ऋषयः' यह लौकिक विग्रह है।

संज्ञायामेवति–'दिग्वाचक और संख्यावाचक सुबन्तों का समानाधिकरण सुबन्तों के साथ संज्ञा में ही समास होताहै' इस प्रकार नियमार्थ यह सूत्र है। अभिप्रायः यह है कि –विशेषणं विशेष्येण बहुलम् 2.1.57' इस सूत्र से प्राप्त समास का यह सूत्र नियम करता है कि यदि विशेषण दिग्वाचक और संख्यावाचक हो तो समास संज्ञा में ही होता है।

तेनेह न इति–इसलिये **उत्तर वृक्षाः, पंच ब्राह्मणाः**–यहां समास नहीं हुआ, क्योंकि यहां संज्ञा नहीं है।

तद्धिताऽर्थोत्तरपद–समाहारे च 2.1.51

तद्धितार्थे विषये, उत्तरपदे च परतः, समाहारे च वाच्ये, दिक्–संख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भवः–पूर्वशालः, इति समासे जाते। (वा) सर्वनाम्नो वृत्ति–मात्रो पुंवद्भावः।

व्याख्याः तद्धितार्थेति–तद्धिताऽर्थ के विषय में, उत्तरपद रहते और समाहार जब वाच्य हो, तब दिशावाचक और संख्यावाचकों का समास होता है। इस सूत्र में तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार पदों का द्वन्द्व समास हुआ है। उस समस्त शब्द से सप्तमी विभक्ति हुई। सप्तमी यद्यपि यहां एक है, परन्तु विषयभेद से उसके भिन्न–भिन्न अर्थ हो गये हैं, 'एकापि सप्तमी विषयभेदाद् भिद्यते'। तद्धितार्थ के साथ 'सप्तमी का अर्थ है'–**विषय,** उत्तरपद के साथ–पर और समाहार के साथ–**वाच्य**। इसलिये ही उपर्युक्त अर्थ किया गया है। दिग्वाचक का समाहार अर्थ में समास नहीं होता, क्योंकि कहीं ऐसा कहा नहीं गया। अतः दिग्वाचक सुबन्त के तद्धितार्थ के विषय में ओर उत्तरपद परे रहते ही समास होगा, इस प्रकार दो ही उदाहरण होंगे। संख्या

वाचक के समास के तीनों स्थलों में उदाहरण मिलेंगे। इस प्रकार इस सूत्र के पांच उदाहरण होंगे। परन्तु यहां तीन ही उदाहरण दिये गये हैं। एक दिग्वाचक का तद्धितार्थ के विषय में और दो संख्यावाचक के उत्तरपद परे रहते और समाहार अर्थ में। सब से दिग्वाचक पद का तद्धितार्थ विषय का उदाहरण देते हैं।

पूर्वस्यामिति—तद्धित के अर्थ में समास दिखाने के लिये यह विग्रह वाक्य दिखाया गया है। पूर्ववाली शाला में होनेवाला, 'तत्र भवः—होनेवाला' अर्थ तद्धित का है। उस अर्थ में पूर्व और शाला का समास हुआ। सुप् का लोप होने पर 'पूर्वा शाला' यह स्थिति बनी।

(वा) **सर्वनाम्न इति**—सर्वनाम को वृत्तिमात्रा में अर्थात् कृदन्त आदि पाचों वृत्तियों में पुंवद्भाव हो।

यहां समास वृत्ति है। 'पूर्वा' सर्वनाम है, पुंवद्भाव होने पर टाप् नहीं रहा। 'पूर्वशाल' यह स्थिति बनी।

दिक–पूर्वदाद् अ–संज्ञायां ञः 4.2.107

अस्माद् भवार्थे ञः स्याद् असंज्ञायाम्।

व्याख्याः दिक्पूर्वेति—जिसके पूर्व दिशावाचक शब्द हो उससे भव (होनेवाला) अर्थ में ञ प्रत्यय हो, पर संज्ञा में न हो।

ञ का ञकार इत्संज्ञक है, केवल अकार शेष रहता है।

'पूर्वशाल' शब्द में पूर्वपद 'पूर्व' दिशावाचक है, अतः प्रकृत सूत्र से ञ प्रत्यय हुआ।

तद्धितेष्वचाम् आदेः 7.2.117

ञिति णिति च तद्धितेष्वचाम्–आदेरचो वृद्धिः स्यात्। यस्येति च–पौर्वशालः। पंच गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ। (वा) द्वन्द्व–तत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्।

व्याख्याः तद्धितेष्विति—ञित् और णित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अचों में आदि अच् की वृद्धि हो।

पौर्वशालः (पूर्ववाले घर में जो पैदा हुआ हो)—यहां 'पूर्वशाल+अ' इस पूर्वोक्त स्थिति में ञित् ञ प्रत्यय परे होने के कारण अचों में आदि अच् ऊकार को वृद्धि औकार हुई। 'यस्येति च 6.4.48' से लकार के आगे के अकार का लोप होने पर प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

(वा) **द्वन्द्वेति**—उत्तरपद परे रहते जो द्वन्द्व और तत्पुरुष समास होते हैं, उनको नित्य समास कहना चाहिए।

'पंच गावो धनं यस्य' इस त्रिपद बहुव्रीहि के अन्तर्वर्ती 'पंचगव' इस तत्पुरुष को विकल्प प्राप्त होता है, उसका इस वार्तिक से निषेध हो जाता है क्योंकि यहां उत्तर पद परे रहते तत्पुरुष समास होता है। **पंच गावो धनं यस्य** (पांच गाय हैं धन जिसके)—यहां तीन पदों का बहुव्रीहि समास होता है। इसके पूर्व 'पंच' और 'गावः' का 'तद्धितार्थ–' सूत्र से उत्तरपद धन परे रहते समास हुआ और प्रकृत वार्तिक से वह नित्य हुआ, क्योंकि वह तत्पुरुष उत्तरपद परे रहते हुआ। समास होने पर सुप् का लोप हुआ।

गोरतद्धित–लुकि 5.4.92

गोऽन्तात् तत्पुरुषात् टच् स्यात् समासाऽन्तो, न तु तद्धित–लुकि। पंच–गव–धनः।

व्याख्याः गोरिति—गो शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे तपुरुष से टच् प्रत्यय समासान्त हो, परन्तु तद्धित प्रत्यय का जहां लोप हुआ हो, वहां न हो। **पंच–गव–धनः**—यहां 'पंचन् गो' यह तत्पुरुष गोशब्दान्त है, इसलिये प्रकृत सूत्र से टच् प्रत्यय समासान्त हुआ। तब गो के ओकार को अव् आदेश होकर उक्त रूप से सिद्ध हुआ।

तत्पुरुषः समानाऽधिकरणः कर्मधारयः 2.1.42

व्याख्याः तत्पुरुष इति–समानाधिकरण तत्पुरुष को कर्मधारय कहते हैं। समानाधिकरण का अर्थ है समानविभक्त्यन्त–पद–विषयक अर्थात् जहां पूर्व और उत्तरपद दोनों समानविभक्त्यन्त हों।

इसके पूर्व जो तत्पुरुष आये हैं उनमें पूर्व और उत्तरपद भिन्नविभक्त्यन्त है अतः उन्हें व्यधिकरण तत्पुरुष कहते हैं।

संख्या–पूर्वो द्विगुः 2.1.52

'तद्धितार्थ'– इत्यत्रोक्तः त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः संख्यापूर्व इति–'तद्धितार्थ–' इस सूत्र में बताया हुआ तीन प्रकार का संख्यापूर्व समास 'द्विगु' संज्ञक होता है अर्थात् उसकी 'द्विगु' संज्ञा होती है।

द्विगुरेकवचनम् 2.4.1

द्विग्वर्थः समाहारः एकवत् स्यात्।

व्याख्याः द्विगुरिति–द्विगु समास का अर्थ समाहार एकवचन हो।

स नपुंसकम् 2.4.17

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्। पंचानां गवां समाहारः–पंचगवम्।

व्याख्याः स इति–समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक हो।

पंच–गवम् (पंचानां गवां समाहारः, पांच गायों का समुदाय)–यहां 'पंचन् आम् गो आम्' इस अलौकिक विग्रह में समाहार अर्थ में 'तद्धितार्थ–' से समास हुआ। समास होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा हुई और तब सुप् लुक् अर्थात् दोनों आम् का लोप। नकार का 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.78' से लोप और 'गोरतद्धितलुकि 5.4.92' से टच् प्रत्यय समासान्त होने पर ओकार को अव् आदेश होकर 'पंचगव' शब्द बना। संख्यापूर्व होने से इसकी 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगु संज्ञा हुई। समाहार होने से 'द्विगुरेकवचनम्' से एकवचनान्त और 'स नुंसकम्' से नपुंसक होकर 'पंचगवम्' रूप सिद्ध हुआ।

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् 2.1.57

भदेकं भद्येने समानाऽधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् ।नीलम् उत्पलम् नीलोत्पलम्। बहुलग्रहणात् क्वचिद् नित्यम् कृष्ण–सर्पः, क्वचिद् न –रामो जामदग्न्यः।

व्याख्याः विशेषणमिति–भेदक–विशेषण–का भेद्य–के साथ बहुलता से समास होता है।

भेदक विशेषण को कहते हैं, क्योंकि वह विशेष्य का अन्य से भेद बताता है और भेद्य विशेष्य को कहते हैं, क्योंकि उसे ही अन्य से भिन्न किया जाता है। विशेषण और विशेष्य दोनों एक ही पदार्थ को कहते हैं, इसलिये इन्हें समानाधिकरण कहा जाता है। विशेषण और विशेष्य के समास में विशेषण पहले आता है क्योंकि समासशास्त्र में 'विशेषण' पद प्रथमान्त है।

नीलोत्पलम् (नीलम्, उत्पलम्, नीला कमल)–'नील सु उत्पल सु इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् का लुक् होकर 'नीलोत्पल' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में

उक्त रूप सिद्ध हुआ।

बहुलेति—विशेषण समासविधायक सूत्र में 'बहुल' ग्रहण से यह समास कहीं नित्य होता है और कहीं होता ही नहीं।

कृष्ण—सर्पः (काला सांप)—यहां 'कृष्ण सु सर्प सु' इस अलौकिक विग्रह में विशेषण समास हुआ। बहुल ग्रहण से यहां नित्य हुआ। नित्य समास होने से 'कृष्णश्वासी सर्पश्च' इस विग्रह वाक्य के द्वारा समास का अर्थ नहीं प्रतीत होता। 'काला सांप' की विशेष जाति है।

रामो जामदग्न्यः—यहां विशेष्य विशेषण हैं, पर 'बहुल' ग्रहण के कारण के साथ समास नहीं होता।

उपमानानि सामान्य—वचनैः 2.1.55

घन इव श्यामः—घन—श्यामः। (वा) शाक—पार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्। शाक—प्रियः पार्थिवः—शाकपार्थिवः। देव—पूजको ब्राह्मणः—देवब्राह्मणः।

व्याख्याः उपमानानीति—उपमानवाचक सुबन्त का समानधर्मवाचक सुबन्त के साथ समास होता है। **उपमान** उसे कहते हैं जिससे किसी की समता बताई जाय और जिस धर्म से समता बताई जाती है उसे साधारण धर्म कहते हैं।

घन—श्यामः(घन इव श्यामः, मेघ के समान श्याम वर्णवाला)—'घन सु श्याम सु' इस अलौकिक विग्रह में उपमान घन का साधारणधर्मवाचक श्याम पद के साथ समास प्रकृत सूत्र से हुआ। सुप् का लोप होने पर प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ। लौकिक विग्रह में समानतावाचक शब्द 'इव' का ग्रहण अर्थ की स्पष्टता के लिये है, समास तो घन और श्याम इन दो पदों का ही होता है। समानता अर्थ घन इस उपमानपद से ही लक्षण के द्वारा प्रतीत होता है अर्थात् 'घन' यह पद 'घन' के समान' अर्थ में लाक्षणिक है।

(वा) **शाकेति**—'शाक—पार्थिव' आदि समस्त पदों की सिद्धि के लिये उत्तरपद के लोप का परिगणन होता है।

शाक—पार्थिवः (शाकप्रियः, पार्थिवः, शाक को पसन्द करनेवाला राजा)—यहां शाकप्रिय और पार्थिव का समास हुआ और शाकप्रिय के उत्तर पद 'प्रिय' का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

देव—ब्राह्मणः (देवपूजको ब्राह्मणः, देवताओं को पूजनेवाला ब्राह्मण)—यहां देवपूजक और ब्राह्मण पदों का समास हुआ और देवपूजक के उत्तरपद 'पूजक' का लोप होकर रूप बना।

नञ् 2.2.6

नञ् सुपा सह समस्यते

व्याख्याः नञ् इति—नञ् का सुबन्त के साथ समास होता है। निषेधार्थक न को नञ् कहते हैं। इस समास को नञ् समास कहा जाता है।

न—लोपो नञः अचि 6.3.7

नञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः।

व्याख्याः नलोप इति—नञ् के नकार का लोप हो उत्तरपद परे रहते।

अब्राह्मणः (ब्राह्मण से भिन्न और ब्राह्मण के सदृश अर्थात् क्षत्रिय आदि)—'न ब्राह्मणः' यह लौकिक विग्रह और

'न ब्राह्मण सु' यह अलौकिक विग्रह है। नञ् का पूर्व सूत्र से 'ब्राह्मणः' इस सुबन्त के साथ समास होने पर प्रकृत सूत्र से उसके नकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

तस्माद् नुड् अचि 6.3.74

नलुप्त–नकाराद् नञ उत्तरपदस्याजादेः 'नुट्' आगमः स्यात् अनश्वः। 'नैकधा' इत्यादौ तु न'शब्देन सह 'सह सुपा 2.1.4'' समासः।

व्याख्याः तस्मादिति–जिस नञ् के नकार का लोप हो गया और उससे पर अजादि उत्तरपद को नुट् आगम हो।

अनश्वः (न अश्वः, घोड़े से भिन्न और घोड़े के समान अर्थात् गधा आदि)–यहां नञ् समास होने पर 'नलोपो नञः' से नञ् के नकार का लोप हुआ। तब 'अ अश्व' इस स्थिति में उत्तरपद के अजादि होने के कारण उसे 'तस्मान् नुड अचि' से नुट् आगम होकर रूप सिद्ध हुआ।

नैकधेति–नैकधा (अनेक प्रकार से) में न शब्द का ''सह सुपा'' सूत्र से केवल समास हुआ।

यदि नञ् शब्द का समास किया जाए तो नकार का लोप होकर उत्तरपद 'एकधा' के अजादि होने से उसे नुट् आगम होगा और 'अनेकधा' रूप बनेगा।

कुगति प्रादयः 2.2.18

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितःपुरुषः–कु–पुरुषः।

व्याख्याः कु–गतीति–'कु शब्द गतिसंज्ञक और प्र आदि का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है। **कु–पुरुषः** (कुत्सितः पुरुषः, बुरा आदमी)–यहां 'कु' शब्द अव्यय का समर्थ सुबन्त पुरुष के साथ प्रकृत सूत्र से समास होकर रूप बना।

गतिसंज्ञक और प्र आदि के उदाहरण आगे दिये जाएंगे। यद्यपि गतसंज्ञा प्र आदि की ही होती है, तथापि प्र आदि का पृथग् ग्रहण इसलिये किया गया है कि जिस क्रिया के साथ प्र आदि हो उसी के प्रति वे गतिसंज्ञक होते हैं अन्य के प्रति ये केवल प्र आदि ही कहे जाते हैं। जैसे–प्रगत आचार्यः प्राचार्यः' यहां गमन क्रिया के साथ योग होने से प्र की गतिसंज्ञा उसी के प्रति होगी, आचार्य के प्रति नहीं, उसके प्रति प्र केवल प्राऽदि ही कहा जाएगा।

ऊर्यादि–च्वि डाचश्च 1.4.61

ऊर्यादयः, च्व्यन्ता, डाजन्ताश्च क्रिया–योगे गति–संज्ञाः स्युः। ऊरीकृत्य। पटपटाकृत्या शुक्लीकृत्य। सु–पुरुषः।

(वा) प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया। प्रगत आचार्यः–प्राचार्यः। (वा) अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया। अतिक्रान्ता मालामिति विग्रहे।

व्याख्याः ऊर्यादीति–ऊरी आदि, च्विप्रत्ययान्त और डाच्–प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते हैं। गतिसंज्ञा का फल है पूर्व सूत्र से समास होना। इन गति संज्ञकों के समास को 'गतिसमास' कहते हैं।

ऊरीकृत्य (स्वीकार करके)–यहां कृ धातु के योग में प्र आदि से भिन्न स्वीकारार्थक ऊरी' शब्द की प्रकृत सूत्र से गतिसंज्ञा हुई, 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से उसका 'कृ' धातु के साथ समास हुआ। समास के फलरूप में 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37' से क्त्वा को ल्यप् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

शुक्लीकृत्य (अशुक्लं शुक्लं कृत्वा–जो सफेद नहीं उसे सफेद करके)–यहां अभूततद्भाव अर्थ में 'अभूतद्भावे इति वक्तव्यम्' इस वार्तिक के सहयोग से 'कृ–भ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः' इस सूत्र के द्वारा च्वि प्रत्यय होने पर 'शुक्ल' के अकार का 'अस्य च्वौ' से ईकार हुआ। च्विप्रत्ययान्त होने से 'शुक्ली' की गति संज्ञा हुई और पूर्व सूत्र से कृ के साथ समास होने पर 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् से क्त्वा प्रत्यय को ल्यप् आदेश करने पर रूप बना।

पटपटाकृत्य (पटत् पटत् इति कृत्वा, पट पट कर)–यहां 'पटत्' इस अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण शब्द से कृ धातु के योग से 'अव्यक्ताऽनुकरणाद् द्व्यजवरार्धाद् अनितौ डाच् सूत्र से डाच् प्रत्यय हुआ। डाच् का आ शेष रहा। 'डाचि च द्वे बहुलम्' से 'पटत्' को द्वित्व हुआ। डित् होने से डाच् परे रहते 'अत्' टि का लोप हुआ और पूर्व 'पटत्' के तकार और उत्तर पटा डाजन्त के पूर्व पकार–दोनों के स्थान में पररूप पकार होकर 'पटापटाकृ' यह रूप बना। इनमें 'पटपटा' की डाजन्त होने से गतिसंज्ञा होकर समास हुआ और तब क्त्वा के स्थान में ल्यप् होकर रूप सिद्ध हुआ।

सुपुरुषः (शोभनः पुरुषः–अच्छा आदमी)–यहां सु प्रादि है, क्योंकि क्रिया का योग न होने से इसकी गति संज्ञा नहीं, यह केवल प्रादि है इसका समर्थ सुबन्त 'पुरुषः' के साथ 'कु–गति–प्रादयः' इस सूत्र से समास होकर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **प्रादय इति**–प्र आदि का प्रथमान्त समर्थ के साथ गत इत्यादि अर्थ में समास होता है। कुगतिप्रादयः से प्रादि समास सामान्य रूप से कहा गया है, अव्यवस्था से समास न होने लगे, इस कारण व्यवस्था के लिये ये वार्तिक पढ़े गये हैं।

प्राचार्यः–(प्रगत आचार्यः, प्रधान आचार्य)–यहां प्र का प्रथमान्त 'आचार्यः' के साथ समास होने पर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **अत्यादय इति**–अति आदि का द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है क्रान्त आदि अर्थ में। **अतिक्रान्तो मालाम्**–माला का जो अतिक्रमण कर दिया हो, इस विग्रह में द्वितीयान्त समर्थ 'मालाम्' के साथ क्रान्त अर्थ में 'अति' का समास हुआ। समासशास्त्र 'अत्यादयः–' में प्रथमान्त पद 'अत्यादयः' से बोध्य विग्रह में वर्तमान 'अति' शब्द की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपर्सन संज्ञा होने पर 'उपसर्जनम् पूर्वम्' से उसका पूर्व प्रयोग हुआ। समास होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा होने से 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् का लोप होने पर 'अतिमाला' वह स्थिति बनी।

एक–विभक्ति चाऽपूर्व–निपाते 1.2.44

विग्रहे यद् नियतिविभक्तिकं तद् उपसर्जनसंज्ञं स्याद् न तु तस्य पूर्वनिपातः।

व्याख्याः एक–विभक्तीति–विग्रह में जो नियतविभक्ति हो अर्थात् जिससे एक ही विभक्ति आती हो, उसकी उपसर्जन संज्ञा हो, परन्तु उसका पूर्व प्रयोग न हो।

उपसर्जन संज्ञा का फल पूर्व प्रयोग होता है, उसका यहां निषेध कर दिया गया है, फिर इस उपसर्जन संज्ञा का क्या फल होता है? इस उपसर्जन संज्ञा का फल स्त्रीलिंग को ह्रस्व करना आगे बताया जा रहा है।

'अतिक्रान्तो मालाम्' यहां 'मालाम्' इस पद की विग्रह में सदा द्वितीयान्त रहने से नियत–विभक्तिक होने के कारण उपसर्जन संज्ञा हुई।

गो–स्त्रियोरुपसर्जनस्य 1.2.48

उपसर्जनं यो गोशब्दः, स्त्रीप्रत्यान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। अतिमालः। (वा) अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः। (वा) पयार्दयोग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या। परिग्लानाध्ययनाय– पर्यध्ययनः। (वा) निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पंचम्या। निष्क्रान्त कौशाम्ब्या–निष्कौशाम्बिः।

व्याख्याः गो–स्त्रियोरिति–उपसर्जन जो गो–शब्द और स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द, तदन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो। **अति–मालः**–यहां उपसर्जन माला शब्द स्त्रीप्रत्ययान्त है, तदन्त अतिमाला प्रातिपदिक के अन्त आकार को ह्रस्व होने पर 'अतिमाल' यह ह्रस्व अकारान्त शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ। (वा)**अवादय इति**–अब आदि का तृतीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ क्रुष्ट आदि अर्थ में समास होता है। **अव–कोकिलः**–(अवक्रुष्टः कोकिला, कोयल से कूजित हुआ)–यहां अब का तृतीयान्त समर्थ 'कोकिलया' के साथ प्रकृत वार्तिक से समास हुआ। सुप् का लोप होने पर 'एक विभक्ति– चाऽपूर्व–निपाते' से विग्रह में नियतविभक्तिक होनेसे 'कोकिला' की उपसर्जन संज्ञा हुई और 'गो–स्त्रियोरूपसर्जनस्य' से ह्रस्व होकर रूप सिद्ध हुआ। (वा)**पर्यादय इति**–परि आदि का चतुर्थ्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ ग्लानि आदि अर्थ में समास होता है। **पर्यध्ययनः** (परिग्लानोऽध्ययनाय, पढ़ने के लिये खिन्न)–यहां परि का चतुर्थ्यन्त समर्थ 'अध्ययनाय' इस सुबन्त के साथ ग्लान अर्थ में समास होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **निरादय इति**–निर् आदि का पचंम्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ निष्क्रान्त इत्यादि अर्थ में समास होता है। **निष्कौशाम्बिः** (निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः, कौशाम्बी[30] नगरी से जो निकल गया है)–यहां निर् का निष्क्रान्त अर्थ में पंचंम्यन्त समर्थ कौशाम्ब्याः के साथ समास तथा सुप् का लोप होने पर विग्रह में नियत विभक्ति होने से 'कौशाम्बी' की उपसर्जन संज्ञा होकर ह्रस्व हुआ।

'कुगति–प्रादयः' से होनेवाले समास को जब वह गति का हो तब गति–समास और जब प्रादि का हो तब प्रादि–समास कहा जाता है।

तत्रोपपदं सप्तमी–स्थम् 3.1.91

सप्तम्यन्ते पदे 'कर्मणि' इत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि, तद्–वाचकं पदम् उपपदसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः तत्रोपपदमिति–सप्तम्यन्त पद 'कर्मणि' इत्यादि में वाच्यरूप से स्थित जो कुम्भ आदि उसके वाचक पद की उपपद संज्ञा हो।

'कमर्ण्यण्' आदि सूत्रों में 'कर्मणि' आदि सप्तम्यन्त पद आते हैं, उसमें 'कुम्भ' आदि अर्थवाच्य रूप से रहते हैं, क्योंकि अर्थ वाचक पद में वाच्यरूप से रहता है और वाचक पद अपने अर्थ में वाचकरूप में, इसलिये उस अर्थ का वाचक पद 'कुम्भ' आदि 'कुम्भं करोतीति कुम्भकारः' इत्यादि उदाहरण में आता है, उसकी उपपद संज्ञा होती है।

उपपदम् अतिङ् 2.2.19

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते, अ–तिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति–कुम्भ–कारः। अतिङ् किम्–मा भवान् भूत्, 'माङि लुङ्' इति सप्तमीनिर्देशान् माङ् उपपदम्। (वा) गति–कारकोपपदानां कृद्भिः सह समास–वचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। व्याघ्री, अश्व–क्रीती, कच्छ–पी–इत्यादि।

व्याख्याः उपपदमिति–उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ नित्य समास होता है और यह समास अतिङन्त होता है

---

30 . *कौशाम्बी प्राचीन समय की एक नगरी का नाम है।*

अर्थात् तिङन्त के साथ नहीं होता। **कुम्भ–कारः** (कुम्भं करोति, घड़ा बनानेवाला–कुम्हार)–यहां पहले द्वितीयान्त कुम्भ उपपद रहते कृ धातु से 'कर्मण्यण्' से अण् प्रत्यय होने पर धातु के ऋकार को 'अचो ञ्णिति' से आर् वृद्धि हुई। तब 'कुम्भ अम् कार' इस अलौकिक विग्रह वाक्य में प्रकृत रूप से समास हुआ, क्योंकि यहां 'कर्मण्यण्' इस सूत्र में स्थित 'कर्मणि' इस सप्तम्यन्त पद से बोध्य उदाहरण में 'कुम्भ अम्' शब्द पूर्वोक्त 'तत्रोपपदं सप्तमी–स्थम्' सूत्र से उपपद संज्ञक है। तब प्रातिपदिक संज्ञा होने के कारण सुप् अम् का लोप होने पर 'कुम्भकार' शब्द बना। उसका प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

ध्यान में रहे कि यहां उत्तरपद 'कार' सुबन्त नहीं, क्योंकि सुबन्त बनने के पूर्व ही उसके साथ 'गति–कारकोपपदानां कृदिभ्ः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः–गति, कारक और उपपद का कृदन्त के साथ सुप् आने के पहले ही समास हो जाता है' इस परिभाषा के अनुसार उपपद का समास हो जाता है। इसलिए ही सूत्र की वृत्ति में 'समर्थेन' केवल कहा है, उसके साथ 'सुबन्तेन' नही कहा। तात्पर्य यह है कि इस सूत्र में 'सुपा' इसकी अनुवृत्ति नहीं आती। इस समास को **उपपद–समास** कहते हैं। कृदन्त प्रकरण मे जहां सूत्र में 'सुबन्त' उपपद रहते प्रत्यय का विधान किया गया हो, वहां उपपद के साथ कृदन्त के साथ इसी सूत्र से वह उपपद–समास होता है।

यह नित्य समास है, इसलिये 'कुम्भ कार' ऐसा स्वपद–विग्रह नही ंहोता, अपितु 'कुम्भं करोति' यह अस्वपद विग्रह होता है।

अतिङ् इति–यह समास अतिङन्त होता है, ऐसा क्यों कहा? इसलिए कि **'मा भवान् भूत्** यहां समास हो। यहां 'मा' उपपद है क्योंकि माङि लुङ् इस सूत्र में 'माङि' यह सप्तम्यन्त है और उसके द्वारा उदाहरण में 'मा' पद का ही ज्ञान होता है। परन्तु 'भूत्' यह तिङन्त है, इसके साथ समास नहीं हुआ।

(वा) **गति–कारकेति**–गति, कारक और उपपद का कृदन्त पदों के साथ समास सुप् आने के पूर्व हो। आगे तीनों के उदाहरण क्रमशः दिये जा रहे हैं।**गति–समास** का उदाहरण–व्याघ्री, (बाघिन)–यहा ं'व्याजिघ्रत–विशेष–रूप से चारों ओर सूंघती है' इस विग्रह में वि आङ् पूर्वक घ्रा से 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से क प्रत्यय हुआ। तब 'व्या' का 'घ्र' के साथ सुप् आने के पहले गति–समास हुआ। तदनन्तर 'व्याघ्र' शब्द के जातिवाचक होने से 'जातेरस्त्री– विषयाद् अ–योपधात्' सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर रूप बना। **कारक–समास** का उदाहरण अश्व–क्रीती और उपपद समास का उदाहरण कच्छ–पी है।

सुबन्त के साथ यदि यहां समास किया जाए तो 'घ्र' शब्द सुबन्त पहले बनेगा और सुप् आने के पहले लिङ्गबोधक प्रत्यय आएगा, क्योंकि 'स्वार्थद्रव्यलिङ्गसंख्याकारकाणि पंचकं प्रातिपदिकार्थः' के अनुसार सख्या–कारक–वाचक सुप् की अपेक्षा लिङ्ग अन्तरङ्ग है। अतः 'घ्र' शब्द जातिवाचक नहीं, क्योंकि उससे जाति का बोध नहीं होता, इसलिए जातिलक्षण ङीप् न होगा, किन्तु सामान्य टाप् प्रत्यय होने लगेगा। इस दोष को दूर करने के लिये प्रकृत परिभाषा ने सुप् आने के पूर्व समास का विधान किया, सुप् जब समास के पूर्व नहीं आएगा तो लिंगबोधक प्रत्यय भी नहीं आता। समास 'घ्र' प्रातिपदिक के साथ ही हो जाता है। तब 'व्याघ्र' शब्द बन जाता है, उससे जाति का बोध होता है, इसलिए जातिलक्षण ङीप् हो जाता है।

इस प्रकार सुप् आने के पूर्व समास के विधान का फल सिद्ध होता है।

अश्व–क्रीती–(अश्वेन क्रीता, घोड़े के द्वारा खरीदी हुई)–यहां 'क्रीत' के साथ समास हुआ। यहां भी दन्त 'क्रीत' के साथ सुप् आने के पूर्व ही समास हुआ। फल इसका 'क्रीतात् करण–पूर्वात्' से ङीप् होना है। अन्यथा सुप् के पहले लिंगबोधक प्रत्यय लाना होगा और केवल क्रीत से जाति का बोध नहीं होता, तब टाप् होता। समास पहले होने से फिर जातिवाचक शब्द होने से जातिलक्षण ङीष् होकर रूप सिद्ध हुआ

कच्छ–पी (कच्छेन पिबति, कछुवी)–यहां 'सुपि स्थः' इस सूत्र के 'सुपि' इस योगविभाग से सुबन्त कच्छ उपपद रहते

पा धातु से क प्रत्यय हुआ। 'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप होने पर उत्तरपद 'प' यह अकारान्त बना। तब सुप् होने से पहले 'प' के साथ पूर्वोक्त 'उपपदम् अतिङ्' सूत्र से उपपद–समास होने पर 'कच्छप' शब्द बना। जातिवाचक होने से स्त्रीलिंग में जातिलक्षण ङीष् प्रत्यय होकर रूप सिद्ध हुआ।

यहां भी समास यदि सुबन्त की अपेक्षा करे तो सुप् से पूर्व स्त्रीत्व की विवक्षा में केवल 'प' से जाति की प्रतीति न होने से टाप् ही होगा, ङीष् नहीं।

प्रथम उदाहरण 'कुम्भकारः' में इसीलिए 'कुम्भ अम् कार' इस प्रकार अलौकिक विग्रह में'कार' को शुद्ध प्रातिपदिक ही रखा है।

तत्पुरुषस्याऽङ्गुलेः संख्याऽव्ययादेः5.4.85

संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य–द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यः–निरङ्गुलम्।

व्याख्याः तत्पुषस्येति–संख्यावाचक और अव्यय जिसके आदि में और अङ्गुलि शब्द अन्त में हो, उस तत्पुरुष को समासान्त अच् प्रत्यय हो।

द्व्यङ्ग्लुम्(द्वे अङ्गुली प्रमाणस्य, दो अङ्गुल लम्बा)–यहा ''द्वि और अङ्गुल औ इस अलौकिक विग्रह में तद्धितार्थ प्रमाण में 'तद्धितार्थोत्तरपद–समाहारे च' से समास हुआ। प्रमाणार्थ में आये मात्रच् प्रत्यय का 'द्विगोर्लुग् अनपत्ये' इस सूत्र से लोप होने पर प्रातिपदिक के अवयव होने से सुप् औ दोनों का लोप हुआ। तब 'द्वि अङ्गुलि' इस स्थिति में संख्या–पूर्वक तत्पुरुष होने से प्रकृत सूत्र से अच् समासान्त प्रत्यय हुआ, अङ्गुलि के इकार का 'यस्येति च' से लोप होने पर 'द्व्यङ्गुल' यह अकारान्त शब्द बना। नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा के एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ। **निरङ्गुलम्** (निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः, अङ्गुलियों से निकला हुआ)–यहां निर् अव्यय का निर्गत अर्थ में 'निरादय क्रान्ताद्यर्थे पचंम्याः' से प्रादि समास हुआ और प्रकृत सूत्र से समासान्त अच् होने पर पूर्व इकार का लोप होकर पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ।

अहः–सर्वैकदेश–संख्यात–पुण्याच्च रात्रेः 5.4.87

एभ्यो रात्रेरच् स्यात्। चात् संख्याऽव्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वाऽर्थम्

व्याख्याः अहिरिति–अहः, सर्व, एकदेश, संख्यात और पुण्य इन शब्दों से और संख्या तथा अव्यय से परे रात्रि शब्द से समासान्त अच् प्रयय हो तत्पुरुष में।

अहर्ग्रहणमिति–इस सूत्र में 'अहः का ग्रहण द्वन्द्व समास के लिये है अर्थात् अहन् शब्द से पर रात्रि शब्द से अच् प्रत्यय द्वन्द्व में ही आएगा। क्योंकि 'अहन्' का 'रात्रि' के साथ द्वन्द्व समास होने की संभावना ही नहीं, तत्पुरुष को भी नहीं तत्पुरुष हो भी किस अर्थ में।

रात्रह्नाऽहाः पुंसि 2.4.29

एतदन्तौ द्वन्द्व–तत्पुरुषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्च– अहोरात्रः। सर्व–रात्रः। संख्यात–रात्रः। (वा) संख्या–पूर्वं रात्रं क्लीबम्। द्वि–रात्रम्। त्रि–रात्रम्।

व्याख्याः रात्राऽह्नाहा इति– रात्र, अह्न और अह–ये जिनके अन्त में हो, वे द्वन्द्व और तत्पुरुष पुंलिङ्ग मे ही आते हैं।

अहोरात्रः (अहश्च रात्रिश्च तयोः समाहारः दिन और रात)–यहां समाहार–द्वन्द्व में 'जातिरप्राणिनाम्' से

एकवद्भाव हुआ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसक होना प्राप्त था, उसे बाधकर प्रकृत सूत्र से पुलिंग हुआ। पूर्व सूत्र अच् प्रत्यय होने पर इकार का लोप हुआ। अहन् के नकार को 'अहन्' सूत्र से रु और उसे 'हशि च' से उकार होने पर गुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

सर्व–रात्रः (सर्वाः रात्रयः, सब रातें)–यहां सर्व शब्द का रात्रि के साथ 'पूर्वकालैक[31]–सर्व–जरत्–पुराण–नव–केवलाः' इस सूत्र से समास हुआ। कर्मधारय समास होने के कारण पूर्व सर्वा पद को 'पुंवत् कर्मधारय–जातीय–देशीयेषु' इस सूत्र से पुंवद्भाव होकर 'सर्व' बना और 'अहः–सर्वैक–' इस पूर्व सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होने पर इकार का लोप हुआ। तब 'सर्वरात्र' यह अकारान्त शब्द बना। प्रकृत सूत्र से पुंलिग होने पर रूप सिद्ध हुआ।

संख्यात–रात्रः (संख्याता रात्रयः, गिनी हुई रात)–इसकी सिद्धि 'सर्वरात्रः' के समान होती है। **पूर्व–रात्रः**[1] (पूर्वः रात्रेः, रात्रि का पूर्व भाग)–यहां एकदेशिसमास होकर पूर्व–सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय और प्रकृत सूत्र से पुंलिग होने पर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **संख्या–पूर्वमिति**–संख्यापूर्वक रात्र शब्द नपुंसकलिंग होता है।

द्वि–रात्रम्– (द्वयोः रात्रयोः समाहारः, दो रात्रियों का समुदाय)–यहां 'द्वि ओस रात्रि ओस्' इस अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपद–समाहारे च' से समाहार समास होने पर सुप् का लोप हुआ। तब संख्यापूर्वक अवयव होने से तत्पुरुष का रात्रि शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय पूर्वसूत्र से हुआ, इकार का लोप होने पर 'द्विरात्र' शब्द बना। प्रकृत सूत्रसे पुंल्लिङ्गप्राप्त था, उसका प्रकृत वार्तिक से बाध होकर नपसुंक लिङग् होकर रूप सिद्ध हुआ। **त्रि–रात्रम्** (तिसृणां रात्रीणां समाहारः, तीन रातों का समुदाय)–इसकी सिद्धि 'द्विरात्रम्' के समान होती है।

राजाऽहः सखिभ्यष्टच् 5.4.91

एतदन्तात् तत्पुरुषात् टच् स्यात्। परम–राजः।

व्याख्याः राजाऽह इति–राजन्, अहन् और सखि, ये शब्द अन्त में हों, तब उस तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो।

परम–राजः (परमश्च असौ राजा च, श्रेष्ठ राजा)–यहां परम और राजन् का समानाऽधिकरण तत्पुरुष समास हुआ। प्रकृत सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होने पर 'नस्तद्धिते से अन् का लोप होने पर अकारान्त शब्द बनकर प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार–**महाराजः, धर्मराजः, देवराजः, भोजराजः आदि राजन्** शब्दान्त तत्पुरुष के शब्द बनते हैं। **उत्तमाहः**(उत्तम दिन), **परमाहः** (श्रेष्ठ दिन), **पुण्याहम्** (पुण्य दिन) इत्यादि अहन् शब्दान्त और **कृष्णसखः** (कृष्ण का मित्रा), **परमसखः** श्रेष्ठ मित्रा, **विद्वत्सखः** विद्वानों का मित्रा–इत्यादि सखि शब्दान्त शब्द भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः 6.3.46

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे, जातीये च परे। महाराजः। प्रकारवचने जातीयर्, महाप्रकारो–महाजातीय।

व्याख्याः महत् शब्द को अकारान्तादेश हो समानाधिकरण उत्तरपद और जातीय परे होने पर। महाराजः, महाजातीयः। स्त्रीलिङ्ग महती शब्द को भी आकार अन्तादेश होता है, पहले 'पुवंत् कर्म धारय–जातीय–देशीयेषु' से

---

[31] . *यह सूत्र लघुकौमुदी में नहीं आया।*

पुंवद्भाव होने से ङीप् प्रत्यय का लोप होता है। जैसे–महती सुन्दरी–**महासुन्दरी,** महती नदी–इत्यादि।

महा–जातीयः (महाप्रकारः, बड़ा सा)–यहां महत् शब्द से प्रकार अर्थ में 'प्रकारवचने जातीयर्' से जातीयर् प्रत्यय हुआ। तब प्रकृत सूत्र से महत् शब्द को आकार अन्तादेशहुआ।

समानाधिकरण समास न होगा तो प्रकृत सूत्र से महत् शब्द को आकार अन्तादेश न होगा, जैसे–महतां–सेवा– महत्सेवा–बड़ों की सेवा–यहां षष्ठी समास है, अतःव्यधिकरण होने से आकार नहीं हुआ। समानाधिकरणता तो विशेषण और विशेष्य के समास में ही होती है।

बहुव्रीहि में उत्तरपद समानाधिकरण होता है, इसलिए वहां भी महत् शब्द को प्रकृत सूत्र से आकार अन्तादेश होता है, जैसे–महत् धनं महाधनः बहुत धनवाला, **महाफला** (महत्त फलं यस्या शा, बहु फलवाली इत्यादि।)

द्व्यष्टनः संख्यायाम् अबहुव्रीह्यशीत्योः 6.3.47

आत् स्यात्! द्वौ च दश व द्वा–दश। अष्टाः विंशतिः।

व्याख्याः द्व्यष्टन इति–द्वि और अष्टन् शब्द को आकार अन्तादेश हो संख्या अर्थ में, परन्तु बहुवीहि समास में और 'अशीति'शब्द परे रहते नहीं होता।

द्वा–दश द्वौ च च दश च अथवा द्व्यधिका दश–दो और दस अथवा दो अधिक दस अर्थात् बारह–यहां द्वि और द्वादशन् सुबन्तों का द्वन्द्व समास अथवा 'सिंः तु' तु अधिकान्त संख्या संख्यया समानाधिकरणाधिकारोऽधिकलोश्च इस वार्तिक से समास हुआ और अधिक शब्द को लोप। प्रकृत सूत्र से द्वि को आकार अन्तादेश हुआ। **अष्टा–विंशति** (अष्टौ च विंशतिश्च अथवा अष्टाधिका विंशतिश्च–अट्ठाईस) इसकी सिद्धि भी 'द्वाद्वश' के समान होतीहै। इसी प्रकार–**द्वा–विंशति** (बाईस) **द्वा–विंशत्** (बत्तीस)**अष्टा–दश** (अट्ठारह) **अष्टा–त्रिंशत्** (अठतीस)–इत्यादि शब्द बनते हैं।

---

1. यह उदाहरण वहां मूल में नहीं दिया गया है।

पर–वत् (ल्) लिङ्गं द्वन्द्व–तत्पुरुषयोः

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुट–मयूर्याविमे। मयूरी–कुक्कुटाविमो। अर्धपिप्पली।

व्याख्याः परवदिति–द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर शब्द के समास में पर शब्द के समान लिङ्ग हो।

समस्त पद के लिङ्ग में यह सन्देह हो सकता है कि पूर्व पद के अनुसार लिङ्ग हो या उत्तरपद के अनुसार। इस सन्देह को निवृत्ति के लिये परवत् लिङ्ग आदि का विधान है।

कुक्कुट–मयूर्यौ (कुक्कुटश्च मयूरी व मुर्गा और मोरनी)–यहां द्वन्द्व समास है पर यह मयूरी है, उसी के समान स्त्रीलिङ्ग सम्पूर्ण समस्त से भी हुआ।

'इमे' इस सर्वनाम का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग को स्पष्ट करने के लिये किया गया है अन्यथा कुक्कुट–मयूर्यौ कहने मात्र से यह नहीं सिद्ध होता है कि स्त्रीलिङ्ग है क्योंकि है समस्त पद पुल्लिङ्ग तो तब भी इसी प्रकार रूप बनता। इसलिये स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम पद 'इमे' का देना सफल है।

मयूरी–कुक्कुटौ (मोरनी और मुर्गा)–यहां पर पद कुक्कुट पुंल्लिङ्ग है। द्वन्द्व समास होने से समस्त पुंल्लिङ्ग हुआ है। 'इमौ' इस सर्वनाम का पूर्ववत स्पष्टता के लिये किया गया है।

अर्ध–पिपल्ली–अर्धं पिप्पल्याः, पिप्पली का आधा–यहां 'अर्ध नपुंसकम्' से समास होने पर समस्त पद प्रकृत

से पर पद 'पिप्पली' के समान स्त्रीलिङ्ग हुआ।

(वा) **द्विगु–प्राप्ता पन्नङसंपूर्ण**–गतिसभासेषु प्रतिषेधोपचयः। पंचसु कपालेषु संस्कृतः पंचकपालः पुरोडाशः (वा)**द्विगु–प्राप्तेति**–द्विगु समास प्राप्तापन्न और अलं–पूर्वक समास तथ गति (प्रादि) समास से पर शब्द के समान लिङ्ग न हो।

पंच–कपालः–(पंचसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः–पांच कपालों में संस्कृत)–यहां तद्धितार्थ संस्कृत में द्विगु समास हुआ। पर पद कपाल नपुंसकलिङ्ग है, उसके समान नपुंसकलिङ्ग समस्त पद से नहीं हुआ।

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया 2.2.4

समस्येते अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तोजीविका प्राप्त–जीविकः। आपन्न–जीविकः। अलं कुमार्यै–अलं–कुमारिः, अत एव ज्ञापकात समासः। निष्कौशाम्बिः।

व्याख्याः प्राप्तापन्ने इति–प्राप्त और आपन्न सुबन्तो का द्वितीयान्त समर्थ के साथ समास होता है।

इस सूत्र से समास विधान होने पर प्राप्त और आपन्न शब्दों का पूर्व निपात होता है। पक्ष में 'द्वितीया श्रिताऽतीत–सूत्र से समास होने पर द्वितीयान्त का पूर्व निपात होने से जीविकापन्न' ये शब्द बनते हैं।

प्राप्त–जीविकाः (प्राप्तो जीविकाम् जिसे जीविका मिल गई हो)–यहां प्रकृत सूत्र से समास हुआ। विग्रह में नियत–विभक्तिक होने से जीविका शब्द की 'एकविभक्ति चाऽपूर्व–निपाते' से उपसर्जन संज्ञा हुई और गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' से उसे ह्रस्व अन्तादेश होने पर पूर्व सूत्र से पर पद जीविकाके समान समस्त पद से स्त्रीलिङ्ग प्राप्त था। वार्तिक से उसका निषेध हुआ। तब विशेष्य के अनुसार लिङ्ग हुआ। **आपन्न–जीविकाः** (आपन्ना जीविकाम्, जीविका को प्राप्त)–इसकी सिद्धि 'प्राप्तजीविकः' के समान होती है। **अलंकुमारिः** (अलं कुमार्यै, कुमारी के योग्य)–यहां पर पद 'कुमारी' स्त्रीलिङ्ग है। पूर्वसूत्र के द्वारा उसी का लिङ्ग समस्त पद से प्राप्त था, प्रकृत वार्तिक से निषेध होने के कारण विशेष्य के अनुसार लिङ्ग हुआ।

अत एवेति–अलं–पूर्वक समास से परशब्द के लिङ्ग का निषेध करना ही सिद्ध करता है कि 'अलं' का समास होता है। अतः इसी प्रमाण से 'अलं कुमारि' से समास हुआ।

निष्कौशाम्बिः–यहां प्रादिसमास[32] हुआ है। यहां भी पर पद स्त्रीलिङ्ग है, उसी का लिङ्ग समस्त पद से सूत्र के द्वारा प्राप्त था, वार्तिक से निषेध होने पर विशेष्य के अनुसार लिङ्ग हुआ।

अर्धर्चाः पुंसि च 2.4.31

अर्धर्चाऽऽदयः शब्दाः पुंसि क्लीबेव स्युः। अर्धर्चः, अर्धर्चम्एव ध्वज––तीर्थ–शरीर–मण्डप–यूप–देहाऽङ्कुश–पात्र–सूत्रादयः। सामान्य नपुंसकम्–मुद् पचति, प्रातः कमनीयम्

व्याख्याः अर्धर्चा इति–'अर्धर्च' आदि शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में हो। इस सूत्र में स्थित 'अर्धर्चा' पर बहुवचान्त है। यदि 'अर्धर्च' इस एक ही शब्द को यहां ग्रहण किया जाए तो बहुवचन करना व्यर्थ हो जाए इसलिए यहां अर्धर्चादि गण लिया गया है।

अर्धर्चः, अर्धर्चम् (अर्धम्, ऋचः, ऋचा का आधा)–यहां 'अर्ध नपुंसकम्' से समास होने पर 'ऋक्–पूरप (ब)

---

[32]. 'गतेः समासो येन' इस प्रकार बहुव्राहि करने से 'कु–गति–प्रादयः' यही सूत्र लिया जाता है। अन्यत्र फल न होने से प्रादि समास ही लिया जाता है। वार्तिक में गति ग्रहण से प्रादि–समास ही लिया जाता है क्योंकि मुख्य गति समास में लिङ्ग की चर्चा असंभव है।

धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय होकर 'अधर्च' यह अकारान्त शब्द बनता है। पर यह ऋच् यहां स्त्रीलिङ्ग् है समस्त पद का लिङ्ग उसी के समान पूर्व सूत्र से प्राप्त है। प्रकृत सूत्र से इसे पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग बना दिया। लिङ्ग का प्रकरण यहां इसलिये दिया गया है कि अनेक शब्दों का समास होता है वे भिन्न–भिन्न लिङ्गवाले भी होते हैं, उनमें विचार उपस्थित होता है कि किसके अनुसार समस्त पद का लिङ्ग दिया जाए। इसकी व्यवस्था प्रकृत समासान्तर्गत लिङ्ग प्रकरण से की गई है। अर्धचादिगण की समास के प्रसङ्ग से चर्चा की गई हे, क्योंकि उक्त गण में कुछ शब्द समस्त हैं। जो शब्द इस गण में असमस्त आ गये हैं, उनके भी लिङ्ग का निर्णय इस सूत्र के द्वारा किया गया है कि वे उभयलिङ्ग हैं।

तत्पुरुष समाप्त

4.3.4 बहुव्रीहिः

शेषो बहुव्रीहिः 2.2.23

अधिकारोऽयं प्राग् द्वन्द्वात्।

व्याख्याः शेष–शेष समास को बहुव्रीहि कहते हैं।

जिसको न कहा गया हो उसे शेष कहते हैं। 'द्वितीया श्रिता–' इत्यादि शास्त्र के द्वारा जिस विभक्ति का विशेष रूप से समास नहीं कहा गया, यह शेष हुआ। अतः प्रथमान्त का समास बहुव्रीहि होता है। **अधिकार इति**–यहा अधिकार सूत्र है, इसका अधिकार 'चाऽर्थे द्वन्द्वः– इस सूत्र से पूर्व तक है, द्वन्द्व से पूर्व जो समास होते हैं, उनकी बहुव्रीहि संज्ञा होती है।

अनेकम् अन्य–पदार्थे 2.2.24

अनेकं प्रथमान्तम अन्यस्य पदस्याऽर्थे वर्तमानं वा समस्यते, स बहुव्रीहिः

व्याख्याः अनेकमिति–अन्य पद के अर्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्तों का समास होता है विकल्प से और वह बहुव्रीहि कहा जाता है। इससे यह मालूम होता है कि बहुव्रीहि समास के लिए सभी पद प्रथमान्त अर्थात् समानाधिकरण होने चाहिए। 'अन्य पद के अर्थ में वर्तमान कहने से प्रथमा विभक्ति के अर्थ में यह समास नहीं होता, क्योंकि प्रथमा विभक्ति तो समास के अन्दर है, वह अन्य नहीं।

बहुव्रीहि समास करने वाले केवल पांच ही सूत्र हैं। जिनमें यह सूत्र पहला है और सामान्य भी। इसके आगे के चारों सूत्र विशेष हैं। 'लघु कौमुदी' में यही एक सूत्र बहुव्रीहि समास करने वाला दिया गया है, शेष चारों सूत्र यहां नहीं दिये गये।इस एक सूत्र को छोड़कर बहुव्रीहि समास के प्रकरण में दिये गये अन्य सब सूत्र समास विधायक नहीं।

सप्तमी–विशेषणे बहुव्रीहौ 2.2.35

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरण–पदो बहुव्रीहिः।

व्याख्याः सप्तमीति–सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि में पहले प्रयोग हो।

जब यहां समस्यमान पद सभी प्रथमान्त होते है, समासशास्त्र प्रकृत सूत्र में प्रथमान्त 'अनेकम्' है, सभी को उसी का बोध होता है, समासशास्त्र में प्रकृत सूत्र व्यवस्था करता है कि विशेषण को पहले रखना चाहिये। **अत एवेति**–सप्तम्यन्त का पूर्व प्रयोग करने से ही सिद्ध होता है कि व्यधिकरण पदों का अर्थात् भिन्नविभक्तिक पदों का भी बहुव्रीहि होता है। तात्पर्य यह है कि जब प्रथमान्तों का ही बहुव्रीहि होता है तब

सप्तम्यन्त की तो उसमें संभावना ही नहीं, फिर प्रकृत सूत्र में सप्तम्यन्त के पूर्व प्रयोग का विधान व्यर्थ होकर इस बात का प्रमाण होता है कि व्यधिकरण पदों का भी बहुव्रीहि होता है। जैसे– **कण्ठेकालः**–कण्ठेकालः यस्य–जिसके गले में काला निशान है अथवा मृत्युकारक हालाहल विष है, **पद्मनाभः**–पद्मं नाभौ यस्य–कमल जिसकी नाभि में है अर्थात् भगवान् विष्णु, **शरजन्मा**–शरेभ्यो जन्म यस्य, सरकण्डों से जन्म है जिसका अर्थात् शिव जी का ज्येष्ठ पुत्र कार्तिकेय, ऊर्ण–**नाभः**–ऊर्णा नाभौ यस्य, ऊन जिसकी नाभि में हो अर्थात् मकड़ी। इनमें एक पद प्रथमान्त है दूसरे अन्यविभक्त्यन्त। अतः ये सब व्यधिकरण पद बहुव्रीहि समास के उदाहरण हैं।

हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्। 6.3.9

हलन्ताद् अदन्तात् सप्तम्या अलुक्। कण्ठे–कालः। प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढ–रथोऽनड्वान्। अपहृत–पशु रुद्रः। उद्धृतौदना स्थाली। पीताऽम्बरो हरिः। वीरपुरुषको ग्रामः। (वा) प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपद–लोपः। प्रपतितपर्णः–प्र–पर्णः। (वा) नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो, वा चोत्तरपद–लोपः। अविद्यमानपुत्रः अ–पुत्रः।

व्याख्याः हलदन्तादिति–हलन्त और अदन्त शब्द से पर सप्तमी विभक्ति का अलुक् हो संज्ञा में।

कण्ठे–कालः (नीलकण्ठ पक्षी या शिव)–यहां 'कण्ठे कालो यस्य' इस लौकिक और 'कण्ठ ङि काल सु' इस अलौकिक विग्रह में 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' में 'सप्तमी' के ग्रहण रूप प्रमाण से व्याधिकरण पदों का भी बहुव्रीहि समास हुआ और और इसी सूत्र के द्वारा सप्तम्यन्त का पूर्व प्रयोग हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् के लोप की प्राप्ति हुई। प्रकतृ सूत्र ने अदन्त से पर सप्तमी का अलुक् किया। तब उत्तरपद के आगे सु का लोप होने पर 'कण्ठेकाल; यह अकारान्त प्रातिपादिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ। **हलन्त का उदाहरण–सरसिजम्** (कमल) यह है। यहां 'सप्तम्यां जनेर्डः' से ड प्रत्यय हुआ और उपपद समास होने पर हलन्त सरस् शब्द से पर सप्तमी का अलुक् हुआ।

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रथमान्तों का बहुव्रीहि समास होता है और अन्य पद के अर्थ में होता है अर्थात् प्रथम–विभक्ति के अर्थ को छोड़कर शेष विभक्तियों के अर्थ में यह समास होता है। जिसके अर्थ में यह होता है उसे लौकिक विग्रह में 'यत्' शब्द के द्वारा कहा जाता है, जिस विभक्ति के हिअर्थ में होता है, 'यत्' शब्द के साथ वही विभक्ति दी हुई प्रतीत होती है। अब क्रमशः उदाहरण दिये जाते हैं।

द्वितीयार्थ –प्राप्तोदको ग्रामः (प्राप्तम् उदकं यम्, जल ने जिसे प्राप्त कर लिया हो अर्थात् जहां जल पहुंच गया हो)–यहां द्वितीया विभक्ति के अर्थ में प्राप्त और उदक इन प्रथमान्तों का 'अनेकम् अन्यपदार्थे' से समास हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् का लोप होकर अकारान्त शब्द बना, प्रथमा के एकवचन में रूप बना। बहुव्रीहि समास से सिद्ध शब्द प्रायः विशेषण होते हैं और अतएव उनके लिङ्ग वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं।

तृतीयार्थ में–ऊढ–रथोऽनड्वान् (ऊढो रथो येन, जिसने रथ न चलाया हो)–यहां तृतीया विभक्ति के अर्थ में ऊढ और रथ इन प्रथमान्तों का समास हुआ।

चतुर्थ्यर्थ में–उपहृत–पशू रुद्रः–उपहृत पशुर्यस्मै, जिसको पशु उपहार दिया गया हो। **पंचम्यर्थ में–उदधृतौदना स्थाली**–उद्धृत ओदनो यस्याः, जिस बर्तन से भात निकाल लिया गया है। **षष्ठी के अर्थ में–पीताऽम्बरः हरिः**–पीतानि अम्बराणि यस्य, जिसके पीले कपड़े हों–भगवान् विष्ण। सप्तमी के अर्थ में–**वीर पुरूषको ग्रामः**–वीराः पुरूषा यस्मिन्, जिसमें वीर पुरूष हों। यहां समास और सामान्य समास कार्य होने पर 'शेषाद् विभाषा' सूत्र से 'कप्' प्रत्यय समासान्त होकर रूप सिद्ध होता है।

(वा) **प्रादिभ्य इति**–प्र आदि से पर धातुज पद का अर्थात् जो धातु से बना हुआ शब्द है, तदन्त का, अन्यपद के साथ समास होता है और उसके उत्तरपद का लोप भी होता है विकल्प से। **प्र–पर्णः** (प्रपतितानि पर्णानि **यस्मात्**, जिसे पत्ते गिर चुके हों) यहां प्र से पर धातु से सिद्ध पतित शब्द है, तदन्त प्रपतित शब्द का अन्य पद 'पर्ण' के साथ समास और प्रपतित के उत्तरपद 'पतित' का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **नञ इति**–नञ् से पर विद्यमानता अर्थ के वाचक जो पद हों, तदन्त का अन्य पद के साथ समास और उत्तर–पद का अर्थात् विद्यमानतार्थक पद का लोप होता है।

अ–पुत्रः (अविद्यमानः पुत्रो यस्य, जिसका पुत्र न हो)–यहां नञ् से पर विद्यमान अर्थ का वाचक विद्यमान शब्द है। तदन्त अविद्यमान पद का पुत्र इस अन्य पद के साथ समास और उत्तरपद विद्यमान का लोप होकर रूप सिद्ध होता है।

स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्काद्–अनूङ् समानाऽधिकरणे स्त्रियाम् अ–पूरणी–प्रियादिषु 6.3.34

उक्तपुंस्काद् अनूङ् ऊङोऽभावोऽस्या इति बहुव्रीहिः, निपातनात् पंचम्या अलुक्, षष्ठयाश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात् पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात्, समानाधिकरणे स्त्री लिङ्ग उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। ह्रस्वः। चित्र–गुः। रूपवद्–भार्यः। अनूङ् किम्–वामोरू–भार्यः।

व्याख्याः स्त्रिया इति–प्रवृत्तिनिमित्त समान होते हुए भी उक्तपुंस्क शब्द उससे पर ऊङ् प्रत्यय जहां न हो, एसे स्त्रीवाचक शब्द का पुंवाचक के समान रूप हो, समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद परे रहते, पूरणी संख्या और प्रिया आदि शब्द परे रहते न हो। सूत्रस्थित 'भाषितपुंस्कात्' का अर्थ पहले 'उक्तपुंस्कात्' का फिर वृत्ति में 'तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कम्' यह कहकर स्पष्ट किया गया है। भाषितपुंस्क का लक्षण अजन्त नपुंसकलिङ्ग में 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य सूत्र की टीका में स्पष्ट किया जा चुका है।

'भाषितपुंस्कादनूङ' यह सूत्र स्थित समस्त एकपद है, इसमें पूर्वपद 'भाषितपुंस्क' है और उत्तरपद 'अनूङ्'। पूर्वपद की पंचमी विभक्ति का निपातन से लोप नहीं हुआ। 'अनूङ्' इस उत्तरपद में वहुव्रीहि समास है, ऊङोऽभावो यस्मिन्, ऊङ् का अभाव हो जिसमें। 'भाषितपुंस्काद्नूङ्' यह समस्त पद षष्ठ्यन्त है, षष्ठी का निपातन से लोप हुआ है, यह 'स्त्रियाः' का विशेषण है। 'भाषितपुंस्क और ऊङ् रहित जो स्त्रीवाचक पद' यह अर्थ इस प्रकार निकलता है। पूरणी संख्या तद्धित में आती है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय आदि क्रमवाचक विशेषण पूरणी सख्या कहे जाते हैं।**चित्रा–गुः** (चित्रा गावो यस्य चित्रा–रङग् बिरङगी गाये जिसकी हों)–यहां चित्रा और गौः इन प्रथमान्तों का षष्ठी विभक्ति के अर्थ में 'अनकेम् अन्य–पदार्थे से समास हुआ। प्रातिपदिक सज्ञां हाने पर सुप् का लोप हुआ। तब प्रकृत सूत्र से स्त्रीवाचक चित्रा पद से पुंवद्भाव हाने के कारण स्त्रीवाचक टाप् (आ) प्रत्यय हटकर 'चित्रा' शब्द बना, क्योंकि यह भाषितपुस्कं है ऊङ् इसमें नहीं, समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग् उत्तरपद 'गा' परे है और उत्तरपद न पूरणी सख्या है तथा न प्रिया आदि। तब उत्तरपद 'गो को 'गो–स्त्रियोरुपसजर्नस्य' से ह्रस्व उकार हुआ, 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते से विग्रह में नियतविभक्तिक हाने के कारण 'गा' शब्द उपसजर्न है । इस प्रकार 'चित्रगु यह उकारान्त शब्द बना।

रूपवद्भार्यः (रूपवती भार्या यस्य, जिसकी पत्नी सुन्दर हो)–यहां रूपवती और भार्या इन प्रथमान्तों का समास हुआ। पूर्वपद 'रूपवती' स्त्रीवाचक है, उक्त पुंस्क ऊङ्–रहित है, उत्तरपद 'भार्या' समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग है, इसलिये प्रकृत सूत्र से पुंवद्भाव होकर 'रूपवती' का स्त्री–प्रत्यय ङीप् (ई) हट जाता है। तब विग्रह में नियतविभक्तिक होने से उपसर्जनसंज्ञक 'भार्या' पद का 'गो–स्त्रियोरूपसर्जनस्य' से ह्रस्व होकर

रूप सिद्ध हुआ। **अनूङ् इति**–सूत्र में 'अनूङ् अर्थात् ऊङ् न होना चाहिये, ऐसा क्यों कहा इसलिए कि–**वामोरू–भार्याः** में वामोरू के ऊकार को ह्रस्व न हो। 'वामोरूःभार्या यस्य, सुन्दर रूपवाली जिसकी भार्या हो, जहां वामोरू में 'संहित–शफ लक्षण–वामादेश्च' से ऊङ् प्रत्यय हुआ।

अप् पूरणी–प्रमाण्योः 5.4.116

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्म्, तदन्तात् प्रमाण्यन्ताश्च बहुव्रीहेः अप् स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम् ताःकल्याणी–पंचमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्री प्रमाणः। अप्रियादिषु किम्–कल्याणी–प्रियः, इत्यादि।

व्याख्याः अप् इति–पूरणार्थ–प्रत्यान्त जो स्त्रीलिङ्ग शब्द, तदन्त और प्रमाणी शब्दान्त बहुव्रीहि मे अप् प्रत्यय समासान्त हो।

कल्याणी–पंचमा रात्रयः (कल्याणी पंचमी यासां रात्रीणाम् जिन रात्रियों में पांचवीं कल्याणमय हो)–यहां उत्तरपद 'पंचमी' पूरणार्थ–प्रत्ययान्त, और 'पुवंद–भाव' विधायक पूर्वसूत्र में 'अ–पूरणी–प्रियादिषु' इस पद से पूरण संख्या परे रहते पुंवद्–भाव के निषेध करने से पुंवद्भाव नहीं हुआ। तब प्रकृत सूत्र से अप् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' से ईकार का लोप होकर 'कल्याणीपचंम' यह अकारान्त प्रातिपदिक बना। पुनः स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् (आ) प्रत्यय होकर अकारान्त शब्द बनकर प्रथमा के बहुवचन में रूप सिद्ध हुआ।

स्त्री–प्रमाणः (स्त्री प्रमाणी यस्य, जिसे प्रमाण हो, स्त्री की बात को माननेवाला)–यहां भी पूर्ववत् प्रमाणी–शब्दान्त बहुव्रीहि होने से प्रकृत सूत्र से समासान्त अप् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' से ईकार को लोप होकर अकारान्तशब्द बन जाने से प्र. विभक्ति एकवचन में उक्त रूप बना।

अप्रियादिष्विति–पूर्व सूत्र में प्रिया आदि परे रहते पुंवद्भाव नहीं होता ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि–**कल्याणी–प्रियः** यहां पुंवद्भाव न हो। यहां 'कल्याणी प्रिया यस्य–कल्याणी है प्यारी जिसकी' इस विग्रह में बहुव्रीहि हुआ है। पूर्वपद 'कल्याणी' स्त्रीलिङ्ग है उक्तपुंस्क है, ऊङ् भी इसमें नहीं, उत्तरपद समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग है, पर वह 'प्रिया' आदियों में से है, इसलिये पवुदंभाव नही हुआ। 'कल्याणी' ऐसे ही रहा। उत्तरपद को 'गा–ेस्त्रियारूेपसजर्नस्य' से ह्रस्व हुआ।

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गत् षच् 5.4.113

स्वाङ्गवाचि–सक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात्। दीर्घसक्थिः। जलजाऽक्षी। स्वाङ्गात्। किम्–दीर्घ–सक्थि–शकटम्, स्थूलाऽक्षा–वेणु–यष्टिः 'अक्ष्णोऽदर्शनाद्' इति वक्ष्यमाणोऽच्।

व्याख्याः बहुव्रीहिविति–स्वाङ्गवाची सक्थि और अक्षि शब्द जिसके अन्त में हों, ऐसे बहुव्रीहि से षच् प्रत्यय समासान्त हो। षच् के षकार और चकार इत्संज्ञक है, केवल अकार बचता है। पित् होने का फल तदन्त शब्द से स्त्रीत्व–विवक्षा मे 'षिद्–गौरादिभ्यश्च' इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होना है।

दीर्घ–सक्थः (दीर्घे सक्थिनी यस्य–जिसके ऊरु बड़े हों)–यहां दीर्घ और स्वाङ्गवाची सक्थि–इन प्रथमान्तों का 'अनेकम् अन्य–पदार्थे' इस सूत्र से बहुव्रीहि समास होने पर प्रकृत सूत्र से समासान्त षच् प्रत्यय हुआ। 'यस्येति च' से इकार का लोप होने पर अकारान्त शब्द बना। यहां सक्थि स्वाङ्गवाची है, तदन्त बहुव्रीहि होने से प्रकतृ सूत्र की प्रवृत्ति हुई।

जलजाऽक्षी (जले इव अक्षिणी यस्या, जिसकी आंखें कमल के समान हों)–यहां जलज और स्वाङ्ग–वाचक

अक्षि शब्द का बहुव्रीहि समास होने पर प्रकृत सूत्र से षच् प्रत्यय हुआ। इकार का लोप होने पर 'जलजाक्ष' से षित् होने के कारण ङीष् प्रत्यय होकर रूप बना।

'स्वाङ्ग; की परिभाषा 'स्वाङ्गात् चोपसर्जनाद् अ–संयोगोपधात्' इस सूत्र की टीका में मिलेगी। तदनुसार प्राणी में स्थित अंग को स्वाङ्ग कहते हैं, मूर्ति में प्राण नहीं होता, उसके अङ्गों को स्वांग नहीं कहा जाता।

स्वाङ्गात् किमिति–'सक्थि अक्षि शब्द स्वाङ्गवाची होने चाहिये' ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि दीर्घ–**सक्थि शकटम्, स्थूलाऽक्षा वेणु–यष्टिः**–इनमें षच् प्रत्यय न हो। 'दीर्घे सक्थिनी यस्य', 'स्थूले अक्षिणी यस्याः' इन विग्रहों में बहुव्रीहि समास हुआ है। 'दीर्घ–सक्थिनी यस्याः' इन विग्रहों में बहुव्रीहि समास हुआ है। 'दीर्घ–सक्थि शकटम्' मे शकट प्राणी नहीं है, इसलिये उसके सक्ति की स्वाङ्ग संज्ञा नहीं होती, अतः प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई।

'स्थूलाऽक्षा वेणुयष्टिः–बड़ों आंखों वाली बांस की लाठी' यहां वेणुयष्टि प्राणी नहीं है, उसके अक्षि की स्वांग संज्ञा नहीं होती। अतएव प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। तब भी आगे आने वाले 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' से ईकार का लोप होने पर 'स्थूलाक्ष' यह अकारान्त शब्द बना। तब स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'अजाताद्यतष्टाप्' से टाप् (आ) प्रत्यय होकर आकारान्त 'स्थूलाक्षा, शब्द बना। अच् और षच् का अन्तर यह है कि षच् होने पर षित् होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय होता है और अच् होने पर ङीष् न होकर टाप् होता है।

द्वि–त्रिभ्यां ष मूर्ध्नः 5.4.115

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद् बहुव्रीहौ। द्वि–मूर्धः।

व्याख्याः द्वि–त्रिभ्यामिति–द्वि और त्रि शब्द से पर मूर्धन् शब्द को समासान्त ष प्रत्यय हो बहुव्रीहि में।

ष प्रत्यय का षकार इत्संज्ञक है, षच् और ष का अन्तर स्वर में पड़ता है। चित् होने से षच् प्रत्ययान्त 'चित्' से अन्तोदात्त होता है और ष प्रत्ययान्त 'आद्युदात्तश्च' से आद्युदात्त।

द्विमूर्धः (द्वौ मूर्धानौ यस्य, जिसके दो सिर हों)–द्वि और मूर्धन् इन प्रथमान्तों का षष्ठीविभक्ति के अर्थ में बहुव्रीहि समास होने पर प्रकृत सूत्र से समासान्त ष प्रत्यय हुआ। तब 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप होने पर आकारान्त'द्वि–मूर्ध' शब्द बना और तब प्रथमा के एक वचन में रूप सिद्ध हुआ।

त्रि–मूर्धः (त्रयो मूर्धानो यस्य, जिसके तीन सिर हों)–इसकी सिद्धि 'द्वि–मूर्धः' के समान होती है।

अन्तर्–बहिर्भ्यां च लोम्नः 5.4.117

आभ्यां लोम्नोऽप् स्याद् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः।

व्याख्याः अन्तरिति–अन्तर् और बहिस् शब्दों वे पर लोमन् शब्द को अप् समासान्त प्रत्यय हो बहुव्रीहि में।

अन्तर्लोमः–(अन्तर् लोमिनि यस्य, जिसके लोम भीतर हो)–यहां अन्तर् और लोमन् का बहुव्रीहि समास होने पर प्रकृत सूत्र से समासान्त अप् प्रत्यय हुआ। तब 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप होकर अकारान्त शब्द बना और प्रथमा के एक वचन में रूप सिद्ध हुआ।

बहिर्लोमः (बहिर्लोमानि यस्य, जिसके लोम बाहर हों)–इसकी सिद्धि 'अन्तर्लोमः' के समान होती है।

पादस्य लोपो–ऽहस्त्यादिभ्यः 5.4.138

हस्त्यादिवर्जिताद् उपमानात् परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद् बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य–व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्–हस्ति–पादः, कुसूल–पादः।

व्याख्याः पादस्येति–हस्ति आदि भिन्न उपमान से परे पाद शब्द का लोप समासान्त हो बहुव्रीहि समास में।

लोप यद्यपि अभावरूप है तथापि स्थानी के द्वारा यह समासान्त है। यदि इसे समासान्त न कहा जाय तो यह 'आदेः परस्य' से आदि को होने लगेगा और 'शेषाद् विभाषा' से होनेवाला समासान्त कप् हो। यह समासान्त कप् तब होता है जब कोई समासान्त प्रत्यय न हुआ हो। लोप को समासान्त मानने से उसके होने पर फिर कप् नहीं होता।

'अलोन्त्य' परिभाषा से लोप अत्त्य अकार को होगा।

व्याघ्र–पात् (व्याघ्रपादौ इव पादौ यस्य, बाघ के पैर के समान जिसके पैर हों)–यहां समास होने पर प्रकृत सूत्र से अन्त्य अकार का लोप समासान्त होने पर दकारान्त शब्द बना।

अ–हस्त्यादिभ्य इति–'हस्ती आदि से भिन्न उपमान से पर' ऐसा क्यों कहा?

इसलिये कि **हस्ति–पादः** (हस्तिन पादौ इव पादौ यस्य, हाथी के पैर के समान जिसके पैर हों) और **कुसूलः–पादः** (कुसूलस्य पादौ इव पादौ यस्य कुसूल के पैर के समान जिसके पैर न हों) इनमें लोप न हो।

संख्या–सु–पूर्वस्य 5.4.140

पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्वि–पात्। सु–पात्।

व्याख्याः संख्येति–संख्या और सु जिसके पूर्व में हो, ऐसे पाद शब्द का लोप समासान्त हो बहुव्रीहि में

द्वि–पाद् (द्वौ पादौ यस्य, दो पैर वाला, मनुष्य आदि)–यहां प्रथमान्त द्वि और पाद शब्दों का षष्ठीविभक्ति के अर्थ में बहुव्रीहि समास हुआ। तब संख्या पूर्व में होने से पाद शब्द के अन्त्य का प्रकृत सूत्र से समासान्त लोप होकर हलन्त रूप सिद्ध हुआ।

सु–पात् (शोभनौ पादौ यस्य, अच्छे पैर वाला)–यहां पाद शब्द के पूर्व सु शब्द है, इसलिये प्रकृत सूत्र से समासान्त लोप हुआ।

उद्विभ्यां काकुदस्य 5.4.148

लोपः स्यात्। उत्–काकुत् वि–काकुत्।

व्याख्याः उद्–विभ्यामिति–उद् और वि से पर 'काकुद'–शब्द का समासान्त लोप हो बहुव्रीहि समास में **उत्–काकुत्** (उन्नतं काकुदं यस्य, जिसका तालु ऊपर से उठा हो)–यहां उद् और काकुद का बहुव्रीहि समास होने पर प्रकतृ सूत्र से समासान्त लोप होकर शब्द बना।

वि–काकुत् (विगतं काकुदं यस्य, जिसका तालु विकृत हुआ हो)–इसकी सिद्धि भी पूर्ववत् होती है।

पूर्णाद् विभाषा 5.4.149

पूण–काकुत्, पूर्ण–काकुदः।

व्याख्याः पूर्णादिति–पूर्ण शब्द से पर काकुद का समासान्त लोप विकल्प से हो बहुव्रीहि में।

पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदम् (पूर्ण काकुदं यस्य, पूर्ण तालु जिसका हो)–यहां पूर्ण और काकुद का बहुव्रीहि

समास होने पर प्रकतृ सूत्र से समासान्त लोप हुआ। लोप–पक्ष में शब्द हलन्त बना और अभावपक्ष में अकारान्त।

सुहृद्–दर्हृदौ मित्राााऽमित्रायोः 5.4.150

सु–दुर्भ्यां हृदयस्य 'हृद्'–भावो निपात्यते। सुर्हृद्–अमित्राः।

व्याख्याः सुहृदिति–सु और दुर् से पर हृदय शब्द को निपातन से हृद् हो क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थ में बहुव्रीहि समास में **सु–हृद** (शोभनं हृदयं यस्य, मित्र)–सु और हृदय का बहुव्रीहि समास होने पर प्रकृत सूत्र से हृदय शब्द को हृद् आदेश निपातन से होने पर रूप सिद्ध हुआ।

उरः प्रभृतिभ्यःकप ् 5.4.151

व्याख्याः उर इति–उरस् प्रभृतियों से समासान्त कप् प्रत्यय हो बहुव्रीहि में। कप् का पकार इत्संज्ञक है, क शेष रहता है।

कस्कादिषु च 8.3.48

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य विसर्गस्य षः, अन्यस्य तु सः। इति सः व्यूढोरस्कः। प्रिय–सर्पिष्क5।

व्याख्याः कस्कादिष्विति–'कस्क' आदि गण में पढ़े हुए शब्दों में इण् से उत्तर विसर्ग को पकार हो, अन्य विसर्ग को अर्थात् जो इर्ण से परे न हो, को सकार हो।

व्यूढोरस्कः (व्यूढम् उरो यस्य, विशाल वक्षःस्थल वाला)–यहां व्यूढ ओर उरस्–इन प्रथमान्तों का षष्ठी के अर्थ में बहुव्रीहि समास हाने पर पूर्व सूत्र से कप् समासान्त प्रत्यय हुआ। सकार को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होने पर प्रकृत सूत्र के द्वारा इस से पर विसर्ग से भिन्न होने के कारण उनके स्थान में सकार होकर तब रूप सिद्ध हुआ।

प्रिय–सर्पिष्कः (प्रियं सर्पिः यस्य, घी जिसके प्रिय हो)–यहां प्रिय और सर्पिस् का समास होने पर पूर्व सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ। तब सकार को विसर्ग होने पर इण् इकार से पर होने के कारण विसर्गों के स्थान में प्रकृत सूत्र से मूर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

निष्ठा 2.2.36

निष्ठाऽन्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। युक्त–योगः।

व्याख्याः निष्ठेति–निष्ठान्त पद का बहुव्रीहि से पहले प्रयोग हो।

युक्त–योगः (युक्तो योगो येन यस्य वा, सिद्ध योगी)–यहां युक्त और योग का बहुव्रीहि समास होने पर प्रकृत सूत्र से निष्ठान्त युक्त शब्द का पूर्व प्रयोग हुआ।

शेषाद् विभाषा 5.4.154

अनुक्त–समासान्ऽताद् बहुव्रीहेः कप् वा। म्हा–यशस्कः, महा–यशाः।

व्याख्याः शेषादिति–शेष, जिसे समासान्त नहीं कहा गया, ऐसे बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय विकल्प से हो।

शेष का अर्थ यहां है, जिससे किसी समासान्त प्रत्यय का विधान नहीं किया गया। शेष से इसका विधान होने से इसे शैषिक कप् कहते हैं।

महा–यशस्कः, महा–यशाः (महद् यशो यस्य, बड़ा यशस्वी)–यहां महत् और यशस् इन प्रथमान्तों का षष्ठी

के अर्थ में बहुव्रीहि समास होने पर प्रकृत सूत्र से कप् प्रत्यय विकल्प से हुआ, क्योंकि यह शेष है, इससे किसी अन्य समासान्त प्रत्यय का विधान नहीं किया गया। 'आत् (न्) महत् समानाधिकरण–जातीययोः' इससे महत् शब्द को आकार अन्तादेश होकर 'कप्' पक्ष में पहला और कप् के अभापक्ष में दूसरा रूप सिद्ध हुआ।

बहुव्रीहिसमाप्त

4.3.5 द्वन्द्व

चाऽर्थे द्वन्द्वः 2.2.29

अनेकं सुबन्तं चाऽर्थे वर्तमानं व समस्यते; स द्वन्द्वः। समुच्चयाऽन्वाचयेतरेतरयोग–समाहाराश्चाऽर्थाः। तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्पर–निरपेक्षस्याऽनेकस्यैकस्मिन् अन्वयः समुच्चयः। भिक्षाम् अट गां चानय इति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनाऽन्वयः–अन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। 'धव–खदिरौ छिन्धि' इति मिलितानाम् अन्वयः–इतरेतरयोगः। संज्ञा–परिभाषम् (इति) समूहः–समाहारः।

व्याख्याः चार्थे इति–'च' के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का समास होता है और उसकी द्वन्द्व संज्ञा होती है। **समुच्चयेति–समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर–योग और समाहार**–ये चार 'च' निपात के अर्थ हैं। इनके क्रमशः सोदाहरण लक्षण दिये जाते हैं।

1- समुच्चय–परस्पर–निरपेक्ष अनेक पदार्थों के एक पदार्थ में अन्वय को समुच्चय कहते हैं। जैसे–**ईश्वरं गुरुं च भजस्व**–ईश्वर और गुरु की सेवा करो–'इस वाक्य में ईश्वर और गुरु पदार्थ निरपेक्ष हैं, एक दूसरे की अपेक्षा नहीं करते, दोनों का स्वतन्त्र रूप से भजन क्रिया में अन्वय होता है। अतः यहां 'च' का अर्थ **समुच्चय** है।

2- **अन्वाचय**–जब समुच्चय में आने वाले जिनका समुच्चय हो रहा हो, पदार्थों में एक का आनुषङ्गिकतया–गौणरूप से–अन्वय हो, तब उसे अन्वाचय कहते हैं। जैसे–भिक्षाम् अट गां चानय–भिक्षा के लिये जाओ और गाय भी लाओ। यहां प्रधानकार्य भिक्षा मांगना है, भिक्षा के लिये घूमते यदि गाय मिल जाए तो उसे भी ले आना, इस प्रकार गाय लाना गौण कार्य है, आनुषङ्गिक है। उसके लिए विशेष यत्न की आवश्यकता नहीं, भिक्षार्थ घूमते यदि गाय दीख पड़े तो लाना–इस अभिप्रायः के कारण यहां भिक्षा के लिए जाना और गाया लाना, इन पदार्थों में गाय का लाना गौण होने से चकार का अर्थ **अन्वाचय** है।

अनयोरिति–समुच्चय और अन्वाचय–इन दो अर्थों में सामर्थ्य न होने के कारण समास नहीं होता। समुच्चय में दोनों पदार्थ निरपेक्ष रहते हैं और सामर्थ्य दोनों के सापेक्ष रहने पर होता है इसलिये इसमे सामर्थ्य नहीं। अन्वाचय में एक अर्थ गौण रहता है, दोनों समकक्ष नहीं रहते, इसलिये सामर्थ्य नहीं।

3- **इतरेतर–योगः**–जब पदार्थ मिलकर आगे अन्वित होते हैं तब उसे इतरेतर–योगः कहते हैं। जैसे–धवखदिरौ छिन्धि–धव और खदिर को काटो। यहाँ धव और खदिर पदार्थ मिलकर आगे छेदन क्रिया में अन्वित होते हैं, इसलिये यहाँ **इतरेतर योग** है। इतर का इतर से योग सम्बन्ध–यह इतरेतरयोग का शब्दार्थ है।

4- **समाहार**–समूह को समाहार कहते हैं। इसमें पदार्थों का अन्य पदार्थ के साथ पृथक्–पृथक् अन्वय नहीं होता जैसे इतरेतरयोग में, अपितु पदार्थों के समूह का अन्वय होता है। जैसे **संज्ञापरिभाषम्**–संज्ञा च परिभाषा च–संज्ञा और परिभाषा का समूह। चकार के इतरेतरयोग और समाहार–इन दो अर्थों में सामर्थ्य रहता है, अतः इनमें प्रकृत सूत्र से समास हो जाता है। इसलिये इनके उदाहरणों में, धव–खदिरौ, संज्ञा–परिभाषम्–यहाँ समास हुआ है।

ये अर्थ समास के द्वारा प्रतीत होते हैं–इसलिये लौकिक विग्रह वाक्य में चकार का प्रयोग होने पर भी

समास नहीं होता। अलौकिक विग्रह में भी इसलिये चकार का प्रयोग नहीं किया जाता।

द्वन्द्व समास भी दो से अधिक पदों का होता है। इसमें सभी पदार्थ प्रायः प्रधान होते हैं। इसलिये किस पद को पहले रखा जाय यह प्रश्न हल नहीं होता, समास विधायक सूत्र में 'अनेकम्' इस प्रथमान्त पद के द्वारा सभी का बोध होता है, सभी की उपसर्जन संज्ञा होती है, उपसर्जन होने से सभी का पूर्व प्रयोग प्राप्त होता है। अतः इच्छानुसार किसी को भी पहले रखा जा सकता है। जहाँ इच्छानुसार कार्य नहीं हो सकता, वहाँ के लिये नियम बने हैं, वे आगे दिये जाते हैं।

राजदन्तादिषु परम् 2.2.31

एषु पूर्व–प्रयोगऽर्हं परं स्यात्। दन्तानां राजा–राजदन्तः।

व्याख्याः **ससुहृद्–दर्हृदौ** मित्राऽमित्रायोः 5.4.150 **सु–दुर्भ्यांहृदयस्य 'हृद्'–भावो निपात्यते। सु–र्हृद्–अमित्राः।**

व्याख्याः 'राज–दन्त' आदि शब्दों में जिस पद का पूर्व प्रयोग प्राप्त हुआ हो, उसे आगे रखा जाय।

राज–दन्तः (दन्तानां राजा, दातों का राजा)–यहाँ 'षष्ठी 2.2.8' इस सूत्र से समास हुआ। समासशास्त्र में स्थित प्रथमान्त 'षष्ठी' पद के द्वारा बोध्य होने से उपसर्जन की संज्ञा होने के कारण दन्त शब्द का पूर्व निपात अर्थात् पूर्व प्रयोग प्राप्त था। प्रकृत सूत्र से उसका प्रयोग आगे हुआ। इसी प्रकार राज–वैद्य आदि अनेक शब्द भी बनते हैं। इन समस्त पदों में 'राज' पद का प्रयोग पहले होने से 'राज्ञः दन्ताः' राज्ञः वैद्यः–राजा के दांत, राजा का वैद्य, इस रूप में भ्रम न करना चाहिए–क्योंकि 'राज' पद का पूर्व प्रयोग यहाँ प्रकतृ सूत्र के विशेष नियम से हुआ है।

राजदन्तादियों में द्वन्द्व के भी प्रयोग हैं, उन्हीं को दिखाने के लिए यहाँ यह सूत्र दिया गया है। **(वा) धर्मदिष्वनियमः। अर्थ–धर्मो, धर्मऽर्थो इत्यादि।**

व्याख्याः धर्मादिष्विति –धर्म, अर्थ आदि शब्दों में किसको पहले रखा जाय–इसका कोई नियम नहीं अर्थात् इच्छानुसार किसी को भी पहले रखा जा सकता है।

अर्थ–धर्मौ, धर्मार्थौ (अर्थश्च धर्मश्च–धर्म और अर्थ)–यहाँ 'चार्थे द्वन्द्वः' से चकार के अर्थ इतरेतरयोग में वर्तमान धर्म और अर्थ शब्दों का 'धर्म सु अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ, तब प्रातिपादिक संज्ञा होने पर सुप् दोनों सु का लोप हुआ। पूर्व प्रयोग का नियम न होने से भी कभी अर्थशब्द का और कभी धर्म शब्द का पहले प्रयोग हुआ। तब दो पदार्थ होने से द्विवचन में रूप सिद्ध हुए।

द्वन्द्वे घि 2.2.32

द्वन्द्वे घि–संज्ञं पूर्वं स्यात्। हरिश्च हरश्च–हरि–हरौ।

व्याख्याः द्वन्द्व में घिसंज्ञक पद का पहले प्रयोग हो। हरि–हरौ (हरिश्च हरश्च–विष्णु और शिव)–यहाँ घि–संज्ञक होने से हरि शब्द का प्रयोग पहले हुआ।

अजाद्यदन्तम् 2.2.33

इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईश–कृष्णौ।

व्याख्याः अजादि और अदन्त पद का द्वन्द्व में पहले प्रयोग हो। ईश–कृष्णौ (ईशश्च कृष्णश्च, शिव और कृष्ण)–यहाँ द्वन्द्व समास होने पर अजादि और अदन्त हाने के कारण ईश का पहले प्रयोग हुआ।

अल्पाऽच्–तरम् 2.2.34

शिव–केशवौ।

व्याख्याः जिस पद में अन्य पदों की अपेक्षा थोड़े अच् हों, द्वन्द्व में उसका पहले प्रयोग हो। शिव–केशवौ (शिवश्च–शिव और विष्णु)–यहाँ केशव पद में तीन अच् हैं और शिव में दो। 'केशव' पद की अपेक्षा थोड़े अच् हो, द्वन्द्व में उसका पहले प्रयोग हो।

पिता मात्रा1.2.70

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च–पितरौ, माता–पितरौ वा।

व्याख्याः माता के साथ कथन होने पर पिता पद विकल्प से शेष रहता है।

पितरौ (माता च पिता च, माता और पिता)–यहाँ माता के साथ पिता का कथन हुआ है, दोनों पदों का द्वन्द्व समास होने पर पितृ पद शेष रहा 'यः शिष्यते', स लुप्यमानाऽर्थोभिधायी भवति–जो शेष रहता है वह लोप होने वाले के अर्थ को भी कहता है–इस सिद्धान्त के अनुसार शेष रहा हुआ 'पितृ' शब्द मातृशब्द का भी अर्थ प्रकट करता है। इसीलिये दोनों का प्रतिपादक होने से द्विवचन हुआ।

माता–पितरौ–एक शेष के अभाव में 'पितृदशगुणा माता गौरवेणाऽतिरिच्यते–गौरव से माता पिता से दशगुना अधिक है' इत्यादि वचनों से अभ्यर्हितपूज्य होने के कारण (वा) 'अभ्यर्हितं च' वार्तिक मातृ शब्द का पूर्व निपात हुआ। तब 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' पूर्वपद मातृ के ऋकार को आनङ् होकर मातापितृ शब्द बना। दो का प्रतिपादक होने से इससे द्विवचन हुआ। इन समासों का–जिन में एक शेष रहता है–एक शेष रहता है।

द्वन्द्वश्च प्राणि–तूर्य–सेनाऽङ्गानाम् 2.4.2

एषां द्वन्द्व एक–वत्। पाणि–पादम्। मार्दङ्गिक–वैणविकम्। रथिकाऽश्वारोहम्।

व्याख्याः द्वन्द्वश्चेति–प्राणी, तूर्य (बाजे) और सेना इनके अङ्गों के वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचनान्त हो।

एकवचनान्त कहने का तात्पर्य है कि इनका समाहार अर्थों में ही द्वन्द्व समास होता है, इतरेतरयोग में नहीं। समाहारद्वन्द्व एकवचनान्त ही होता है, क्योंकि समाहार अर्थात् समूह एक ही होता है।

'स नपुंसकम्' सूत्र से समाहार–समास नपुंसक होता है। इसलिये ये सभी समस्त पद नपुंसकलिंग है। प्राणी के अङ्ग हस्त पाद आदि, तूर्य के अंग मृदङ्ग आदि और सेना के अंग रथ घोड़े आदि हैं। आगे नीचे के उदाहरण क्रमशः दिये जा रहे हैं। पाणि–पादम् (पाणी च पादौ च, हाथ और पैर)–हाथ–पैर प्राणी के अंग हैं। इनके वाचक पाणि और पाद् का द्वन्द्व समास प्रकृत सूत्र से समाहार में ही हुआ, अतएव समस्तपर एकवचनान्त हुआ। मार्दङ्गिक–वैणविकम् (मार्दङ्गि[33]श्च वैणविक[34] श्च, मदृङ बजाने वाला और वंशी बजाने वाला)–यहाँ तूर्य के अंग मार्दङ्गि और वैणविक का प्रकतृ सूत्र से समाहार अर्थ में ही द्वन्द्व समास हुआ। अतः समस्त पद से एकवचन ही हुआ। रथिका–श्वारोहम् (रथिकाश्च अश्वारोहाश्च–रथिक और घुड़सवार)–यहाँ रथिक और अश्वारोह–इन सेना के अंगों का समाहार में ही द्वन्द्व समास हुआ। इसलिये समस्तपद से एकवचन ही हुआ।

द्वन्द्वात् चु–द–ष–हाऽन्तात् समाहारे 5.4.106

---

[33]ए *'मार्दगिका मौरजिकाः' इत्यमरः। मदृंग–वादनं शिल्पं येषां ते मार्द–गिकाः–मदृंग बजानेवाले।*

[34]ए *'वेणुध्माः स्युर्वैणविकाः' इत्यमरः। वेणुवादनं शिल्पं येषान्ते वैणविका'–वंशी बजानेवाले।*

चवर्गान्ताद् द–ष–हाऽन्ताच्च द्वन्द्वात् टच् स्यात् समाहारे। वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्। त्वक्–त्वचम्। शमी–दृषदम्। वाक्–त्विषम्। छत्रोपानहम्। समाहारे किम्–प्रावृट्–शरदौ। इति द्वन्द्वः।

व्याख्याः चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त द्वन्द्व से समासान्त टच् प्रत्यय हो समाहार अर्थ में।

वाक्त्वचम् (वाक् च त्वक् च, तयोः समाहारः–वाणी और त्वचा)–यहाँ वाच् और त्वच् पदों का समाहार अर्थों में द्वन्द्व समास हुआ। चवर्गान्त होने से यहाँ प्रकतृ सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होकर अकारान्त शब्द बना। पूर्वपद 'वाच्' के चकार को 'चोः कु–' से कवर्ग कहकर हुआ। समाहार होने से 'वाक्त्वच्' यह शब्द नपुंसकलिङ्ग और एकवचन में ही हुआ।

त्वक्स्रजम् (त्वक् च स्रक् च तयोः समाहारः–त्वचा और माला)–यहाँ त्वच् और स्रज् इन दो पदों का समाहार द्वन्द्व हुआ। पूर्वपद के चकार को कवर्ग ककार हुआ। चवर्ग जकार के अन्त में होने से 'त्वक्स्रज्' इस समाहार द्वन्द्व से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ।

शमी–दृषदम् (शमी च दृषद् च तयो समाहारः, शमी और षाषाण)–यहाँ समाहार अर्थ में शमी और दृषद्–इन पदों का द्वन्द्व समास होने के कारण समासान्त टच् प्रत्यय होकर अकारान्त 'शमी–दृषद' शब्द बना। समाहार में नपुंसकलिंग और एकवचन हुआ। वाक्–त्विषम् (वाक् च त्विट् च, तयोः समाहारः–वाणी और क्रान्ति)–यहाँ समाहार अर्थ में वाच् और त्विष्–इन शब्दों का द्वन्द्व समास हुआ। षकारान्त होने के कारण प्रकृत सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होकर अकारान्त 'वाक्–त्विष्' शब्द बना। समाहार होने के कारण नपुंसकलिंग और एकवचन हुआ।

छत्रोपानहम् (छत्रं च उपानत् च, छाता और जूता)–यहाँ हकारान्त समाहार द्वन्द्व हाने प्रकृत सूत्र से समासान्त टच् होने पर अकारान्त शब्द बना। नपुंसकलिंग एकवचन में रूप बना। समाहारे इति–'समाहार में' ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि प्रावृट्–शरदौ (प्रावृट् च शरत् च, वर्षा और शरद् ऋतु)–यहाँ समासान्त टच् न हो जाय। यहाँ समाहार में द्वन्द्व नहीं हुआ, अपितु इतरेतरयोग में हुआ। अत एव यह पद नपुंसकलिंग और एकवचन नहीं हुआ।

अथ समासान्ताः।

ऋक्–पूरप् (ब्) धूः–पथाऽम् आऽनक्षे 5.4.74

अ अनक्ष इति च्छेदः। ऋगाद्यन्तस्य 'अ' प्रत्ययोऽन्तावयवः अक्षे या धूः, तदन्तस्य तु न। अर्धर्चः। विष्णु–पुरम्। विमलापं सरः।

व्याख्याः ऋच्, पुर्, अप्, धुर्, और पथिन् ये शब्द जिस समास अन्त में हो, उस समास को समासान्त अ प्रत्यय हो परंतु अथ–रथ के चक्र का मध्यभाग–में धुर्–धुरा–तदन्त को न हो। अ अनक्षे इति–सूत्र में स्थित 'आनक्षे' इस पद में 'अ अनक्षे' ऐसा पदच्छेद है। 'अनक्षे' का निषेध केवल, 'धुर्' शब्द के लिये होता है, क्योंकि उसी में योग्यता है, औरों में नही। अब ऋगाद्यन्त के उदाहरण क्रमशः दिये जाते हैं। अर्धचः (अर्धम् ऋच्, ऋचा का आधा)–यहां 'अर्धे नपुंसकम् से समास हुआ है, ऋच–शब्दानत समास है, इसलिये प्रकतृ सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। 'अर्धर्चादयः पुंसि च' से यह शब्द पुंलिंग में भी प्रयुक्त हुआ है। इसकी सिद्धि पहले आ चुकी है। विष्णु–पुरम् (विष्णोः पूः, विष्णु की नगरी)–यहाँ षष्ठी–तत्पुरूष समास है। प्रकतृ सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय होने से शब्द अकारानत बना। नगर का वाचक होने से नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त हुआ। इसी प्रकार अन्य पुर् शब्दान्त नगर के वाचक शब्दों की भी सिद्धि होती है। जैसे–लव–पुरम्, लाभ–पूरम्, लक्ष्मण–पूरम्, योध–पूरम्, नाग–पुरम् इत्यादि। विमलाप सरः (विमला आपो यत्र जिस तालाब में निर्मल जल

हों)–यहाँ बहुव्रीहि समास हुआ है। तब प्रकृत सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय होकर अकारान्त शब्द बना। 'सरः' का विशेषण हाने से नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त हुआ। राज–धुरा (राज्ञो धूः, राज–भार)–यहाँ षष्ठीतत्पुरूष समास होने पर समासान्त अ प्रत्यय हुआ। स्त्रीत्वविवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् (आ) प्रत्यय होकर आकारान्त शब्द बना। 'धूः' कहते हैं रथ के अग्रभाग को। 'धूः स्त्री क्लीवे यान–मुखम्' इत्यमरः। अक्षे इति–अक्ष की धुरा के लिये निषेध करने से 'अक्ष–धूः' में समासान्त अ प्रत्यय नहीं हुआ। दृढ धूः (दृढा धूर्यस्य, दृढ धुरावाला अक्ष) यहाँ बहुव्रीहि समास हुआ। अक्ष की धुरा होने से यहाँ भी समासान्त अ प्रत्यय का प्रतिषेध हुआ। सखि–पथः (सख्युः, पन्थाः, मित्र का मार्ग)–यहाँ षष्ठी तत्पुरूषसमास होने पर पथिन्–शब्दान्त होने से समासान्त 'अ' प्रत्यय हुआ। 'भस्य टेलोर्पः से अन् टि का लोप होकर अकारान्त शब्द बनकर रूप सिद्ध हुआ।

रम्य–पथो देशः (रम्याः पन्थानो यस्य यस्मिन् वा–जिस देश के या देश में सुन्दर मार्ग हो)–यहाँ बहुव्रीहि समास होने पर पूर्ववत् सिद्धि हुई है।

अक्ष्णोऽदर्शनात् 5.4.76

अ–चक्षुःपर्यायाद् अक्ष्णोऽच् स्यात् समासान्तः। गवाम् अक्षीव–गवाऽक्षः।

व्याख्याः अक्ष्ण इति–नेत्र वाचक से भिन्न अक्ष शब्द की समासान्त अच् प्रत्यय हो।

गवाक्ष्ऽाः (गवाम् अक्षि इव, गौओं की आंख के जैसा, खिड़की, झरोखा)–यहाँ षष्ठीतत्पुरूष समास हुआ। अक्षिशब्द यहाँ नेत्रा का वाचक भी नहीं, क्योंकि उसका प्रयोग उपमान के रूप में हुआ है, अक्षि शब्द अक्षिसदृश अर्थ में लाक्षणिक है, इसीलिये दर्शन का कारण न होने से प्रकृत सूत्र से यहाँ समासान्त अच् प्रत्यय हुआ तब 'यस्येति च' से इकार का लोप होकर अकारान्त शब्द बन जाने से रूप सिद्ध हुआ।

उपसर्गाद् अध्वनः 5.4.85

प्रगतोऽध्वानं प्राऽध्वः–रथः।

व्याख्याः उपसर्ग से पर अध्वन् शब्द को समासान्त अच् प्रत्यय हो। उपसर्ग शब्द यहाँ प्रादि के लिये प्रयुक्त हुआ है। प्राऽध्वो रथः (प्रगतोऽध्वानम्, मार्ग पर चला हुआ)–यहाँ (वा) 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' से प्रादि समास होने पर टि का लोप होकर अकारान्त शब्द बन जाने से रूप बना।

न पूजनात् 5.4.69

पूजनाऽर्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः।

(वा) स्वतिभ्यामेव। सु–राजा। अति–राजा। इति समासान्ताः। इति समासप्रकरणम्। व्याख्याः प्रशंसार्थक शब्दों से पर पदों को समासान्त प्रत्यय न हों।

(वा) स्वतिभ्यामिति–सु और अति–न दो प्रशंसार्थकों से पर होने पर ही शब्दों को समासान्त प्रत्ययों का निषेध हो। इस नियम से सु और अति से भिन्न प्रशंसा–वाचको से पर पदों को समासान्त प्रत्यय होंगे। सु–राजा (शोभनो राजा, अच्छा राजा)–यहाँ प्रादि समास हुआ। 'राजाऽहः–सखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच् प्रत्यय प्राप्त था। प्रशंसावाचक 'सु' से पर होने के कारण प्रकृत सूत्र से उसका निषेध हो गया। तब नकारान्त शब्द होने से रूप सिद्ध हुआ। अति–राजा (अतिक्रान्तो राजानम्, राजा का अतिक्रमण करनेवाला)–यहाँ (वा) 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' से प्रादि समास होने पर राजन् शब्दान्त तत्पुरूष होने के कारण पूर्वोक्त सूत्र से प्राप्त समासान्त टच् प्रत्यय का प्रकृत सूत्र से निषेध हुआ। तब समस्त पद

नकारान्त ही रहा।

4.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. समास के कितने भदे होते हैं?
2. 'समर्थः पदविधि' सूत्र से आप क्या समझते हैं?
3. वृत्तियां कितनी होती हैं?
4. 'पंचगंगम' इस पद में समास किस सूत्र से होता है?
5. बहुव्रीहि समास विधायक सूत्र का निर्देश करें।
6. 'च' के कितने अर्थ होते हैं?
7. 'शिवकेशवौ' यहां पूर्वनिपात किस सूत्र से होता है?
8. उपसर्जन संज्ञा विधायक सूत्र लिखिए।

4.5 निष्कर्ष

इस इकाई के अध्ययन से समास होने की आवश्यक शर्त 'सामर्थ्य' को समझा जा सकता है। 'समर्थः पदविधिः' सूत्र पर व्यपेक्षा एवं एकार्थीभाव सामर्थ्य की विस्तार से चर्चा की गई है। समस्त पदों की प्रक्रिया की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विभक्ति लुक्, उपसर्जन संज्ञा एवं उसका पूर्वनिपात कैसे हो, इनका भी स्पष्टीकरण किया गया है। समास के सभी पांच प्रकारों, उनके विधायक सूत्रों, उदाहरणों एवं समस्त पदों की रूपसिद्धि की प्रक्रिया को सरलतापूर्वक समझाया गया है।

4.6 पदविश्लेषण

1. पदविधि– पद सम्बन्धी विधि को पदविधि कहते हैं।
2. उपसर्जन– समास विधायक सूत्रों में प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट पद को उपसर्जन कहते हैं।
3. वृत्ति– दूसरे के अर्थ का अभिधान करने वाले को वृत्ति कहते हैं।
4. विग्रह– वृत्ति के अर्थ का निर्देश करने वाले वाक्य को विग्रह कहते हैं।
5. समाहार– समूह को समाहार कहते हैं।
6. अलुक्– विभक्ति के लुक् न होने की स्थिति अलुक् कहलाती है।
7. एकशेष– अनेक पदों में जब एक ही पद शेष रहता है, तो उसे एकशेष कहते हैं।
8. अल्पाच्– कम अच् (स्वर) वाले को अल्पाच् कहते हैं।

4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. पांच
2. पद सम्बन्धी विधि समर्थ पदों में ही होती है।
3. पांच – कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सनाद्यन्त।

4. नदीभिश्च।
5. अनेकमन्यपदार्थे।
6. समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग, समाहार।
7. अल्पाच्तरम्।
8. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्।

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'अधिहरि' पद का विग्रह बताइये।
2. तत्पुरुष समास में कौन–सा पद प्रधान होता है?
3. अव्ययीभाव समास को नपुंसकत्व किस सूत्र से होता है?
4. 'राजपुरुषः' शब्द का विग्रह बताइये।
5. 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इस सूत्र से आप क्या समझते हैं?
6. 'अब्राह्मणः' यहां 'नुम्' का लोप किस सूत्र से होता है?
7. 'राजदन्तः' यहां पर 'राजन्' शब्द का पूर्वनिपात किस सूत्र से होता है।
8. 'पितरौ' यहां पर एकशेष किस सूत्र से होता है?

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लघुसिद्धान्त कौमुदी – वरदराज आचार्य विरचित

टीकाएं

1. भीमसेन शास्त्री
2. धरानन्द शास्त्री
3. डॉ. अर्कनाथ चौधरी
4. डॉ. सत्यपाल सिंह
5. गोविन्द प्रसाद शर्मा (श्रीधरमुखोल्लोसिनी)